# दो शब्द

पाठको !

कुछ समय पूर्व मैंने प्रथम भाग लिखा था, आज यह द्वितीय भाग आपकी सेवामें सादर भेंट किया जा रहा है।

प्रथम भागकी तरह इस भागमें भी कई हाफटोन चित्र दिये गये हैं जिससे पुस्तककी महत्वता और भी बढ़ जाती है।

प्रथम भागको जैन समाजने खूब ही अपनाया है इसीसे उत्साहित होकर शीघ्र ही यह द्वितीय भाग मैं भेंट कर सका हूं।

अगर आपने प्रथम भागकी तरह द्वितीय भागको अपनाया तो तृतीय भाग शीघ्र ही लिखकर इस कथा ग्रन्थको पूर्ण करूंगा।

सम्भव है मेरी असावधानीसे कुछ भूलें भी रह गईं हों उन्हें विज्ञ पाठक मुझे सूचित करनेकी कृपा करें तथा क्षमा भाव रखें।

निवेदक—

**परमानन्द जैन**

सम्पादक—दूध-बताशा।

# आराधना कथाकोष

## दूसरा भाग

### २५ मृगसेन धीवरकी कथा

केबल ज्ञान रूपी नेत्रको धारण करनेवाले श्री जिनेन्द्र भगवानको सादर भक्तिपूर्वक प्रणाम कर मैं उस धीवरकी कथा लिखता हूं, जिसने अहिंसा व्रत रूपी अमृत वृक्षके सेवनका अमर फल पाया था। यह कथा अज्ञानान्धकारसे अच्छादित नेत्रवालोंके लिये पथ प्रदर्शक तथा सम्पूर्ण लोकके लिये भी सुख सौभाग्यकी मूल साधना होगी।

प्राणियोंके भ्रमको नाश करनेवाला तथा प्रीति पूर्वक आराधनाके सर्व सुखको प्रदान करनेवाली देवाधिदेव वंदित श्री जिन भगवानके मुख कमलोद्भव परागरूपी वाणी सांसारिक जीव भ्रमरको सदा कल्याण दायिनी होवे।

वे ज्ञानके सरोवर मुनिराज निरन्तर मेरे हृदयमें विराजें, जो अगम संसार सागरसे भव्य पुरुषोंको पार करनेवाली सुदृढ़ नौकाके समान हैं। इस प्रकार पंच परमेष्टीका स्मरण कर कर्म रूप

शत्रुओंके नष्ट करनेको अहिंसा व्रतकी पवित्र कथा लिखता हूं।' अहिंसा नाम प्राणियोंके प्राणों की रक्षाका है भला यह कब सुखका कारण नहीं हो सकता। अतः दयालु पुरूषोंको मन, वचन और शरीरसे इस हिंसाका परित्याग करना चाहिए। वहुतसे लोग अपने मृतक माता पिता आदिके श्राद्धमें जीव हिंसा कर उनके शान्तिकी कल्पना करते हैं। वहुतसे लोग देवी देवताओंको पशु बलि दे उनको सन्तुष्टीकी आशा करते हैं पर ऐसी कल्पना उनकी अज्ञानता ही समझी जा सकती है, क्योंकि पाप कर्म कभी सुखका करण नहीं हो सकता। सुख है तो केवल अहिंसा व्रतके पालन करनेमें। आप सुनें, मैं अहिंसा व्रतके माहात्म्यकी एक कथा आपको सुनाता हूं जो संसारिक अज्ञान तिमिरको नाश करनेवाली ज्ञान भास्करके समान है।

अवन्ति देशके अन्तर्गत शिरोष नामक एक छोटा ग्राम था जिसकी सुन्दरता तथा सुख सम्पतिकी स्पर्द्धा स्वर्गको भी मात करती थी। उसमें मृगसेन नामका एक धीवर (भोई) रहता था एक दिन वह अपने कन्धेपर जाल लटकाये जीवोंको मारनेके लिये सिप्रा नदीकी ओर जा रहा था। मार्गमें उसे यशोधर नामके मुनिराजका दर्शन होगया। अनेकों राजा महाराजा उनके चरणोंकी उपासना कर रहे थे। यद्यपि उनके पास वस्त्राभूषण नहीं थे तथापि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्चारित्र रूपी अमूल्य रत्नोंसे भूषित शरीरसे तेजरश्मि निकल रही थी। मुनिराजको देखते ही धीवरके हृदयमें श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। वह कन्धेसे जालको हटाकर मुनिराजके पास गया और उनके चरणोंमें भक्ति पूर्वक मस्तक

झुकाकर उनसे प्रार्थना की कि भगवन्, आप मुझे कोई ऐसा व्रत प्रदान कीजिये जिससे मेरा जीवन सफल हो। यह कहकर विनयी हो वह मुनिराजके पास बैठ गया। मुनिराजने उसकी ओर देखा और विचारा—इस महाहिंसकके विचार आज एकाएक कितने कोमल हो गये। सत्य है —

युक्तं स्यात्प्राणिनां भावि शुभाशुभ निभं मनः।

अर्थात् भविष्यमें इष्ट वा अनिष्ट जो कुछ होना होता है उसीके अनुसार प्राणियोंका मन भी क्रमशः पवित्र वा अपवित्र बनता है।

तत्पश्चात् मुनिको अवधि ज्ञान द्वारा उसके आगेकी बात जान कर अत्यन्त करुणा हुई कि अब इस धीवरको जीवनलीला अल्प समयमें ही समाप्त होनेवाली है। दया-द्रवित हो उन्होंने उससे कहा कि भव्य, मैं तुझे एक उपदेश देता हूं उसे तू आजन्म पालन करना। वह यह है कि तुम्हारे जालमें पहली वार जो जीव आवे उसे छोड़ देना और इस प्रकार जबतक तुम्हारे जालमें वह प्रथम छोड़ा हुआ जीव आवे तबतक तुम उसे छोड़ देना बस पापसे (पद्मपत्रं इवाम्भसः) परे रहोगे। इसके सिवा मैं तुझे एक मन्त्रोपदेश भी देता हूं जो प्राणी मात्रको हर जगह हर हालतमें यानि सुख-दुख स्वस्थयास्वस्थ्य आदिमें सर्वदा सहायता देनेवाला है। इस प्रकार धीवरने मुनिराजके मोक्ष दायक शब्द सुनकर अत्यन्त हर्पित हो स्वीकार किया। सच है—जो गुरुकी आज्ञाको यह समझकर कि "गुरोराज्ञा गरीयसी" पालन करते हैं तथा उसपर विश्वास जमाते हैं वे अवश्य ही पृथ्वी पर सब सुखोंका भाजन होकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करते हैं।

व्रत धारण कर मृगसेन नदी किनारे गए, जलमें अपना जाल फेंका। भाग्यसे उस बार एक बड़ी मछली जालमें पड़ गई। जालसे निकालकर उसने गुरुकी आज्ञानुसार उस मछलीके कानमें एक कपड़ेकी धज्जी बांधकर उसे पुनः नदीमें ले जाकर छोड़ दिया। उसने फिर अपना जाल फेंका पर फिर भी वही मछली जालमें आ फंसी। पर उस धीवरने अपने मनमें कुछ भी दुखित न हो दृढ़ता पूर्वक व्रतका पालन किया। इधर कमलिनी-कुल-वल्लभकी प्रभा भी तरु शिखापर विराजमान हो रही थी, पक्षीगण भी अपने २ घोंसलेका शरण लेनेके लिए सब दिशाओंसे मधुर रव करते चले आ रहे थे। पर अबतक भी मृगसेनके जालमें अन्य कोई भी मछली नहीं फंसी। अब वह निरुपाय होकर घरकी ओर चला। मार्गमें वह गुरु प्रदत्त मन्त्रका स्मरण करता गया। घर जाते ही उसकी स्त्री खाली हाथ देखकर बहुत झुंझलाई। और रंज हो दरवाजा बन्दकर घरके अन्दर चली गई सच है—"पतिका प्रेम रहते हुये भी नीच प्रकृतिकी स्त्रियोंका व्यवहार ऐसा ही होता है।" अपनी स्त्रीका ऐसा दुर्व्यवहार देख मृगसेन किंकर्तव्यविमूढ़ हो घरके बाहर ही एक अत्यन्त पुराने लकड़ेपर पंच नमस्कार मन्त्रका ध्यान करता हुआ सो गया।

सूर्योदयके साथ ही साथ धीवरकी स्त्रीका भाग्य सूर्य भी अस्त हो चला। जब वह प्रातःकालमें अपने पतिको देखती है, तब तो उसके दुःखका ठिकाना नहीं रहा वह छाती पीट २ कर रोने लगी। क्योंकि रात कालरूपी सूर्पने उसमें जीवनका अन्त कर दिया था, उसने अपने पतिके मन्त्रको ही धारण करनेका प्रण कर यह

निदान किया कि ये ही मेरे अगले जन्ममें भी स्वामी हों। तत्पश्चात उसने अपने पतिके साथ अग्निमें प्रवेश कर अपघात द्वारा अपनी जीवन यात्रा समाप्त की।

विशाला नगरीमें विश्वम्भर राजा राज्य करते थे। उनकी भार्य्याका नाम विश्वगुण था उसी राज्यमें गुणपाल नामक एक सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम धनाश्री तथा पुत्रीका नाम सुबन्धु था धनाश्री सुन्दरी और गुणवती थी। पुण्योदयसे मृगसेन धीवर का जीव धनश्रीके गर्भमें प्रविष्ट किया।

राजाके नर्म भर्म नामका एक मन्त्री था उसके पुत्रका नाम था नर्मधर्म। मंत्रीने राजासे प्रार्थना की कि आप गुणपालकी पुत्री सुबन्धुसे मेरे पुत्र नर्मधर्मका व्याह करा दीजिए राजाने इसके लिये गुणपालसे आग्रह किया। गुणपाल अपनी पुत्रीका व्याह नर्मधर्म के समान कुकर्म्मीसे नहीं करना चाहता था। पर इससे बचनेका उपाय भी तो राज्य-परित्यागके सिवा अन्य नहीं था अस्तु वह अपने मित्र श्रीदत्तके पास अपनी गर्भिणी स्त्रीको छोड़ पुत्री तथा कुछ धन साथ ले राज्यसे निकल भागा आते २ उसने कौशाम्बी नगरी का शरण लिया।

श्रीदत्तके घरके पास ही एक श्रावक रहता था! एद दिन शिवगुप्त और मुनिगुप्त नामक दो मुनिराज आहारके लिए आए आहारके वाद जब वे मुनिराज बनमें जाने लगे तब मुनिगुप्तकी दृष्टि धनश्री पर पड़ी। वह उस समय श्रीदत्तके आँगनमें खडी थी। उस समय उसकी दशा 'अत्यन्त शोचनीय थी। कुभविकी कविताके समान उसकी दयनीय दशा देखकर'मुनिगुप्तने शिवगुप्त मुनिराजसे

कहा "प्रभो" इसकी दुर्दशा देख जान पड़ता है कि अवश्य ही इसके गर्भसे किसी अभागेका जन्म होनेवाला है। यह सुनकर शिवगुप्तने मुनिगुप्तसे कहा—"तुम्हारा यह विचार ग़लत है। इसके गर्भसे एक प्रवल प्रतापी महात्मा जिनधमका पूर्ण ज्ञाता राज सम्मानका पात्र होगा। यद्यपि उसका जन्म वैश्यकुलमें होगा तथापि इन्हीं विशम्भर की राजपुत्रीसे उसका व्याह होगा और राजवंश उसकी सेवा करेगा।

मुनिराजकी भविष्यवाणी सुन इर्ष्यालु श्रीदत्त हृदयसे कासने लगा यद्यपि वह गुणपालका मित्र था तथापि जाति वन्धुकी वड़ाई न देख सका। और उसने जन्मते ही वालकको मारनेका निश्चय कर लिया सत्य ही कहा है कि—

कारणेन विना वैरो दुर्जनः सुजनो भवेत्।

अर्थात्—दुर्जन-शत्रु अकारण ही मित्र वन जाते हैं। पहले तो श्रीदत्त वेचारी धनश्रीको अत्यन्त कष्ट दिया करता था। पर अव उसके साथ वड़ी सहृदयताके साथ व्यवहार करने लगा। प्रसव काल उपस्थित होनेपर धनश्री ने पुत्र प्रसव किया पर प्रसवकी वेदनासे वह मूर्च्छित हो गई थी। पापी श्रीदत्त तो इसी घातमें था। सोचा कि वालक तेजस्वी है और सहारा देनेवालेका ही नाश करने वाला होगा इसलिये इसे मार डालना चाहिये। उसने वूढ़ी स्त्रियोंसे प्रगट करवा दिया कि मरा हुआ पुत्र पैदा हुआ था इस प्रकार वालकको उसने एक भंगीके हाथ सौंपकर उससे कह दिया कि इसे लेजाकर मार डालना। भंगी इसे ले गया पर वालक का तेज देख उसे उस पर दया आ गई तथा वह उसे एक सुरक्षित स्थानपर रख कर अपने घर चला गया।

श्रीदत्तकी एक बहिन थी उसका व्याह इन्द्रदत्त सेठके साथ हुआ था। उसके सन्तान नहीं थी बालकके पूर्वोपार्जित पुण्यसे इन्द्र दत्त माल बेंचता हुआ इधर ही आ निकला। मार्गमें ग्वालबालोंके मुखसे निर्जन स्थानमें छोड़े हुए उस बालककी हालत सुनकर सेठ वहां गया जहां बालक था। बालकका अनुपम सौन्दर्य्य तथा उसके तेजसे वह बहुत प्रसन्न हुआ। वहांसे वह बालकको गोदीमें उठा अपने घर लाया। जिस प्रकार आँख मिलनेसे अन्धेको, खोये हुए मणि मिलनेसे मणिधर सर्पको सुख होता है, उसी प्रकार नव-जात बालकको प्राप्त कर सेठ तथा सेठानीको प्रसन्नता हुई। इस खुशीके उपलक्षमें सेठने अनेको उत्सव किए तथा याचकोंको खूब दान दिया—

प्राणिनां पूर्व पुण्याना मापदा सम्पदायते।

अर्थात्—पूर्वोपार्जित पुण्यके प्रभावसे प्राणियोंकी आपत्ति भी सम्पत्तिके रूपमें परिणत हो जाती है। पापी श्रीदत्तको यह बात मालूम हो गयी वह अपने बहनोईके घर गया। और मायाचारी बातें बनाकर अपनी बहन तथा भानजेको अपने घर ले आया। यह अक्षरशः ठीक है—

अहो दुष्टाशयः प्राणी, चित्ते ऽन्यद्वचने ऽन्यथा।
कायेनान्यत्करोत्येव, परेषां वचनं महत्॥

अर्थात्—दुष्ट लोगोंके मन वचन और कर्ममें रहता कुछ है और करते कुछ हैं। सज्जनोंका मन वचन तथा कर्म सब एकही समान होता है—बस सज्जनों और दुर्जनोंमें यही भेद है। पापी श्रीदत्त भी इसी श्रेणीका दुष्ट था इसलिए वह निस्सहाय निरपराध तथा

निरुपाय बालकके खूनका प्यासा हो गया। इसवार भी श्रीदत्तने एक चाण्डालके हाथ बहुत कुछ लोभ दे लड़केको सौंपकर कह दिया कि इसे मार देना पर चाण्डालको उस बालककी सुन्दरता पर अत्यन्त ही दया आयो। वह उसे नदीके किनारे एक पहाड़को गुफा में छोड़कर घर लौट आया।

सन्ध्याके समय जब ग्वालवाल गौयें चराकर लौट रहे थे। उनमेंसे कुछ गायें उसी गुफाको ओर चली गयो थी। अतः उन लोगोंने जाकर देखा कि गायें बच्चेको घेर कर खड़ी हैं। उनके थनसे दूध टपक रहा था। यह समाचार उन लोगोंने अपने मुखिया गोबिन्दसे कहा उसके कोई सन्तान न थी। अतः वह उस बालकको उठाकर लाया और पुत्रवत् पालन करने लगा। वह रूपमें रतिपति कामदेवको भी लज्जित करता था। नील कमलके समान उसके बिकसित नेत्रोंको देखकर भ्रमर भी अपने मधुर झंकारसे पराग पानेके भ्रममें आकर सर्वदा उसके कानोंके पास मड़राया करते थे। चन्द्रमाके सदृश उसकी कान्ति और सूर्य्यके समान उसका तेज देखकर मालूम होता था। कि मानो पृथ्वी भी एक दूसरे स्वर्गके समान है इस प्रकार वह द्वितीयाके चन्द्रमाके समान बढ़ता जाता था त्यों २ सब कलायें उसके पास आती जाती थी।

एक दिन पापी श्रीदत्त घी खरीदता हुआ वहीं आ गया धनकीर्ति पर नजर पड़ते ही उसने उसे पहचान लिया। और जो कुछ रहा सहा भी सन्देह था उसे उसने लोगोंसे पूछकर मिटा लिया फिर उसने उसे मारनेका षड्यन्त्र किया। उसने गोबिन्दसे कहा—भाई मुझे एक अत्यन्त जरूरी काम है। यदि आज्ञा देते

तो मैं तुम्हारे पुत्रसे अपने घर एक पत्र भेजता गोविन्दने आज्ञा दे दी सत्य ही है –

अहो दुष्टस्य दुष्टत्वं लक्ष्यते केन वेगतः

अर्थात्—दुष्टोंकी दुष्टताका पता कोई अत्यन्त शीघ्र नहीं पा सकता पापी श्रीदत्तने पत्रमें लिख भेजा—

"पुत्र महाबल।

यह पत्रवाहक भविष्यमें अपने कुलको भस्मी-भूत करने वाला प्रलयाग्निके सदृश भयंकर है। सामर्थ्यवान् होते ही यह हम लोगोंका सर्वनाश कर देगा। अस्तु तुम गुप्तरीतिसे तलवार वा मूसल द्वारा इसका काम तमाम कर देना। इतनी सावधानीसे काम लेना कि किसीको ज्ञात न हो"

पत्रको लेकर कुमार धर्मकीर्तिने अपने गलेमें पड़े हुए हार से बांध लिया। और निर्भीक हो वहांसे चल पड़ा। चलते चलते थक जानेके कारण मार्गमें वह एक वृक्षके नीचे सो गया उसी समय एक अनंग सेनानामक वेश्या वहां फूल तोड़ने आयी उसने सोये हुए कुमारके गलेमें एक पत्र देखा। उसकी इच्छा हुई कि जरा पत्रको पढ़ूं तो कि क्या लिखा है पत्रको पढ़ते ही वह हक्कावक्का सी हो गयी। उसने कुमारकी सुन्दरताकी ओर और पत्र प्रेषक की निष्ठुरता की ओर बहुत देर तक विचार किया। अन्तमें उसने लिखावटको अत्यन्त सावधानीके साथ मिटाकर उसकी जगह अपनी आँखमें लगे हुए कज्जलको पत्तोंके रससे गीलीकी हुयी सलाईसे निकाल निकाल कर उसके द्वारा लिख दिया कि—

"प्रिये यदि तुम सचमुच मुझे अपना स्वामी समझती हो.

और पुत्र महाबल तुम यदि सचमुच मुझे अपना पिता समझते हो तो इस पत्र वाहकके साथ श्रीमतीका व्याह शीघ्र कर देना। बड़े भाग्यसे ऐसे सुयोग्य वरकी प्राप्ति हुई है। इस काममें तुम मेरी कुछ भी उपेक्षा न करना। कारण सम्भव है कि आनेमें मुझे कुछ विलम्ब हो जाय। फिर ऐसा सुअवसर मिलना कठिन हो जायगा वरके मान सम्मानमें किसी प्रकारकी त्रुटी न हो।"

इस प्रकार पत्र लिखकर अनंगसेनाने ज्यों का त्यों उस बालकके गलेमें बांध दिया और अपने घर पर लौट आई।

अनङ्गसेनाके जाते ही उसकी नींद खुली। वह तुरत श्रीदत्तके घरको ओर झपटा। वहां पहुंचकर उसने श्रीदत्तकी स्त्रीके हाथमें पत्र दिया। पुत्र महाबलने भी उसे पढ़ा। आनन्दका पारावार न रहा। पश्चात् शुभ मुहूर्तमें उसका व्याह श्रीमतीके साथ कर दिया गया सच कहा है।

यद्भाव्यं न तद्भाव्यं भविचेन्न तदन्यथा।

अर्थात् होनेवाली बात होकर ही रहता है। श्रीदत्तको जब यह बात मालूम हुई तो वह घबड़ाकर दौड़ा आया। उसने धनकीर्तिको मारनेकी एक युक्ति मार्गमें ही सोच निकाली। गांवके बाहर पार्व-तीका एक मन्दिर था। उसने वहां एक आदमीको धनकीर्तिको मारनेको नियुक्त भी किया था आकर उसने पार्वतीकी पूजाकी सामग्री दे कुमारको भेजा। पर भाग्य चारो ओर सहायता देता है। जिनके आयुका शेष अवशेष है उसे तो कोई मार नहीं सकता तथा जो जिसका मरणकाल आ जाता है उसको कोई बचा नहीं सकता। आगे चलकर पाठकगण देखगे कि किस प्रकार ये दोनोंका नियम

धनकीर्ति तथा श्रीदत्तपर लागू होता है।

धनकीर्ति तुरत आज्ञा शिरोधार्य कर नगरके वाहर चला पर मार्गमें ही उसका साला महाबल आ रहा था। उसने पूजाको सब सामग्री स्वयं ले ली और उसे लौटा दिया। एक कहावत है कि "व ढ़े पूत पिताके धर्मा" अर्थात पिताके पुण्यसे ही सन्तानकी वृद्धी होती है तथा पिताके अधर्मसे ही सन्तानका अधः पतन होता है। श्रीदत्तके पापने उसीके ऊपर हाथ साफ किया। पिताके पापाचरणसे निरपराध महाबल मन्दिरमें जाते ही मारा गया।

पुत्रकी मृत्युसे श्रीदत्त अत्यन्त व्याकुल हुआ। उसने अपनी स्त्रीसे उसके नाशकी युक्ति पूछी। स्त्रीने कहा—"आप निश्चिन्त रहें। आप बूढ़े हो गये। आपकी वुद्धि अब शिथिल पड़ गई है। मैं उसका काम तमाम किये देती हूं। यह कहकर उसने दो प्रकारके लड्डू बनाये एक तो उजले और दूसरे कुछ मैले कुचैले। उजले लड्डू देखनेमें तो सुन्दर थे पर "विष रस भरा कनक घट जैसे" उसमें विष मिलाया गया था। भोजन काल उपस्थित होनेपर उसने अपनी लड़कीसे कहा कि पुत्रि मैं स्नान करने जाती हूं और तू अपने पिता तथा स्वामीको भोजन करा। देखो, उजला लड्डू अपने पतिको देना और मैला लड्डू अपने पिताको। यह कहकर वह चली गयी। भाली भाली श्रीमती अपने पिता और पतिको भोजन कराने वैठी। पिताके सन्मुख ही अपने स्वामीको उजला लड्डू देना और पिताको मैले लड्डू देना उसे लज्जास्पद मालूम हुआ। उसने ठीक उसका उलटा किया अर्थात पतिको मैले कुचेले लड्डू दिये और पिताको उजले। सच है "विचिता कर्मणांगतिः"

अर्थात् भाग्यकी गति विचित्र है। यह किसीको मालूम नहीं कि कब किसका क्या होगा। लड्डू खाते ही श्रीदत्त अपने कर्मका प्रायश्चित भोगने चले अर्थात् उनकी दुष्टताका अन्त हुआ।

उधर जब श्रीमतीकी माता स्नान कर लौटी तो उसके दुखका पारावार नहीं रहा। उसने अत्यन्त विलाप करनेके पश्चात् स्वयं भी उस लड्डूको खा लिया और देखते ही देखते उस शरीर रूपी वस्त्रका परित्याग किया। ठीक है, जो दूसरेकी बुराई करना चाहता है उनकी स्वयं बुराई होती है। यह अटल एवं अविचल नियम है। जो तुम्हारी बुराई करना चाहते हैं उसकी तुम भलाई करो। तुम्हें तुम्हारी भलाईका बदला मिलेगा और उसे उसकी बुराईका।

धनकीर्तिकी प्रतिष्ठा और शीलताका परिचय महाराज विश्वंभरके कानतक पहुंच गई। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी पुत्रीका व्याह धनकीर्तिके साथ कर दिया। राजाने दहेजमें बहुत सा सामान और धन सम्पत्ति प्रदान कर राजसेठ पदपर उन्हें नियुक्त कर दिया। इसपर किसीको आश्चर्य नहीं करना चाहिये। कारण कि संसारमें ऐसी कोई भी अलभ्य वस्तु नहीं है जो जिनधर्मके प्रभावसे प्राप्त न हो सके।

गुणपालको जब अपने भाग्योदयका समाचार मिला तो वह उसी समय कौशाम्बीसे उज्जैनीके लिए चल पड़ा। चिरकालके पश्चात् पिता पुत्रका सम्मिलन हुआ। अब धनकीर्ति अनेकों भोगोंका भोग उपभोग करते हुये सुख चैनसे अपना दिन व्यतीत करने लगे। पर साथ ही वह अपने कर्तव्य पथसे विचलित नहीं

हुआ। दीन दुखियोंकी सहायता, देवाराधन, स्वाध्यायाध्ययनादि उसके जीवनका एक मात्र लक्ष्य सा बन गया था।

एक दिन धनकीर्तिका पिता गुणपाल सेठ अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र, बन्धु बांधओंको साथ लेकर यशोध्वज मुनिराजको वन्दना करने गया। भाग्यसे अनङ्गसेना भी उस समय वहां पहुंच गई। मुनिराजकी वन्दना करनेके पश्चात् गुणपालने उनसे पूछा कि—प्रभो, आप त्रिकालज्ञ हैं अस्तु कृपा कर बताइये कि मेरे इस पुत्र धनकीर्तिने कौनसा पुण्य पूर्व जन्ममें किया था जिसके फल स्वरूप इसने बचपनमें ही भयङ्करसे भयङ्कर कष्टोंपर विजय प्राप्त कर अचल कीर्तिवान प्रचुर धनी सुकर्मी दानी तथा दयालु हुआ। यह सुननेकी मेरी उत्कट अभिलाषा है। अतः आप कृपा कर मुझे सुनावें।

परम कारुणिक और चार ज्ञानके धारी यशोध्वज मुनिराजने मृगसेन धीवरकी कथा बताते हुये कहा कि "धनकीर्ति पूर्व जन्ममें धीवर था, उसकी स्त्रीका नाम घण्टा था जो इस जन्ममें श्रीमती नामकी सुलक्षणा गुणवती स्त्री हुई है तथा वही मत्स जिसको उसने पांच बार पकड़कर छोड़ दिया था, अब इस जन्ममें अनङ्गसेना हुई है। गुणपाल, यह सब अहिंसा व्रतके धारण करनेका फल है। यह अहिंसा व्रतका प्रवर्तक जिनधर्म ऐसा धर्म है। इससे सज्जनोंको क्या नहीं मिलता" मुनिराजके द्वारा यह कथा सुनकर जिनधर्मपर सबोंको अटल श्रद्धा हो गई। धनकीर्ति श्रीमती और अनंगसेनाको अपने अपने पूर्व जन्मकी बातें स्मरण हो गयीं। इसके बाद धनकीर्तिने स्वयं अपने हाथोंसे अपने केशोंको लौंचकर जिनदीक्षा

ग्रहण कर ली। धनकीर्तिकी यह अवस्था देखकर श्रीमती और अनङ्गसेनाने भी अपने हृदयसे विषय वासना हटाकर जिनदीक्षा लेली। इसी धर्मके प्रभावसे धनकीर्तिने समाधि सहित प्राण त्यागकर सर्वार्थ सिद्धिका श्रेष्ट सुख लाभ किया। और आगे केवली होकर वह मुक्ति प्राप्त करेगा। इसी प्रकार श्रीमती और अनंगसेनाने भी स्वर्ग प्राप्त किया सच है—जिन शासनकी आराधना कर किस किसने सुख प्राप्त नहीं किया। अर्थात् धर्म कल्पतरुके समान मनो-वांच्छित फल देने वाला है।

धर्म-प्रेमके वशीभूत होकर कल्याणके हेतु अहिंसा व्रतकी पवित्र कथा लिखी है। यह सब सुखोंकी देनेवाली तथा विघ्नोंकी नाश करने वाली है। इसे आप लोग धारण कर यह संसारको शान्ति प्रदान करने वाली है।

---

# २६ मिथ्याभाषी वसुराजा की कथा।

संसारके बन्धु तथा देववन्दित श्री जिनेन्द्रदेवके चरण युगलों की भक्ति पूर्वक वन्दना कर असत्य भाषी वसुराजाका चरित्र मैं लिखता हूं।

स्थतिकावती नामक एक सुन्दर नगरमें विश्वावसु नामक राजा प्रजा पालन करते थे। उनकी महारानीका नाम 'श्रीमती' तथा पुत्रका नाम 'वसु' था।

वहीं पर अत्यन्त सरल स्वभाव वाले प्रकाण्ड विद्वान्, सुचरित्र 'क्षीरकदम्ब' नामक एक जैन उपाध्याय रहते थे। उनके स्वतिमती नामक एक स्त्री तथा पर्वत नामक एक पुत्र था। एक समय एक विदेशी ब्राह्मण 'नारद' उनके पास विद्याध्ययन करने आया। वह ज्ञानी, निरभिमानी तथा सच्चा जिनभक्त था उसके साथ २ राजकुमार वसु तथा उपाध्याय पुत्र पर्वत भी पढ़ने लगा। वसु और नारदकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी पर पर्वतकी बुद्धि पापाचरणके कारण मन्द पड़ गयी थी। अस्तु राजकुमार और नारद तो अल्पकाल ही में सर्व शास्त्र पारंगत हो गये पर पण्डितका पुत्र पर्वत मूर्ख ही रह गया। अपने पुत्रकी यह दशा देखकर एक दिन उपाध्यायानी अपने पतिसे झिझक कर बोली "मालूम पड़ता है कि आप बाहरके लड़कोंको तो अच्छी तरह पढ़ाते हैं। पर अपने पुत्र पर अपना ध्यान ही नहीं रहता इतने दिन पढ़ा पर अभी उसे खाक पत्थर भी न आया" इस पर क्षीर कदम्बने कहा—इसमें मेरा दोष नहीं है। मैं तो सबों पर समभाव रखकर पढ़ाता हूं पर मैं दुर्भाग्यको सौभाग्यमें कैसे परिणत कर सकता। पर्वत निरा मूर्ख पापी तथा दुराचारी है। मेरे सब उपदेश उसके हृदय पर उसी प्रकार विफल होते हैं जैसे पत्थर पर चोखे तीर यदि विश्वास न हो तो कहो मैं तुझे प्रत्यक्ष दिखा दूं। यह कह उन्होंने तीनों शिष्योंको एक २ पैसा देकर कहा कि तुम लोग बाजार जाकर अपने बुद्धिबल से इसके द्वारा चने खरीदकर खा लो। और फिर पैसा मुझे वापिस कर दो। पैसा लेकर तीनों निकले पर्वतने तो पैसेका चना मोल लेकर खा लिया और खाली हाथ लौट आया। पर वसु और नारद

ने अपने २ पैसेका चना खरीदकर इधर उधर घूम कर बेंच डाला और जब उनका पैसा लौट आया तो शेष चनोंको खाकर गुरुजीके पास आ गये। तत्पश्चात् गुरुजीने आटेके तीन बकरा बनाकर तीनों के हाथ में दिया और कहा कि इसे लेजाकर किसी ऐसे निर्जन स्थानमें इनके कानोंको छेद लाओ जहां कोई देखे नहीं। गुरुजी की आज्ञा हुई तीनों अपनी २ बुद्धिका परिचय देने निकले पर्वत ने तो एक घने जंगलमें ले जाकर बकरेका कान छेद डाला पर नारद जहां हो जाता था वहां ही कोई न कोई वर्त्तमान मिलता था। कहीं हो उसे सूर्य्य चन्द्रमा, नक्षत्र देव, पशु, पक्षी, आदि तथा कहीं अवधिज्ञानी मुनि आदि दिख पड़ते थे। अस्तु उसे संसारमें कहीं भी निर्जन स्थान नहीं नजर आया वे ज्यों का त्यों अपनी सामर्थ्य कहीं, नहकर अपने बुद्धिबलका परिचय देते हुए गुरुजी के पास वापिस लौट आये! पुत्रकी अनभिज्ञता तथा शिष्योंकी अभिज्ञता देखकर उपाध्यायने अपनी स्त्रीसे कहा—क्या अब तुझे सबकी बुद्धिका थाह मिला। अब कहो दोष मेरा है या पर्वतके भाग्य का?

एक दिन राजकुमार बसुसे कोई अपराध हो गया इस पर गुरुजीने उसको बहुत मारा। पर उसी समय स्वतिमतीने मध्यस्थ हो, बसुको बचा लिया। बसुने अपनी गुरु पत्नीसे प्रसन्न होकर उसे मनोवांच्छित वर देनेका प्रण किया। इस पर स्वतिमतीने कहा कि अभी तो मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। पर हां यदि भविष्यमें आवश्यकता होगी तो ले लूंगी। अतः मेरे इस वरको अपने ही पास अमानतके तौर पर रक्खो।

एक दिन क्षीर कदम्बको प्राकृतिक छटा निरीक्षण करनेकी उत्कण्ठा हुई वे तीनों शिष्योंको साथ लेकर चले सोचा कि वहीं पढ़ा भी दूंगा। वे परम रमणीक हरे भरे वृक्षोंसे लहलहाते हुए सुन्दर उद्यानमें पहुंचकर किसी पवित्र स्थानमें बैठ शिष्योंको बृहदारण्यका पाठ पढ़ाने लगे।

वहींपर दो ऋद्धिधारी महामुनि स्वाध्याय कर रहे थे। उनमेंसे छोटे मुनिने क्षीर कदम्बको पाठ पढ़ाते हुये देखकर बड़े मुनिराजसे कहा-भगवन्, देखिए, कैसे पवित्र स्थानमें उपाध्याय अपने शिष्यों को पाठ पढ़ा रहे हैं! गुरूने कहा—हां, स्थान तो अत्यन्त पवित्र है पर इनमेंसे दो तो पुण्यात्मा हैं और वे स्वर्गको जायेंगे और दो पापात्मा हैं जो नरकगामी होंगे।

क्षीरकदम्बने मुनिराजकी बातें सुन लीं। वे अपने शिष्योंको घर भेजकर मुनिराजके पास गये। उपाध्यायके विनीत भावसे पूछनेपर कि कौन नरकगामी हैं और कौन स्वर्ग गामी. मुनिराज बोले—"एक तो तेरा शिष्य नारद स्वर्गका सुखोपभोग करेगा और एक तूं, शेप दो अपने पापकर्मके उदयसे नरककी यातना भोगेंगे। क्षीरकदम्ब मुनिराजको नमस्कार कर घर चले आये। उन्हें अपने पुत्रकी दुर्गतिपर अत्यन्त खेद हुआ। पर किया ही क्या जाता। 'जो जस करहि सो तस फल चाखा'। कर्मका उदय होनेसे जीवों को सुख या दुःख भोगना ही पड़ता है। सर्वोपरि मुनियोंका वचन तो कभी मिथ्या होता ही नहीं।

कुछ दिन बाद महाराज विश्वावसुने अपना राज काज अपने पुत्र वसुको सौंपकर स्वयं सन्यास धारण कर लिया। एक दिन

वसु वन-विहारके लिए उपवनमें गया हुआ था। वहां उसने आका-शसे लुढ़क कर गिरते हुए एक पक्षीको देखा। उसने पक्षीके गिरने का कारण ढूंढ़ना चाहा। अतः उसने उधर ही बांण फेंका। बांगके लगते ही कोई वस्तु आकाशसे अप्रत्यक्ष रूपसे गिरती हुई मालूम पड़ा। अत्यन्त छान वीनके बाद पता लगा कि वह स्फटिक मणिका बना हुआ एक निर्मल स्तम्भ (खम्भा) था। राजा वसु गुप्त रीतिसे उसे अपने महल पर ले गया। उसने उस खम्भेके चार पाये बनवा कर उन्हें अपने न्याय-सिंहासनमें लगवा दिये। उन पायोंके लगने से सिंहासन ऐसा मालूम पड़ता था मानो यह आकाशमें ठहरा हुआ हो। उसने सब जगह घोषणा करवा दी कि राजाके सत्यवादित्य का ही यह फल है कि उसका सिंहासन आकाशमें ठहरा हुआ है।

इत्थं वह बहिलिएके समान कपटकी टट्टीमें छिपकर सर्व साधारण रूपी पक्षियोंका शिकार करने लगा।

इधर सम्यग्दृष्टि, जिनभक्त क्षीरकदम्ब सांसारिक मोहजालको काटकर तपस्वी हो परमात्माके चरण कमलमें लवलीन हो गया और अन्तमें समाधिमरण द्वारा उसने स्वर्ग प्राप्त किया। पिताको मृत्युके पश्चात् पर्व्वतने अपनी पैत्रिक सम्पत्ति 'उपाध्याय' पदको सुशोभित किया। नहीं, नहीं, अपने भरण पोषणके लिये इसका आश्रित बना। वह अपनी कुत्सित बुद्धिके द्वारा अज्ञान बालकोंके अन्धेरी हृदय रूपी कोठरीमें अर्थका अनर्थ कर विवेक शून्य कालिख पोतने लगा :

अथवा यों कहिए कि कुत्सित बुद्धिरूपी कलङ्कको टीका अपने माथेपर लगाकर वह शास्त्र वेत्ताओंके हृदयको कासने लगा। एक

दिन नारद भी सन्यास धारण किए हुये अपने गुरुपुत्र पर्व्वतसे मिलने आगये। पर्व्वत उस समय शिष्योंको पढ़ा रहा था। साधारण कुशल प्रश्नके बाद नारद वहीं उसका अध्यापन कार्य देखने लगे। पाठ्य विषय 'कर्मकाण्ड' था। वहां एक श्रुति थी—"अजैर्यष्टव्यमिति।" अर्थात् अजसे होम करना चाहिये। पर अजका अर्थ होता है बकरा, ब्रह्मा, और तीन वर्षका पुराना धान जिसकी उत्पादक शक्ति नष्ट हो गई हो। पर्व्वतने वहां 'अज' शब्दका अर्थ 'बकरा' बताया। अर्थात् बकरेकी बलि देकर हवन करना चाहिये। यह अर्थका अनर्थ नारदसे नहीं देखा गया। उसने कहा कि गुरुजी ने अज शब्दका अर्थ बताया है—

"अजैस्त्रिवार्षिकैर्धान्यैः प्रयष्टव्यम्।"

अर्थात् तीन वर्षके पुराने धानसे जिसमें उत्पन्न होनेकी शक्ति न हो, होम करना चाहिए। पर दुराग्रही पर्व्वत इसे माननेको तैयार नहीं हुआ। वादविवाद बढ़ते २ यहांतक हो गया कि जिसका अर्थ गलत हो उसकी जिह्वा काट ली जाय। इसका निपटेरा करनेके लिये राजा 'वसु' मध्यस्थ चुना गया। जब यह बात पर्वतकी मांको मालूम हुई तो उसने बुलाकर उसे बहुत डांटा कि दुष्ट, पापी, तू अर्थका अनर्थ करता है? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि तुम्हारे पिता सच्चे जिन भक्त थे, और वे भला 'अज' शब्दका अर्थ 'बकरा' क्यों बताते, वे तो स्वयं भी पुराने धानसे ही हवन करते थे। पर पर्व्वतने कुछ नहीं सुना। जब माताने देखा कि अब तो वादविवाद में हारकर मेरे घरका टिमटिमाता हुआ इकलौता चिराग भी गुल हुआ चाहता है। तो वह वसुके पास दौड़ी हुई गई और आदिसे

अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। पुनः उसके पूर्व वरकी याद दिलाके उसने कहा कि आज मुझे उसकी आवश्यकता है। इसलिये अपनी प्रतिज्ञाका निर्वाहकर मेरे पुत्रके पक्षमें निर्णय करो। राजाने 'एवमस्तु' कह दिया। सच है, पापी अपने संसर्गसे दूसरेको भी पापी बना देता है तथा गुणीके संसर्गसे निर्गुणी भी गुणी हो जाता है।

राजसभा लगी हुई थी। दरबारी अपने अपने आसनपर सुशोभित थे तथा राजा भी रत्नजड़ित सिंहासनपर आसन जमाये हुए था। पर्वत और नारद न्यायके लिये वहां आये। राजाने दोनों के मुखसे दोनों अर्थ सुने। पर ज्योंही उसने 'अज' शब्दका अर्थ बकरा बताया त्योंही उसका सिंहासन जमीनमें धँस गया यह देखकर नारदने उसे समझाया। महाराज, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है. सत्य २ कह दीजिये कि गुरुजीने इसका क्या अर्थ बताया था। असत्य भाषणके द्वारा अपनी आत्माको कुगतिमें न ले जाइये। पर वसुको अपनी इस दुर्दशापर कुछ भी तरस न आई। उसने पुनः कहा—नहीं, पर्व्वत जो कहता है वही सत्य है। इतना कहते ही वह सिंहासनके साथ ही साथ पृथ्वी माताकी गोदमें विलीन हो गया। अर्थात् वसु जमीनमें धसकर मर गया। मरकर वह सातवें नरकमें गया जहाँ जीवको अनेकों दुख उठाने पड़ते हैं।

पर्वतकी यह दुष्टता देखकर प्रजाने उसे गधेपर चढ़ाकर शहरसे निकाल बाहर किया और नारदका बहुत आदर-सत्कार किया। नारद अब वहीं रहकर लोगोंको धर्मोपदेश करने लगे। सब शास्त्रोंमें उनकी प्रगति थी। वे भगवानकी पूजा और सत्पात्रों

को दान द्वारा अपने समयको व्यतीत करने लगे। वसुके राज-सिंहासनपर बैठनेवाले राजाने उनका अत्यन्त आदर सत्कार किया और उन्हें 'गिरितट' नामक नगरीका राज्य भेंटमें दे दिया। नारदने बहुत कालतक उसका सुखोपभोग कर अन्तमें दाक्षित हो सर्वार्थ सिद्धि प्राप्त की जो सर्वोत्तम सुखका स्थान है। सच है, जैन धर्मको कृपासे भव्य पुरुषोंको क्या नहीं प्राप्त होता?

निरभिमानी नारदने अन्यान्य धर्मावलम्बियोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर जैन धर्मको विजय पताका चारों ओर फैला दी। वह ब्राह्मण कुलको उज्वल करने वाला उज्वल शिखायुक्त दीपकके समान था। वे महात्मा नारद सबका कल्याण करें।

---

## २७—श्री भूति पुरोहितकी कथा।

गींय देवताओंसे भक्ति पूर्वक वन्दित श्रीजिनेन्द्र देवको सादर नमस्कार कर चारीसे दुर्गतिमें फंसने वाले श्रीभूति नामक पुरोहित की कथा कहता हूं।

सिंहपुर नामक नगरमें अत्यन्त बुद्धिमान एवं धार्मिक राजा सिंहसेन राज्य करता था। उनकी महारानीका नाम रामदत्ता था। राजाका जैसा नाम था वैसा ही उसका बल भी था। महाराणी रामदत्ता भी गृहकार्यमें गृहणाके सर्व गुणोंसे सुशोभित थी। राजाके दरबारमें श्रीभूति नामका एक पुरोहित अथवा

यों कहिये कि पुर अहित ( नगरको बुराई करने वाला ) रहता था वह अत्यन्त मायावी था। उसने अपनेको सत्यवादी प्रसिद्ध कर रखा था। किसीको उसके कपटका पता नहीं था। एक दिन पद्मखण्डपुरका रहने वाला समुद्रगुप्त उसके कपट जालमें फंस गया। उसके पिताका नाम सुमित्र और माताका नाम सुमित्रा था। एक बार समुद्रदत्तको इच्छा विदेश जाकर व्यापार करनेको हुई। अपने नगरमें उसे कोई विश्वस्त आदमी नहीं दीख पड़ा। अस्तु वह श्रीभूतिके पास पांच बहुमूल्य रत्नोंको रख स्वयं सामुद्रिक व्यापार करने चला गया। बहुत दिन बाद जब वह रत्नद्वीपसे व्यापारकर लौट रहा था तो मध्य समुद्रमें उसका जहाज किसी चीजसे टकराकर टूट गया। ज्यों त्योंकर वह किनारे आ लगा। वहांसे उसने सीधे पुरोहितजीके घरका रास्ता लिया। निकट पहुंचते ही श्रीभूति इसे पहचान गया। उसके पास बहुतसे लोग बैठे हुए थे। अपने स्वासको झूठी परीक्षा लेते हुए उसने कहा कि मुझे मालूम होता है कि आज मेरे ऊपर कोई भारी कलंक लगेगा। पर सब कोई तो उसके कपट छद्मपर लट्टू हो रहे थे। सबोंने कहा—भला आपके समान सत्यप्रिय पर भी कहीं कलंक लग सकता है? निकट आकर समुद्रदत्तने उन्हें नमस्कार कर अपनी दुःख कहानी कह सुनाई पर पुरोहितने उसे झिड़कार कर कहा कि मुझे इतना समय नहीं कि दूसरेकी बात सुना करूं। जाव, यदि तुम संकटमें हो तो तुम्हें कुछ खाने पीनेका अन्न जल दिला देता हूं। अब तो सेठका होश ही गुम हो गया। उसने कहा—महाराज, मैं आपके पास अन्न जल लेने नहीं आया हूं। आप कृपाकर मेरे पांचों रत्न

लौटा दीजिये। रत्नका नाम सुनते ही पुरोहित जीने घुरेर कर तुरन्त अपनी त्योरी चढ़ाकर कहा—रत्न! अरे दरिद्र! तेरे रत्न और मेरे पास! यह तू क्या बक रहा है। बता तो सही, तेरी इच्छा क्या है? क्या तू मुझे बदनाम करना चाहता है? अरे पागल तो नहीं हो गया है, ठीकसे पहचान। हो सकता है कि कहीं दूसरे के पास रखकर भ्रमसे मेरे पास आया हो। जा भाग यहाँसे; न मालूम आज भोरमें किसका मुंह देखा था कि मुझे इतनी सिर पच्ची करनी पड़ी। सन्निकटवर्ती लोगोंको भी वह पागल ही जान पड़ा। अतः उसको घरसे बाहर निकाल दिया। समुद्रगुप्त शहरमें घूम-घूमकर रोया चिल्लाया पर भला उसकी कौन सुने। सब कोई उसकी बातको पागलकी बात समझकर उपेक्षा करते थे।

तदनन्तर उसने राजाका ध्यान आकर्षित करनेकी एक युक्ति सोची। वह प्रति दिन रातको राजमहलके पीछे एक वृक्षपर चढ़कर चिल्लाता,—महाराज, आप दयालु हैं, न्यायी हैं, पृथ्वीपर देवता तुल्य हैं, आप मेरा न्याय करें। श्रीभूतिसे कृपाकर मेरे रत्न दिला दें।" इस प्रकार चिल्लाते २ उसे छः महीने बीत गये। पश्चात् भाग्य-सितारा चमका। एक दिन महारानीने सोचा कि यह क्यों इस प्रकार नित्यप्रति चिल्लाता है। पता लगाना चाहिए इसमें क्या गुप्त रहस्य है। उसने राजाको बाध्य किया कि आप इसको बुला कर चिल्लानेका कारण पूछिये। समुद्रदत्त दरबारमें बुलाया गया घटना सुनकर राजा रानी चकित हो गये। सत्यासत्यके पता लगानेका भार रानीने स्वयं अपने ऊपर ले लिया।

दूसरे दिन रानीने पुरोहितजीको अन्तःपुरमें बुलाया। इधर

उधरकी बातचीत होनेके बाद रानीने पुरोहितजीके गत रातके भोजनको सब बातें जान ली। फिर उसने इशारेसे दासीको समझा कर पुरोहितजीके घर भेजा। दासीके जाते ही रानीने एक नया जिक्र छेड़ा। उसने पुरोहितजीसे पाशा खेलनेको कहा। सुनते ही पुरोहितजी बहुत घबड़ाये, पर रानीने कहा पण्डितजी आप घबड़ाइये मत। महाराज इससे रुष्ट नहीं होंगे। फिर क्या था, दोनों में पाशा शुरू हुआ। पहले ही बाजीमें तो पुरोहितजी अपनी नामांकित अंगूठी खो बैठे। दोनों फिर खेलने लगे। इतनेमें दासीने आकर रानीसे इशारा किया कि युक्ति काम नहीं आयी। रानीने पुनः उसे अंगुठी दे पण्डितजीके घर भेजा। पर कुछ देर बाद दासी फिर भी खाली हाथ लौटी। अब तो रानीने पुरोहितजीका जनेऊ जीत लिया था। अतः उसने यज्ञोपवीत देकर दासीको पुनः पुरोहिताइनके पास भेजा। अबकी बार रानीकी युक्तिने पण्डित पण्डिताइनकी कपटवृत्तिपर विजय पायी। पुरोहितका भाग्य फूटा; दासीने रत्नोंको लाकर रानीके हाथमें सौंपा और साथ ही खेलका भी अन्त हुआ। पण्डितजी घरको रवाना हुए। रानीने रत्नोंको ले जाकर राजाके सामने रख दिये। रत्न देखते ही राजा दंग रह गया। राजाकी आज्ञा हुई सिपाही दौड़े और पण्डितजी मार्ग हीमें गिरफ्तार हो गये। पुरोहितजीकी बुद्धि मारी गयी; आत्म ग्लानि लज्जा और क्रोधसे उनकी विलक्षण दशा हो गयी। राजाने शीघ्र ही समुद्रदत्तको बुलाया। उसके पाँचों रत्न अन्य रत्नोंमें मिलाकर सामने रख दिये गये और हुक्म हुआ कि अपना रत्न पहिचानकर निकाल लो। समुद्रदत्तने अपने रत्न निकाल लिये। राजा

उनकी बुद्धिपर इतने प्रसन्न हुए कि उसे राज सेठ बना दिया। तत्पश्चात उन्होंने पुरोहितको दरबारमें बुलाकर बहुत फटकारा कि पापी ठग, मुझे मालूम नहीं था कि तूं इतना हृदयका काला होगा। ना मालूम तेरे इस बाह्याडम्बरने मेरी भोली भाली कितनी प्रजाओं का गला घोंटा, दर-दरका भिखारी बनाया। ऐ पापकी साक्षात मूर्ति, लोकके विषधर नाग, तुझे देखकर जी चाहता है कि तुझे ऐसा दण्ड दूं जिसको देखकर भविष्यमें कोई ऐसा निंद्य कर्म करनेका दुस्साहस न करे। पर तेरे ब्राह्मण कुलमें जन्म लेनेके कारण मुझे लहूकी घूंट पीनी पड़ती है। इस प्रकार उसको अत्यन्त खरी खोटी सुनाकर राजाने उसके दण्डका भार मन्त्रि-मण्डलके सुपुर्द किया। आपसमें सलाहकर मन्त्रियोंने कहा महाराज पुरोहितका बड़ा भारी अपराध है। इसके लिये हम लोग तीन प्रकारकी सजा नियत करते हैं। उनमेंसे वे जो पसन्द करें वही दण्ड दिया जाय। वह यह कि या तो ये अपना सब धन दौलत राज्यके सुपुर्द कर देशसे बाहर निकल जांय, या तीन थाली गोबर खांय या पहलवानोंकी बत्तीस मुक्कियाँ खाँय। पुरोहितजीने सोचा—धन बहुत परिश्रमसे उपार्जित किया है अतः इसे परित्याग नहीं करूंगा। पर हाँ, गोबर खा सकता हूं। खाना शुरू किया। पर भला गोबर खाया कैसे जाय। फिर उन्होंने कहा कि पहलवान लोगोंकी मुक्कियां ही खा लूंगा। फिर क्या था। इशारा पाते ही पहलवानोंने शरीर पूजा शुरू की।

अभी केवल दश पद्रह मुक्कियां ही खाई होंगी कि बेहोश होकर पृथ्वी माताकी गोदमें सदाके लिए सो गया। चूंकि उसकी मृत्यु

आर्तध्यानसे हुई, अस्तु उन्हे नरकमें जाना पड़ा। अतः जो ज्ञानी पुरुष हैं उन्हें उचित है कि वे चोरीको अत्यन्त दुःखका कारण समझकर उससे सर्वदा बचे रहें और अपने मन बुद्धिको पवित्र जैन-धर्मकी ओर लगावें। यही लौकिक तथा पारलौकिक सुखको प्रदान करने वाला है।

सब सन्देह रूपी अन्धकारके लिए प्रचण्ड मार्तण्डके समान देवाधिदेवोंसे वन्दित तथा सब सुखोंकी खान श्री जिनेन्द्रदेव की वाणी पाठकोंके कल्याण प्रदान करने वाली होवे।

---

# २८ नीलीकी कथा।

श्री, ह्री, धी आदि रत्नोंको प्रदान करने वाले श्री जिनेन्द्र देवके चरण युगलोंको सादर नमस्कार कर चौथे अणुव्रत-ब्रह्मचर्यकी रक्षा करने वाली श्रीमती नीलीकी अचल धवल कीर्ति वर्णन करता हूं।

भारतवर्षान्तर्गत लाढ देश नामक एक सुन्दर और प्रसिद्ध देश है। प्राचीन कालमें वहां जिनधर्मका खूब प्रचार था। वहांकी प्रजा अपने धर्म कर्ममें सदा निरत रहती थी। लाढ़देशकी प्रधान राजधानी भृगुकच्छ थी। यहां वसुपाल राजा राज्य करते थे। उन के राज्यमें प्रजा की धार्मिक, नैतिक तथा आर्थिक अवस्था पराकाष्ठा तक पहुंच गयी थी।

यहींपर जिनदत्त नामक एक सेठ रहता था। उसकी धर्मप्रियता और दान प्रियताकी ख्याति सारे नगरमें गूंज रही थी। उसीके अनुरूप जिनदत्ता नामक सर्व गुणवती स्त्री एक साध्वी भार्या भी थी। जिनदत्ताकी कोमल प्रकृति, पति प्रेम तथा उदार स्वभाव स्वर्गीय सुषुमाकी समता करता था। वह परके दुःखसे दुःखी और परके सुखसे सुखी होने वाली स्त्री थी। उसके बाद उनके अंधेरे घरको उजाला करने वाला कोई बालक नहीं था, पर हां, एक बालिका थी। उसका नाम था 'नोली'। वह भी शील-सदाचारादि अपने पैत्रिक गुणोंसे भूषित थी। ठीक है, माता पिताके अनुसार ही सन्तान होती है।

इसी नगरमें एक वैश्य रहता था जिसका नाम था समुद्रदत्त। वह जैनी नहीं था। बुरे उपदेशोंसे वह घृतबुद्धि * हो गया था। उसकी अर्धाङ्गिनी सागरदत्ता और आत्मज (पुत्र) सागरदत्त था एक दिन सागरदत्त अचानक ही जिन मन्दिरमें पहुंच गया। उस समय नीली भगवान्‌की पूजा कर रही थी। एक तो वह स्वाभाविक ही देव बालाके समान चपल परमरूप लावण्या नालकंठी थी दूसरे उसके आभूषणोंसे उसकी छटा और भी कान्ति युक्त हो गयी था। उसकी मोहनी मूर्ति देखकर सब कोई मुग्ध हो जाते थे सगरदत्तने अपने मित्र प्रियदत्तसे पुछा कि मित्र मुझे मालूम नहीं होता कि क्या यह कोई नागकन्या है वा गन्धर्व कन्या। इसपर प्रियदत्तने नोलीका परिचय देते हुए कहा —मित्र, न तो यह देव

---

* जैसे जलमें घीकी बुन्दे गिरनेसे वह ज्योंकी त्योंही रह जाती है पानी पर बिस्तृत नहीं होती उसी प्रकार की बुद्धिवाला। अर्थात मन्द बुद्धिवाला।

कन्या है न नागकन्या, यह इसी शहरके रहने वाले जिनदत्तकी पुत्री है।

नीलीका परिचय पाकर सागरदत्त उसपर मोहित हो गया और कामने उसके हृदयपर अधिकार जमा लिया। अपने मनको नीलीके पास वहीं छोड़ वह घरको लौटा, पर दिन रात उसीकी चिन्तामें घुल-घुलकर दुवला होने लगा। उसे खाने, पीने, सोने आदि आवश्यक कामोंकी भी सुधि न रही। जिस कामके वश हो श्रीकृष्ण लक्ष्मी द्वारा, महादेव गङ्गा द्वारा और ब्रह्मा उर्वशी द्वारा अपना प्रभुत्व खो चुके हैं, साधारण मनुष्य उसके वश हो अपनेको भूल जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

सागरदत्तके पिताको उसकी हालत मालूम होनेपर उसने बुला कर अपने पुत्रको समझाया कि जिनदत्त जैनी है। वह कभी अपनी कन्याको अजैनीसे न ब्याहेगा। फिर तुम्हें उस अप्राप्य वस्तुके लिये अपनी जान जोखिममें न डालनी चाहिये। तुम्हें यह अनुचित विचार छोड़ देना चाहिये। सागरदत्तपर इन बातोंका कुछ भी प्रभाव न पड़ा जिससे उनके पिताको लाचार हो अपने पुत्रके जीवन रक्षार्थ किसी तरह नीलीके साथ उसका ब्याह कर देनेका उपाय सोचना पड़ा। सन्तानका मोह मनुष्यसे क्या नहीं करा सकता है? इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिये वह स्वयं पुत्र सहित जैनी हो गया। नियमित रूपसे भगवद्भक्ति, स्वाध्याय, व्रत, उपवास आदि अनुष्ठानोंसे इन दोनोंने थोड़े ही दिनोंमें लोगोंको विश्वास दिला दिया कि वे जैनी हैं। सरल स्वभाव होनेके कारण जिनदत्तको भी थोड़े ही दिनोंमें इन लोगोंने अपने हाथमें कर लिया। उसने

सागरदत्तको सब प्रकारसे सुयोग्य समझ, समुद्रदत्तके चक्करमें आ नीलीका ब्याह उसके साथ कर दिया। सागरदत्तका जीवन भी नीलीको पाकर सफल हो गया। इसके बाद भी ये दोनों कुछ दिनों तक जैनीका ढोंग बनाये रहे फिर मौका पा बुद्ध धर्मके उपासक हो गये जिस प्रकार कुत्तेके पेटमें घी नहीं ठहरता है उसी प्रकार माया-चारियोंकी बुद्धि भी सद्धर्ममें नहीं टिकती।

जैन धर्म छोड़नेपर इन लोगोंने बेचारी नीलीका उसके पिताके घरपर जाना-आना भी बन्द कर दिया। पापी क्या नहीं कर सकते हैं? जिनदत्तको इन पापाचारियोंका हाल मालूम होनेपर बहुत दुःख और पश्चाताप हुआ। वह सोचने लगा—मैंने जानकर अपनी पुत्रीको कुएंमें ढकेल दिया। सच है, दुर्जनोंकी संगतिसे दुःखके सिवा कुछ और हाथ नहीं आता।

जिनदत्तको अपनी करनीका फल मिला। पर इससे क्या नीली दुःखी हुई? नहीं। उसे भाग्यके अनुसार जो पति मिला, उसे ही देवता समझ, वह उसकी सेवामें लीन रहने लगी। उसका प्रेम पवित्र और आदर्श था जिससे अपने प्राणनाथकी भी वह अत्यन्त प्रेम भाजन बनी रही। साथ ही वह बुद्ध धर्म मानने वालेके यहां आकर भी जैन धर्मको मानती रही और उसके अनुसार आचरण करती रही। वह जैन धर्मात्माओंसे निष्कपट प्रेम करती थी और पात्रोंको दान देती थी। नीलीका इस प्रकार धर्म कर्ममें श्रद्धा और दृढ़तासे उसका पालन देख, समुद्रदत्त मन ही मन कुढ़ने लगा। वह चाहता था कि नीली भी हमारा धर्म पालन करे। इसकी पूर्ति-के लिये उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि जिससे नीलीको बुद्ध साधुओं

की संगति हो और उसे उनका उपदेश सुननेका मौका मिले। एक दिन उसने नीलीसे कहा—बेटी ! तू सदा सत्पात्रोंको दान देती है तो एक दिन अपने धर्मके अनुसार बुद्ध-साधुओंको भी दान दे।

नीलीने श्वसुरकी बात मान ली। पर उसे जिन धर्मके साथ उनकी यह ईर्षा ठीक नहीं लगी। नीलीको अपने धर्म पालनमें किसी प्रकारकी कठिनाई न हो इसके लिये उसने मन ही मन एक उपाय सोच लिया। कुछ दिनों बाद मौका पाकर उसने कुछ बौद्ध साधु-ओंको भोजनके लिए बुलाया। आनेपर वे सादर एक सुन्दर कमरेमें बैठाये गये। इधर नीलीने उनके जूतोंको एक दासी द्वारा मगवा लिया। फिर उनका खूब बारीक चूरा बनवाकर उनके द्वारा एक किस्मको स्वादिष्ट मिठाई बनवाई गयी। भोजनके समय साधुओंको अन्यान्य व्यञ्जन-मिठाइयोंके साथ वह मिठाई भी परोसी गयी। सबने उसे खूब पसन्द किया। जानेके समय जूता न मिलने पर साधुओंने पूछा—जूते कहां गये ? भीतरसे नीलीने जवाब दिया—महाराज ! सुनती हूं कि साधु लोग बड़े ज्ञानी होते हैं, तो क्या आप अपने ज्ञान बलसे जूतोंका पता भी नहीं लगा सकते ? यदि नहीं तो मैं बतला देती हूं कि जूते आपके पेटमें हैं। विश्वास न हो तो आप उलटी करके देख लें। उल्टी करने पर उन्हें उसमें जूतेके छोटे छोटे टुकड़े देख पड़े। वे लज्जित हो अपने स्थान को लौट गए।

नीलीकी इस कार्रवाईसे समुद्रदत्त और उसके परिवारके लोग आग बबूला हो गये। पर भूल उनकी थी जो उन्होंने नीली द्वारा उससे धर्म विरुद्ध कार्य करवाना चाहा। वे मन मसोस कर रह

गये। पर नीलीकी ननदको यह सह्य नहीं हुआ। उसने कोई छल-कपट कर नीलीके मत्थे व्यभिचारका दोष मढ़ दिया। सच है सत्पुरुषों पर झूठा दोष लगानेमें पापियोंको तनिक भी भय नहीं होता। बिचारी नीली अपने पर झूठ-मूठ महान कलङ्क लगा सुन बड़ी दुखी हुई। उसने कलङ्कित होकर जीनेसे मरना अच्छा समझा वह उसी समय जिन मन्दिरमें गयी और भगवानके सामने खड़ी होकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं इस कलंकसे मुक्त होकर ही भोजन करूंगी। ऐसा कह ध्यान मग्न हो वहीं खड़ी रह गयी। साधु जनों को सुख दुःख दोनों ही हालतमें जिनेन्द्र भगवानकी ही शरण लेनी पड़ती है जो सब प्रकारके कष्टोंको दूर करने वाले और इन्द्रादि देवों द्वारा पूज्य हैं।

नीलीको इस प्रकार निर्दोष और दृढ़ प्रतिज्ञ देख पुरदेवताका आसन हिल गया। रात होने पर वह नीलीके पास आया और बोली—ए सती शिरोमणि! तुझे इस प्रकार निराहार रहकर प्राणोंको कष्टमें डालना उचित नहीं। सुन, मैं आज राजा तथा शहरके अन्य प्रतिष्ठित पुरुषोंको स्वप्न देकर शहरके सब दरवाजे बन्द कर दूंगा। वे तब खुलेंगे जब जब उन्हें कोई महासती अपने पावोंसे छूएगी। जब राज कर्मचारी तुझे ले जांयगे तब तू उनका स्पर्श करना तेरे पांव लगते ही दरवाजे खुल जांयगे और तू कलंक मुक्त हो जायगी। ऐसा कह, पुरदेवता सब दरवाजोंको बन्द कर राजा वगैरहको स्वप्न दे चला गया।

सबेरा होते ही शहरके सब लोग अपने अपने काममे बाहर जाने लगे। शहरके दरवाजोंको बन्द देख उन्हें आश्चर्य हुआ।

बहुत कुछ कोशिशें की गयीं पर एक भी दरवाजा न खुला। सारे शहरमें शोर मच गया। बातकी बातमें राजाके पास खबर पहुंची। खबर मिलते ही राजाको रातमें आये हुए स्वप्नकी याद आई। एक बड़ी सभा बुलाकर राजाने अपने स्वप्नका हाल सबको कह सुनाया। कुछ और प्रतिष्ठित लोगोंने भी अपनेको वैसा ही स्वप्न आया—बतलाया। फिर स्वप्नमें बताए उपाय द्वारा ही दरवाज़ोंको खोलनेका निश्चय किया गया। शहरकी स्त्रियां दरवाज़ोंका स्पर्श करने भेजी गयीं। सबने उन्हें पांवोंसे छूआ, पर दरवाजे नहीं खुले। तब राजाने जो नीलीके सन्यासका हाल जानता था, उसे बुलाकर ले अया और उसके पांवोंसे दरवाजाका स्पर्श करवाया। छूते ही दरवाजे खुल पड़े। नीलीके शीलकी बहुत प्रशंसा होने लगी साथ ही वह कलंक-मुक्त भी हो गयी। राजा तथा शहरके अन्य प्रतिष्ठित पुरुषोंने बहुमूल्य वस्त्राभूपणों द्वारा नीलीका खूब सत्कार किया। सबोंने इन शब्दोंमें उसकी प्रशंसा की —"हे जिन भगवान के चरण कमलकी भौंरी, तू सदा फूलो फलो। माता तुम्हारे शील का माहात्म्य कौन कह सकता है।" अपने धर्मपर दृढ़ रहने वालों के लिये यह योग्य ही है। सर्वसाधारणको भी सती नीलीका पथ ग्रहण करना चाहिये।

जिनके वचन सारे संसारके उपकार करने वाले हैं, जो देवताओं और महापुरुषों द्वारा पूज्य हैं। जिनका उपदेश किया हुआ पवित्र शील-ब्रह्मचर्य मोक्षका देनेवाला है—वे जिन भगवान सदा संसारमें कर्म-परवश जीवोंको कर्मपर विजय प्राप्त करनेका पवित्र उपदेश दिया करें।

# २६ कडारपिंग की कथा।

अर्हन्त, जिनवाणी और गुरुओंको नमस्कार कर कडारपिंगकी, जो कि स्वदार सन्तोप-वृत ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट हुआ है उसकी कथा लिखो जातो है।

कांपिल्य नामक प्रसिद्ध नगरीका राजा नरसिंह बड़ा हो बुद्धिमान और धर्मात्मा था। नीति-निपुण होनेके कारण प्रजा उन्हें चाहती थी।

राजमन्त्रीका नाम सुमति था। इसके धनश्री स्त्री और कडारपिंग नामका पुत्र था। कडारपिंग का चाल चलन ठीक नहीं था। वह बड़ा कामी था। इसी नगरमें एक कुबेरदत्त सेठ रहता था जो बड़ाही धर्मात्मा और भगवद् भक्त था। इसको स्त्री प्रियंग सुन्दरी सरला पुण्यवती और सुन्दरो थी।

एक दिन कडारपिंग प्रियंग सुन्दरीको कहीं जाते देख, उसकी रूप—मधुरिमा पर मोहित हो गया। उसे चारों ओर प्रियंग सुन्दरी दिखने लगी। प्रियंग सुन्दरीके सिवा इसे और कोई वस्तु अच्छा न लगतो थी। कामने इसे आपेसे वाहर कर दिया। बड़ो कठिनतासे उस दिन वह घर पहुंचा। उसे वेचैन देख माताने चिन्तित होकर पूछा—कडार! आज तेरी यह दशा क्यों? थोड़ी देर पहिले घरसे निकलते समय तो तुम अच्छो तरहसे हो था। बतला तुझे हुआ क्या? कडारपिंग जो विवेक वुद्धि खो चुका था—यह जान न पाया कि पूछने वाली कौन है। उसने बिना सोचे विचारे कहा कि कुबेर-

दत्त सेठकी स्त्रीको मैं यदि किसी प्रकार प्राप्त कर सकूं तो मेरा जीना हो सकता है वरना नहीं। नीतिकार कहते हैं कि कामान्ध पुरुषोंको धिक्कार है जो लज्जा और भय रहित होकर अच्छे-बुरे कार्य्यको नहीं सोच सकते। धनश्री पुत्रकी निर्लज्जता देख दंग रह गयी। उससे और बात न कर वह सीधे स्वामीके पास गयी और पुत्रकी हालत उनसे कह सुनाई। राजमन्त्री अच्छा बुद्धिमान होनेके कारण उसको उचित था कि वह पुत्रको पाप कर्मसे हटाने का प्रयत्न करता पर पुत्रके मोहमें पड़कर उसने उलटा ही किया और उसके पापकर्ममें सहायक हो अपना हाथ बटाया। विनाश काल जब आता है तो बुद्धि भी विपरीत हो जाती है ठीक वही हाल सुमतिका हुआ। पुत्रकी आशा पूरी करनेके लिये एक कपट-जाल रचकर वह राजाके पास गया और बोला—महाराज! रत्नद्वीपमें एक किंजल्क जातिके पक्षी होते हैं वे जिस शहरमें रहते हैं वहां महा-मारी, दुर्भिक्ष, रोग, अपमृत्यु आदि नहीं होते तथा उस शहर पर शत्रुओंका चक्र भी नहीं चलता और न चोर वगैरह उसे किसी प्रकारकी हानि पहुंचा सकते हैं। उनका पाना भी सहज है क्योंकि कुबेरदत्त सेठ प्रायः वहां जाया करते हैं और वे कार्य चतुर भी हैं आप उन्हें पक्षियोंके लानेकी आज्ञा दीजिये। राजा भी पक्षियोंके गुणको सुन उन्हें मंगानेको अकुला उठे। मन्त्रीकी बातों पर किसी प्रकार का सन्देह न कर उन्होंने उसी समय कुबेरदत्तको बुलवाया और सब बात समझाकर उसे रत्नद्वीप जानेको कहा। कुबेरदत्त भी इस कपट जालको कुछ न समझ सका। घर लौटने पर उसने रत्न-द्वीप जानेका हाल अपनी त्रिदुपा प्रियासे कहा। सुनतेही प्रियंग-

सुन्दरी ताड़ गई कि कुछ दालमें काला है। उसने अपने स्वामीसे कहा कि किंजल्क पक्षीकी वात बिल्कुल असम्भव है कहीं पक्षियों का भी ऐसा प्रभाव हुआ है। तब तो रत्नद्वीपमें कोई मरता ही न होगा। सरल स्वभाव होनेके कारण राजा अपने मन्त्रीके चक्रमें आ गये हैं। मन्त्री-पुत्र कडारपिंग महा व्यभिचारी है। उसने एक दिन मुझे मन्दिर जाते समय पाप भरी दृष्टिसे देखा था जो मैं उसी समय ताड़ गयी थी। गौरसे सोचने पर मालूम होता है कि इस षड्यंत्रमें मन्त्री महाशयका हाथ है। उन्होंने अपने पुत्र की आशा पूरी करनेका और उपाय न देख, आपको विदेश भेजना चाहा है। इसलिये आप राजाज्ञा पालनके लिये यहांसे तो रवाना हो जायं जिससे किसीको कुछ सन्देह न हो और रात होते ही जहाजको आगे जाने देकर स्वयं वापस लौट आवें। फिर देखिये क्या गुल खिलता है। यदि मेरा अनुमान ठीक हुआ तो जानेकी जरूरत ही न होगी, नहीं तो कुछ दिन बाद चले जाइयेगा।

प्रियांग सुन्दरीकी युक्तयुक्त वात कुबेरदत्तको जंच गयी और उसने उसीके अनुसार काम किया। जहाज रवाना हो गया। रात होते ही कुबेरदत्त चुपचाप घरपर आकर छुप रहा। सच है कभी कभी दुर्जनोंकी संगतिसे सज्जनोंकी भी ऐसी ही दशा होती है।

कडारपिंग, कुबेरदत्तके रत्नद्वीप जानेकी खबर सुन उछल पड़ा उसकी खुशीका ठिकाना न रहा। वह जिस दिनकी प्रतीक्षामें बे-चैन हो रहा था, वह आ उपस्थित हुआ। कामोन्मत्त पापी कडार-पिंग बड़ी आशा और उत्सुकतासे कुबेरदत्तके घरपर गया। वहाँ प्रियांग सुन्दरीने पहलेसे ही उसके स्वागतके लिये पाखाना जानेके

कमरेको साफ सुथरा करवाकर उसमें विना निवारका एक पलंग बिछवाकर उसपर एक चादर डलवा दी थी।

कुंवर कडारपिंगके पहुंचते ही प्रियांग सुन्दरी उन्हें उस कमरे में लिवा गई और पलंगपर बैठनेका इशारा किया। आशातीत स्वागत देख कडारपिंग फूलकर कुप्पा हो गया। उसे स्वर्ग थोड़े ही ऊंचेपर दिखाई पड़ने लगा। पापका फल प्रायश्चित्त होता है, इसका उसे जरा भी आभास न हुआ। खुशीमें उन्मत्त वह जैसे ही पलङ्ग पर बैठा कि धड़ामसे नीचे जा गिरा। पाखानेकी भीषण दुर्गन्ध जब उसके नाकमें घुसी तब उसे ज्ञान हुआ कि मैं कैसे अच्छे स्थानपर आया हूं। फिर वह अपनी करनीपर बहुत पछताया और छुटकारेके लिये गिड़गिड़ाया पर प्रियंगु सुन्दरीने कुछ ध्यान न दिया। पाप कर्मका उपयुक्त प्रायश्चित्त दिये विना छोड़ना उसने उचित नहीं समझा। कई दिनोंतक यह मंत्रि-पुत्र अपनी मान मर्यादापर पानी फेर पाखानेमें पड़ा पड़ा नारकीकी तरह नरक-यातना भोगता रहा। छह महीने बाद जब कुबेरदत्तका जहाज रत्न द्वीपसे लौटा और शहरमें किंजल्क पक्षी ले आनेकी बात फैल गई तब कुबेरदत्तने कडारपिंगको बाहर निकालकर उसे अनेक प्रकारके पक्षियोंके परोंसे सजाया। फिर मुंह काला कर, हाथ, पांव बांध उसे एक लोहेके पिंजरेमें बन्दकर राजाके सामने ला उपस्थित किया कुबेरदत्तने किंजल्क पक्षीका यथार्थ हाल राजासे कह सुनाया। सच्चा हाल जानकर राजाको मन्त्री-पुत्रपर बड़ा क्रोध आया। उन्हों ने उसे गधेपर बैठाकर सारे शहरमें घुमा फिराकर मार डालनेकी आज्ञा दे दी। वैसाही किया भी गया। कडारपिंगको अपनी करनी

का फल मिला और नरक गामी होना पड़ा। परस्त्री पर आसक्त होने वाले नराधमको ऐसी दुर्गति होनी ही चाहिये। इसके विपरीत जिन भगवानके उपदेशानुसार सुखद शीलव्रतके पालने वाले पुरुष पद-पदपर आदर सत्कारके पात्र होते हैं। अतएव सभी पुरुषों को सदा परस्त्री त्याग व्रत धारण करना चाहिये।

भगवान् द्वारा आदेशित, देवों द्वारा प्रशंसित, सब प्रकारके सुख देने वाले शीलव्रतका जो मन, बचन, कर्मसे पालन करते हैं वे स्वर्ग सुख भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होते हैं।

---

## ३०—देवरति राजाकी कथा।

केवल ज्ञान जिनका नेत्र है, उन जगपवित्र जिन भगवान को नमस्कार कर अयोध्याके स्वामी देवरति राजाका उपाख्यान लिखा जाता है।

अयोध्याके राजा देवरतिकी रानीका नाम रक्ता था। वह बहुत सुन्दरी थी। राजा विषयी होनेके कारण सदा उसके पास पड़े रहते थे। राज-काजकी ओर वह कभी ध्यान नहीं देते थे। धर्म, अर्थ और पुरुषार्थको छोड़ विषय-वासनाके दास बने रहनेसे जो दुर्गति होती है, देवरतिकी भी वही दशा हुई। मन्त्रियोंको उनकी उदासीनता बहुत बुरी लगने लगी। उन्होंने राज-काज सम्हालनेकी राजासे प्रार्थना की, पर उसका कुछ फल न हुआ। यह देख मन्त्रियोंने देवरतिके पुत्र जयसेनको राजा नियुक्त कर

देवरति सहित रानीको देशके बाहर निकाल दिया। ऐसे कामको धिक्कार है जिससे मान-मर्यादा धूलमें मिल जाय और अपनेको भी कष्ट सहना पड़े।'

देवरति अयोध्यासे निकलकर एक भयानक जंगलमें आये। वहां रानीको भूखने सताया। भूखके मारे उसकी बेचैनी बढ़ने लगी जो राजासे न देखा गया। उसने अपनी जांघ काटकर मांस पकाया और रानीको खिलाकर उसकी भूख शांत की। फिर भुजाओंका खून निकाल औषधिके बहाने उसे पिला उसकी प्यास मिटायी। इसके बाद यमुनाके किनारे एक झाड़के नीचे रानीको बैठाकर राजा आप भोजन लानेको पासके एक गांवमें गये।

यहां पर एक सुन्दर बगीचा था। उसमें कोई अपंग चरस खींचता हुआ मधुर स्वरसे गा रहा था। उसके गानेकी मीठी आवाज रक्ता रानीके कानोंसे टकराई। रानी गाने पर मोहित हो लाज शरम छोड़ उसके पास चली गयी। अपँगसे रानीने अपनी पाप बासना प्रगट की। वह कुछ ऐसा सुन्दर न था फिर भी रानी तो जी जानसे उनपर न्योछावर हो गई। सच है "काम न देखे जात कुजात"। रानीको पाप-बासना सुनकर अपंग घबड़ा गया और बोला—मैं एक भिखारी और आप राजरानी हैं। राजा यदि हम लोगोंको एक साथ देखेंगे तो कभी जीवित नहीं छोड़ेंगे। आपके तेजस्वी और शूर वीर पतिकी याद आते ही मेरा शरीर कांप उठता है। आप क्षमा करें। रानीने उसे धैर्य देते हुये कहा—तुम चिन्ता न करो। मैं अभी राजाको परलोक भेज देती हूं। कुलटा क्या क्या अनर्थ नहीं कर सकती है। इसी समय राजा भी

भोजन लेकर पहुंचे। उन्हें देखते ही रानी माया फैलाकर रोने लगी राजा. रानीको रोते देख, भोजनको एक ओर पटककर, दौड़कर उसके पास गये और बोले—प्रिये कहो, जल्दी कहो ! क्या किसीने तेरा अपमान किया है जो तुम रो रही हो ? आकस्मात तुम्हारे रोनेसे मेरा धैर्य छूटा जाता है। अपने रोनेका कारण जल्दी बतलाओ। रानी एक लम्बी सांस लेकर बोली—प्राणनाथ ! आपके रहते मुझे कौन कष्ट पहुंचा सकता है। लेकिन उससे भी बढ़कर मुझे यह दुःख है कि आज आपका वर्ष गांठ है और मेरे पास एक फूटी कोड़ी भी नहीं है। क्या लेकर आज मैं यह उत्सव मनाऊं। रानीकी प्रेम-भरी बातें सुनकर राजाका गला भर आया, आंखोंसे आंसू टपक पड़े। उन्होंने रानीको प्यार भरे शब्दोंमें कहा—प्रिये ! इसके लिए क्या चिन्ता है ? कभी वह दिन भी आयगा जब तुम्हारी कामना पूरी होगा। और न भी आये तो क्या ? तुम जैसी भाग्यशालिनी जिसकी प्रिया हो—जिसके लिये मैंने राज पाट तक तुच्छ समझा, उसे ऐसी ऐसी छोटी बातोंका दुःख नहीं होगा। उसे यदि दुःख होता है तो अपनी प्रियतमाको दुखी देखकर, इसलिये शोक छोड़ो। रतिदेवको स्वप्नमें भी ऐसा विश्वास न था कि यह कुलटा जान लेकर इस निष्कपट प्रेमका बदला चुकावेगी। दैवकी विचित्र गति है।

राजाके इस सच्चे प्रेमका पापिनीके पत्थर-हृदयपर जरा भी असर न हुआ। वह ऊपरसे प्रेम दिखाती हुई बोली—नाथ ! जो बात हो ही नहीं सकती उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है। तब भी मैं अपने चित्तकी शांतीके लिए इस पवित्र पुष्प-माला द्वारा ही इस उत्सवको

सम्पन्न करूंगी। इतना कह रानीने फूल गूंथनेकी रस्सीसे राजाको बांध दिया, राजा तब तक भी नहीं समझ रहा था कि रानी कोई जन्मगांठकी विधि पूरी कर रही है, इसलिये उसने चूं तक नहीं किया। खूब मजबूतीसे बांध लेने पर रानीने इशारेसे अपंगको बुलाया और उसकी सहायतासे राजाको जमुना नदीके किनारे ले जाकर उसमें ढकेल दिया। इस प्रकार राजासे पिण्ड छुड़ा वह कुलटा अपने दूसरे प्रियतमके पास रह नीच मनोवृत्तियोंको पूरा करने लगी। नीचता और कुलटापनकी हद हो गई।

पुण्यका जब उदय होता है तब मनुष्य भयानक आपत्तियोंको भी आसानीसे पार कर जाता है। देवरतिके भी कोई ऐसा पुण्य-योग था, जिससे नदीमें बांधकर डाल देने पर भी वह बच गया। नदीसे निकलकर वह मङ्गलपुर नामक शहरके निकट पहुंचा। कई दिनों तक बराबर चलते रहनेके कारण वह थक गया था। अपनी थकावट दूर करनेके लिये वह एक छायादार वृक्षके नीचे सो गया। मानो वहां वह जैन-धर्मकी छत्र छायामें सुखकी नींद ले रहा था।

मङ्गलपुरका राजा श्रीवर्द्धन निःसन्तान था। इसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। मन्त्रियोंने यह बिचारा कि एक हाथीको एक जल भरा घड़ा देकर छोड़ा जाय, वह जिसका अभिपेक करे वही अपना राजा हो। कर्मकी लीला अपरम्पार है। वह राजाको रंक और भिखारीको चक्रवर्त्ती सम्राट बना सकता है। देवरति का समय जब प्रतिकूल हुआ तो उसे राहका भिखारी बना दिया। अनुकूल होने पर फिर उसे राजगद्दी पर बैठा दिया। देवरति झाड़के नीचे सो रहा था, उसी समय हाथीने आकर उसका अभिपेक किया। बड़ी

धूमधामसे वह शहरमें ले जाया गया और राज-सिंहासन पर बैठाया गया। पुण्यके उदय होने पर आपत्तियां भी सुखके रूपमें परिणत हो जाती हैं। अतएव सुखकी इच्छा करने वालोंको सदा भगवान पर भरोसा रखकर पूजा, दान, व्रत आदि शुभ कर्मोंको करना चाहिये।

देवरति फिर राजा हो गये। उनकी हालत अब पहले जैसी न रही। वे स्वयं राजकाज संभालने लगे उन बुराइयोंको जिसके वश हो राजच्युत होना पड़ा था—अब वे पास भी फटकने नहीं देते। स्त्री नामसे अब उन्हें घृणा होने लगी। एक कुल कलंकिनीका बदला वे सारी स्त्रियोंको कुल कलङ्किनी कह कर लेने लगे। इसमें उनका दोष ही क्या था? दूधका जला मनुष्य मठेको भी फूंक२ कर पीता है। वे दान देते थे पर अपंग, लूले, लंगड़ेको एक अन्नका कण भी देना पाप समझते थे यह एक अपंगके पापका फल था।

इधर रक्तारानीने कुछ दिनों तक तो वहीं रहकर उस अपंगके साथ मजा उड़ाया। बादको उसे एक टोकरीमें रखकर देश विदेश घूमने लगी। वह जहां जाती वहीं अपनेको यह कहकर महासती जाहिर करती कि माता-पिताने जिसके हाथ मुझे सौंपा वही मेरा प्राणनाथ है। इस ठगाईमें आकर लोग उसे खूब रुपया पैसा देते। इस प्रकार भिक्षा-वृत्ति करती करती वह मङ्गलपुर पहुंची। वहां भी लोगोंको उसके सतीत्वपर बड़ी श्रद्धा हुई। सच है, जिन स्त्रियोंने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव सरीखे देवताओंको ठग लिया, उनके जालमें साधारण लोग फंस जायं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

एक दिन ये दोनों गाते हुए राजमहलके सामने आये। ड्योढ़ी

वानने राजासे जाकर प्रार्थना की, कि महाराज सिंहद्वार पर एक सती अपने अपंग पतिको टोकरेमें लिये खड़ी है। वे दोनों बड़ा ही सुन्दर गाना जानते हैं और महाराजका दर्शन करना चाहते हैं। आज्ञा हो तो उन्हें भीतर आने दूं। और सभासदोंने भी उनके देखनेकी इच्छा जाहिर की। राजाने एक परदा डलवाकर उन्हें बुलवानेकी आज्ञा दी।

सती सिर पर टोकरा लिये भीतर आई। उसने कुछ गाया जिसे सुन सब मुग्ध हो गये। राजाने आवाज सुनकर उसे पहचान लिया परदा हटवाकर राजाने कहा—अहा! यह तो महासती है। इसका सतीत्व मैं अच्छी तरह जानता हूं। इसके बाद उन्होंने अपनी सारी राम कहानी सभामें प्रगट कर दी। लोग सुनकर दांतों तले अंगुली दबाने लगे। रक्ताको शहरसे बाहर निकाल दिया गया स्त्रियोंका चरित्र देख राजा देवरतिको भी वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने पुत्र जयसेनको अयोध्यासे बुलवाकर इस राजाका भार भी उसके हाथमें सौंप दिया। श्रीयमधराचार्यके पास जिन दीक्षा ले राजा स्वयं साधु हो तपश्चर्या करने लगे। अन्तमें समाधिसे शरीर त्याग कर स्वर्गमें ऋद्धियोंके धारक देव हुए।

रक्ता रानी सरीखी कुलटा स्त्री का घृणित चरित्र देख, सांसारिक सुखोंको क्षणिक समझ जिस देवरति राजाने मुनिपद ग्रहण किया, वे सब गुण सम्पन्न मुनिराज मुझे मोक्ष प्रदान करें।

# ३१ गोपवती की कथा।

संसार द्वारा वंदित एवं सब सुखोंको देने वाले जिन भगवानको नमस्कार कर गोपवतीकी कथा लिखी जाती है, जिसे सुनकर हृदयमें वैराग्य भाव जाग्रत हो।

पलासगांवमें सिंहवल नामका एक गृहस्थ रहता था जिसकी स्त्रीका नाम गोपवती था। गोपवती इतने दुष्ट स्वभावकी स्त्री थी कि उसकी दिनरातकी खटपटसे बेचारा सिंहवल तबाह हो गया। उसे एक क्षणके लिये भी कभी गोपवती द्वारा सुख नहीं मिला।

गोपवतीसे तंग आकर एक दिन सिंहवल पासके पद्मिनीखेट नामक गांवमें गया। वहां उसने गुप्त रीतिसे सिंहसेन चौधरी की परम सुन्दरी पुत्री सुभद्रासे व्याह कर लिया। किसी तरह यह बात गोपवतीको मालूम हो गयी सुनते ही वह आग बबूला हो गयी। सिंहवलका यह अपराध अक्षम्य समझ वह उसे योग्य दण्ड देनेकी व्यवस्था करने लगी।

एक दिन शामको गोपवती अपने घरसे निकल कर पदि्मनी खेट गई। करीब आधी रातको वह वहां पहुंची और सीधे सिंहासन के घर चली गई। लोगोंने समझा किसी जरूरी कामसे गोपवती आई होगी जिसकी पूछ-ताछ सबेरा होने पर की जायगी। यह विचारकर सब सो गये और गोपवती भी उन लोगोंको दिखानेके

लिये सो गयी। सबके सो जाने पर वह चुपके से उठी और जहां अपनी माके पास बेचारी सुभद्रा सो रही थी, वहां पहुंचकर उस पापिनीने उसका सिर काट लिया। रातही में वह मस्तक लेकर घर पर भी आ गई। सवेरा होने पर जब सिंहबलको यह हाल मालूम हुआ तो वह सुभद्राके मृत-शरीर को देखकर बहुत दुःखी हुआ। वह खिन्न मन होकर घर लौटा। गोपवती अब उसका बड़ा आदर-सत्कार करने लगी। वह उसे प्रेमसे खिलाने पिलानेकी भी चेष्टा करती पर सिंहबलके हृदय पर तो सुभद्राके मरनेकी गहरी चोट लगी थी जिससे उसे कुछ भी नहीं भाता था। वह सदा उदास रहा करता था और भोजन आदिमें भी उसकी रुचि नहीं होती थी। सुभद्राके लिये सिंहबलकी यह अवस्था देख गोपवतीका क्रोध और भी बढ़ गया। एक दिन बेचारा सिंहबल उदास मनसे भोजन कर रहा था, यह देख गोपवतीने क्रोधसे सुभद्राका मस्तक लाकर उसकी थालीमें डाल दिया और बोली—इसके देखे बिना तुझे भोजन अच्छा नहीं लगता था अब तो अच्छा लगेगा न? सुभद्राके सिरको देखकर सिंहबल कांप उठा। वह "हाय! यह तो महाराक्षसी है" इस प्रकार जोरसे चिल्लाकर भागने लगा कि इतने में गोपवतीने पासमें पड़े भालेको लेकर उसकी पीठमें जोरसे मार दिया। सिंहबल तड़फड़ा कर वहीं ढेर हो गया। गोपवतीके चरित्र को देखकर बुद्धिमानों को उचित है कि वे दुष्टा स्त्रियों पर कभी विश्वास न करें।

काम रूपी हाथीको मारनेके लिये सिंहके समान भव-भय-हारी शान्ति, स्वर्ग और मोक्ष दाता, कर्म विजयी जिनेन्द्र भगवान मुझे भी शान्ति-प्रदान करें।

# ३२ वीरवतीकी कथा।
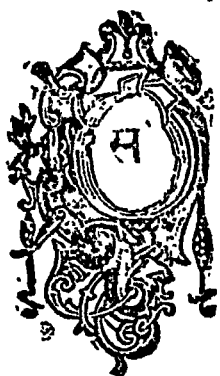
सारके वन्धु, पवित्रताकी मूर्ति, मुक्तिदाता जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर वीरवतीका उपाख्यान लिखा जाता है, जो सत्पुरुषोंके लिये वैराग्यका बढ़ाने वाला है।

राजगृहके धनमित्र नामक सेठकी स्त्रीका नाम धारिणी और पुत्रका दत्त था। भूमि गृह नामक एक दूसरे नगरमें आनन्द नामका साधारण गृहस्थ अपनी स्त्री मित्रवतीके साथ रहता था। उसके वोरवती नामको कन्याका व्याह दत्तके साथ हुआ।

भूमिगृहमें गारक नामका एक चोर भो रहता था। एक दिन वीरवती इसको सुन्दरताको देखकर मोहित हो गयी। एक बार दत्त रत्नद्वोपसे धन कमाकर घर जा रहा था। रास्तेमें उसकी ससुराल पड़ती थी। उसे अपनी प्रियतमासे मिले बहुत दिन हो गया था, इसलिये उसने अपनी ससुराल होकर घर जाना उचित समझा राहके एक जंगलमें सहस्रभट नामक चोरने उसे देखा। वहांसे वह चोर भी विनोदार्थ उसके साथ-साथ भूमिगृहतक चला गया।

ससुरालमें दत्तका खूब आदर-सत्कार हुआ। वीरवनी भी बड़े प्रेमसे उससे मिली। उसका प्रेम बनावटी था क्योंकि उसका मन किसी गहरी चोटसे जर्जरित था। इस बातको चतुर पुरुष उसके चेहरेके रंग-ढङ्गसे ताड़ सकता था, पर सरल स्वभाव वाला दत्त

रत्ती भर भी इस बातका पता न पा सका। अपनी स्त्रीपर स्वप्न में भी उसे किसी तरहका सन्देह न था। वीरवतीकी उदासीका कारण यह था कि जिस चोरके साथ इसकी आशनाई थी, वह आज किसी भारी अपराधके कारण सूलीपर चढ़ाया जाने वाला था। उससे मिलनेके लिये वह घबड़ा रही थी। रातके समय जब घरके सब लोग सो गये तब वीरवती अकेली उठी और हाथमें तलवार लिये वहां पहुंची जहाँ अपराधी सूलीपर चढ़ाये जाते थे। उसे घरसे निकलते समय सहस्रभट चोरने देख लिया। यह पता लगाने के लिये कि इतनी रातको यह कहाँ जाती है, उसने इसका पीछा किया। वीरवतीको भी पांवकी आहटसे जान पड़ा कि कोई पीछे पीछे आ रहा है, पर अंधेरी रातमें वह उसे देख न सकी। सन्देहसे ही उस दुष्टाने एक वार तलवारका पीछेकी ओर किया जिससे सहस्रभटकी अंगुलियां कट गई। तलवारका झटका लगानेसे उसका विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि निश्चय ही कोई उसका पीछा कर रहा है। वह देखनेके लिये खड़ी भी हुई पर कुछ पता न चला सहस्रभट कुछ और पीछे हट गया। वह फिर आगे बढ़ी। पास ही उसे सूलीका स्थान देख पड़ा। वह पीछे आने वालेकी बात भूलकर दौड़ी हुई अपने जारके पास पहुंची। उसे सूलीपर चढ़ाये अधिक देर न हुई थी, इसलिए उसकी अभी कुछ सांसें बाकी थीं। वीरवती को देखते ही उसने कहा—प्रिये! यही मेरी और तुम्हारी अन्तिम भेट है। तुम्हारी आशामें मैं अबतक जीवित हूं, नहीं तो कभीका मर मिटा होता। अब शीघ्र अन्तिम प्रेमालिंगन दे तुम मुझे सुखी करो जिससे मैं शान्तिसे मर सकूं। हाय! इस कामको धिक्कार है

जो मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ भी उसे चाहता है।

वीरवतीने अपने जारको सूलीपरसे उतारनेका कोई उपाय न देख पासमें पड़े हुए कुछ मुर्दोंको इकट्ठा किया। उन्हें ऊपर नीचे रखकर वह उनपर चढ़ी और अपना मुख उसके मुखके पास ले जा कर बोली प्रियतम! लो अपनी इच्छा पूरी करो। गारकके मुख चुम्बन करते ही नीचेसे कोई ऐसा धक्का लगा कि मुर्दोंका ढेर खिसक गया और वीरवती नीचे जा गिरी। उसके ओठ कटकर गारकके मुखमें ही रह गये। वस्त्रसे अपना मुंह छिपाये दौड़ी दौड़ी वह घर आई और अपने पतिके सिरहाने पहुंचकर जोरसे चिल्ला उठी कि दौड़ो! दौड़ो!! इस पापीने मेरा ओठ काट लिया। साथ ही वह रोने भी लगी। उसी समय अड़ोस-पड़ोस और घरके लोगों ने आकर दत्तको बांध लिया। वीरवती जैसी पापिनी, कुलटा कौन सा नीच कर्म नहीं कर सकती है।

सवेरा होते ही दत्त राजाके सामने न्यायके लिये उपस्थित किया गया। राजाने भी उसके अपराधकी कोई विशेष जांच पड़-ताल न कर सीधे उसे प्राणदण्डकी आज्ञा दे दी। पर बिना मौत आये कोई नहीं मरता, फिर दत्त तो बिलकुल निर्दोष था। पाठकों को विनोदी सहस्रभटकी याद होगी। उसने वीरवतीके कुकर्मोंको अपनी आंखों देखा था। दत्तके प्राणदण्डका हुक्म सुनकर उससे न रहा गया। उसने सब सच्ची घटना राजासे कह सुनाई। राजा सुन कर दंग रह गया और उसी समय अपने पहले हुक्मको रद्दकर दत्त की रिहाई कर दी। वीरवतीको उपयुक्त दण्ड दिया गया। पुण्य-वानोंकी रक्षा स्वयं उनके शुभ कर्म करते हैं।

दुष्टा स्त्रियोंका ऐसा घृणित और कलंकित चरित्र देख सभी को उचित है कि सदा दुखदाई विषयोंसे अपनी रक्षा करें।

वे महात्मा धन्य हैं जो शीलव्रतको पालन करते हुए सदा विषयोंसे अलग रहते हैं। ज्ञान, ध्यान और आत्मानुभवमें सदा मग्न, भवसागरसे पार करने वाले भगवान जिनेन्द्र सबका कल्याण करें।

---

## ३२ सुरत राजाकी कथा।
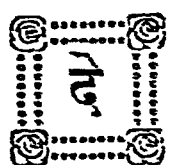
देवों द्वारा पूजित जिनभगवानको भक्ति पूर्वक नमस्कार कर सुरत राजाका हाल वर्णन किया जाता है।

अयोध्याके राजा सुरतके पांच सौ स्त्रियां थीं। उनमें पटरानी महादेवी सतीपर उनका बहुत प्रेम था। रात-दिन विषय-भोगमें आसक्त रहनेके कारण वे राज-काजकी ओर कुछ ध्यान न देते थे। पहरेवालोंसे राजाने कह रखा था कि कोई खास काम होने अथवा किसी साधु महात्माके आगमन होने पर ही उन्हें सूचना दी जा सकती है अन्यथा किसीको अन्तःपुरमें आनेकी जरूरत नहीं।

एक दिन पुण्योदयसे एक महीना उपवास करनेके बाद दमदत्त और धर्मरुचि मुनि भोजनके लिये राजमहलमें आये। उन्हें देख द्वारपाल राजाके पास जाकर बोला—महाराज! दो मुनि आहारार्थ आये हुए हैं। राजा इस समय अपनी प्राणप्रिया सतीके मुख-कमलपर तिलक रचना कर रहे थे। वे सतीसे बोले – प्रिये!

तुम्हारा तिलक सूखनेके पहले मैं मुनिराजोंको भोजन देकर आता हूं। इतना कह दरवाजेपर आकर भक्तिपूर्वक मुनिराजोंको राजाने उच्चासनपर बैठाया तथा नवधा भक्ति सहित उन्हें पवित्र भोजन कराया जो उत्तम सुखोंका देने वाला है। दान, पूजा, व्रत, उपवासादिसे ही श्रावकोंकी शोभा है वरना वे फल रहित वृक्षकी तरह व्यर्थ हैं। इसलिये बुद्धिमानोंको ये सत्कार्य शक्तिके अनुसार करते रहना चाहिये।

इधर राजाने मुनियोंको दान देकर पुण्य कमाया और उधर उनकी प्राणप्रिया विषय सुखमें बाधा देने वाले मुनियोंका आना सुनकर दुखी हुई। फलाफलके विना विचारे उसने मुनियोंकी निंदा करते हुए उन्हे मनमानी गालियां दीं। रानी सतीके लिये "इस हाथ दे, उस हाथ ले" वाली कहावत उसी समय चरितार्थ हुई। साधु-निन्दाके घोर पापसे रानीके कोढ़ निकल आया। सारा शरीर काला पड़ गया और उससे दुर्गन्ध निकलने लगी। आचार्य कहते हैं—हलाहल विप खा लेना अच्छा है जो एक ही जन्ममें कष्ट देता है पर जन्म जन्ममें दुःख देनेवाली मुनि-निन्दा कभी अच्छी नहीं। क्योंकि शील आदिसे विभूपित सन्त महात्मा सच्चे आत्म हितके मार्ग प्रदर्शक हैं। अज्ञानान्धकारको दूर करनेके लिये दीपकके समान ये महात्मा सर्व हितकारी बन्धु हैं। अतएव निन्दा न कर, यथासाध्य इनकी आराधना, सेवा-शुश्रुपा करते रहना चाहिये

मुनिराजोंको आहारादिसे सन्तुष्ट कर राजा अन्तःपुरमें अपनी प्रियाके पास गये। वहां रानीका काला और दुर्गन्ध युक्त शरीर देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। कारण मालूम होने पर वे और

भी खिन्न हुए। उन्हें अपनी रानीका मुनि-निन्दारूप घृणित कर्म देख बड़ा वैराग्य हुआ। उसी समय वे राज-पाट छोड़, योगी बन लोक हितकारी कामोंमें लग गये।

समय पाकर सतीकी मृत्यु हुई। जन्म जन्मान्तर तक उसे अपने पापका फल भोगना पड़ा। अतएव आत्महित चिन्तक सत्पुरुषोंको भगवानके आदेशानुसार अपने पवित्र धर्मपर सदा विश्वास रखना चाहिये जो स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है।

---

## ३४ विषयोंमें फंसे हुए संसारी जीवकी कथा

संसार समुद्रसे पार करनेवाले श्रीजिनेन्द्र भगवान को नमस्कार कर संक्षेपसे संसारी जीवकी दशा दिखलायी जाती है जो बड़ी भयावनी है।

एक बार कोई मनुष्य एक भयानक वनमें जा पहुंचा। वहां एक विकराल हाथीको देख डरके मारे वह भागा भागते भागते अचानक वह एक कुंएमें गिर पड़ा। गिरते समय एक वृक्षकी जड़ पकड़ कर वह बीचमें ही लटक गया। वृक्षपर एक मधुका छत्ता था जो उसी मनुष्यके पीछा करने वाले हाथीके धक्केसे हिल गया। वृक्ष हिल जानेसे मक्खियां उड़ गई और छत्तेसे मधूकी बूंदें टपककर उस मनुष्यके मुंहमें गिरने लगी। उस कुंएमें चार सर्प थे जो उसे डसनेके लिये नीचेसे फुंकार रहे थे। जिस जड़के सहारे वह बीचमें लटका था उसे ऊपरसे भी काले, धौले दो

चूहे काट रहे थे। इस भयानक परिस्थितिमें रहनेपर भी मधुकी बूंदोंकी लालचमें पड़कर वह उनसे छुटकारा पानेका कोई यत्न नहीं करता था। इसी समय कोई विद्याधर जाता हुआ उस ओर आ निकला। उस मनुष्यकी दशा देख उसे बड़ी दया आई और उसने कहा—भाई! आओ, इस वायुयानपर बैठो, मैं तुम्हे निकाल लेता हूं। इसके उत्तरमें उस अभागेने कहा—आप जरा ठहरें, वह शहतकी बूंद गिर रही है, मैं इसे पीकर निकलता हूं। वह बूंद गिर गई। विद्याधरने फिर उससे आनेको कहा। तब भी उस मूर्खने पहिलेकी तरह कहा कि हां—वह बूंद आई जाती है मैं अभी आया विद्याधरके बहुत समझानेपर भी "हां, इस गिरती हुई बूंदको पीकर आता हूं" बराबर उसका यही जबाव रहा। लाचार हो विद्याधर लौट गया। विषयों द्वारा ठगे गये जीवोंकी यही दशा होगो। उन्हे अपने हित अनहितका भी ज्ञान नहीं रहता।

जिस प्रकार मधुकी लालचमें पड़कर उस मनुष्यको विद्याधर के समझानेपर भी अपने हित अनहितका ज्ञान नहीं हुआ उसी प्रकार विषयोंमें फंसे हुए जीव संसार रूपी कुंएमें काल रूपी हांथी द्वारा नाना प्रकारके कष्ट पाकर भी होशमें नहीं आता। उन्हें क्या पता कि उनकी आयु रूपी डालीको दिन रात रूपी दो काले और धोले चूहे काट रहे हैं। कुंएके चार सर्प रूपी चार गतियां इसे डंसनेके लिये मुंह बाये खड़ी है और गुरु इसे हितका उपदेश दे रहे हैं, फिर भा ये अपने हितको ओर न देख शहतकी बूंद रूपी विषयोंमें लुब्ध हो रहे हैं। सच तो यह है कि जिसे दुर्गति भोगनी है उसे सच्चा मार्ग क्योंकर अच्छा लगे।

इस प्रकार संसारकी परिस्थित देख कर बुद्धिमानोंको उचित है कि संसारके विषय भोग रूपी विषको त्याग भगवान जिनेन्द्रके आदेशानुसार पवित्र धर्म भावोंको अपने हृदयमें धारण करें जो अनन्त सुखका देने वाला है।

---

## ३५ चारुदत्त सेठकी कथा
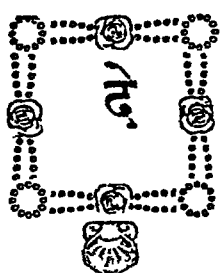
देवों द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवानके चरण कमलोंको नमस्कार कर चारुदत्त सेठकी कथा लिखी जाती है।

जिस समयकी यह कथा है उस समय चम्पापुरीका राजा शूरसेन बड़ा बुद्धिमान और प्रजा हितैषी था। उसके नीतिमय शासनकी सारी प्रजा एक स्वरसे प्रशंसा करती थी। वहीं भानुदत्त सेठ अपनी स्त्री सुभद्राके साथ रहता था। सुभद्राके कोई सन्तान न थी। सन्तान प्राप्तिकी इच्छासे वह अनेक देवी-देवताओंकी पूजा किया करती और मानताएं माना करती थी, फिरभी वह सफल-मनोरथ न हुई। कुदेवोंकी पूजा-स्तुतिसे कभी कोई कार्य सिद्ध हुआ है क्या? एक दिन वह भगवानका दर्शन करने मन्दिरमें गयी वहां चारण मुनिको देखा। उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा—प्रभो! क्या कभी मेरा मनोरथ पूर्ण होगा? अन्तर्यामी मुनिराज बोले—बेटी? तू जिस इच्छासे कुदेवोंकी पूजा-मानता करती है वह ठीक नहीं है। इससे लाभके

बदले हानि हो सकती है। तू विश्वास कर कि संसारमें अपने पुण्य-पापके सिवा और कोई देवी देवता किसीको कुछ देने लेनेमें समर्थ नहीं होते। अब तक पापका उदय था, इसलिये तेरी इच्छा पूरी न हो सकी। अब तेरे पुण्यका उदय होगा जिससे तुझे एक पुत्र रत्नकी प्राप्ति होगी। इसलिये तुम पवित्र जिनधर्म पर विश्वास करो। मुनिराजकी बातोंको सुनकर सुभद्रा बड़ी खुश हुयी। उन्हें नमस्कार कर वह घर चली आई और तबसे कुदेवोंकी पूजा-मानना छोड़ जिन भगवानके पवित्र धर्मपर विश्वास कर दान, पूजा, व्रत आदि करने लगी। इस तरह कुछ दिन सुखके साथ बीतनेपर मुनिराजके कहे अनुसार उसके पुत्र हुआ जिसका नाम चारुदत्त रखा गया। उम्रकी बढ़तीके साथ उसमें सद्गुण भी बढ़ते गये। पुण्यवानोंको अच्छी बातें अपने आप प्राप्त होती हैं।

चारुदत्त बचपनसे ही मन लगाकर पढ़ता लिखता था। पचीस वर्षकी उम्र तक किसी प्रकारकी विषय-वासना उसे छू तक न गई। वह दिन रात पुस्तकोंके अभ्यास, बिचार, मनन, चिन्तनमें मग्न रहता, इससे बचपनसे ही उसमें बिरक्ति सी आने लगी थी। वह नहीं चाहता था कि व्याह कर संसारके माया—जालमें फंसे। पर माता पिताके बहुत आग्रह करने पर उसे अपने मामाकी गुणवती पुत्री मित्रवतीके साथ व्याह करना पड़ा।

व्याह हो गया सही, पर तब भी चारुदत्त उसका रहस्य नहीं समझ पाया। उसने कभी अपनी स्त्रीका मुंह तक नहीं देखा। पुत्रकी यह दशा देख उसकी मांको बड़ी चिन्ता हुई। चारुदत्तकी विषयोंकी ओर प्रवृत्ति हो इसके लिये मांने उसे व्यभिचारी लोगोंके

संगतिमें डाल दिया। इससे उसकी मांका अभिप्राय सफल हुआ। अब चारुदत्त विषयोंमें इतना फंस गया कि वह वेश्या प्रेमी बन गया। उसे लगभग बारह वर्ष वेश्याके यहां रहते बीत गये। इस अरसेमें उसने अपने घरका सब धन खो दिया। चम्पापुरमें चारुदत्त एक अच्छे धनिकोंकी गिनतीमें था पर अब वह एक साधारण स्थितिका आदमी रह गया। रुपयेकी कमी हो जानेसे उसकी स्त्रीका गहना अब उसके खर्चके काममें आने लगा। वेश्याकी कुटनी मांने जब देखा कि चारुदत्त दरिद्र हो गया है तो अपनी लड़कीसे कहा कि बेटी! अब तुम्हें इसका साथ जल्द छोड़ देना चाहिये क्योंकि दरिद्र मनुष्य अपने कामका नहीं। वसन्तसेनाकी मांने युक्तिसे चारुदत्तको घरसे निकाल बाहर किया। वेश्याओंका प्रेम धनके साथ रहता है, मनुष्यके साथ नहीं। अतएव जहां धन नहीं वहां वेश्याका प्रेम नहीं। अब चारुदत्तको जान पड़ा कि इस प्रकार विषय भोगमें आसक्त रहनेका कैसा भयङ्कर दुष्परिणाम होता है। वह अब वहां एक पलके लिये भी न ठहरा और अपनी स्त्रीका आभूषण साथ ले विदेश चलता बना। उस अवस्थामें अपना काला मुंह वह अपनी मांको दिखला ही कैसे सकता था।

वहांसे चलकर चरुदत्त उलूख देशके उशिरावर्त शहरमें पहुंचा। चम्पापुरसे चलते समय इसका मामा भी साथ हो गया था। उशिरावर्तमें कपास खरीदकर ये तामलिप्तापुरीकी ओर रवाना हुए। रास्तेमें इन्होंने विश्रामके लिये एक वनमें डेरा डाल दिया। इतनेमें एक आंधी आयी उससे परस्परकी रगड़से बांसोंमें आग लग गयी। आगकी चिनगारियां उड़कर कपास पर जा पड़ी। देखते देखते

सब कपास भस्मीभूत हो गया। इस हानिसे चारुदत्त बहुत दुखी हुआ। वहांसे अपने मामासे सलाह कर वह समुद्रदत्त सेठके जहाज द्वारा पवन द्वीपमें पहुंचा यहां इसके भाग्यका सितारा चमका और इसने खूब धन कमाया। अब इसे माताके दर्शनके लिये देश लौट जानेकी इच्छा हुई। इसने चलनेकी तैयारी कर जहाजमें अपना धन असबाब लाद दिया।

जहाज अनुकूल समय देखकर रवाना हुआ। जैसे जैसे वह अपनी जन्मभूमिकी ओर आगे बढ़ता जाता था वैसे वैसे उसकी प्रसन्नता अधिक होती जाती थी। पर अपना चाहा तो कुछ होता नहीं है जब तक दैवको वह मंजूर न हो। यही कारण था कि चारुदत्त-की इच्छा पूरी न हो पायी क्योंकि अचानक किसी अनिष्टकर चीज से टकराकर जहाज फट गया। चारुदत्तका सब माल असबाब समुद्र के विशाल उदरमें विलीन हो गया। वह फिर पहिले सरीखा दरिद्र हो गया पर दुःख उठाते उठाते उसकी सहन शक्ति अधिक हो गयी थी। एकके बाद एक आने वाले दुःखोंने उसे निराशाके गहरे गढ़ेसे निकाल पूर्ण आशावादी और कर्तव्य शील बना दिया था। इस लिये इस बार भी उसे अपनी हानिका कुछ विशेष दुःख नहीं हुआ वह फिर धन कमानेके लिये विदेश चल पड़ा। इस बार फिर उसने बहुत धन कमाया। घर लौटते समय फिर उसको पहिले जैसी दशा हुई। इतनेमें ही उसके बुरे कर्मोंका अन्त न हुआ। ऐसी भयंकर घटनाओंका उसे सात बार सामना करना पड़ा। कष्टपर कष्ट आने पर भी वह अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं हुआ। आखिरी बार जहाजके फट जानेसे वह स्वयं भी समुद्रमें जा गिरा पर भाग्यसे

एक तख्ताके सहारे वह किनारे लग गया। यहांसे चलकर वह राजगृह पहुंचा जहां विष्णु मित्र नामक सन्यासीसे उसकी भेंट हुई सन्यासीने उससे अपना काम निकलता देख पहले बड़ी सज्जनता का वर्ताव किया। चारुदत्तने भी उसे भला आदमी समझ अपनी सब हालत कह सुनाई। विष्णु मित्र भी हां में हां मिलाते हुए बोला अच्छा हुआ जो तुमने अपना सब हाल कह सुनाया। धनके लिये अब तुम्हें इतना कष्ट न उठाना पड़ेगा। आओ, मेरे साथ चलो। यहांसे कुछ दूर आगे एक जंगल है वहां पर्वतकी तलहटीमें रसायन से भरा एक कूंआ है जिससे सोना बनाया जाता है। उससे थोड़ा सा रस निकालकर तुम ले आओ तो तुम्हारी सारी दरिद्रता दूर हो जायगी। चारुदत्त सन्यासीके पीछे-पीछे चला। दुर्जनों द्वारा धन के लोभी इसी प्रकार ठगे जाते हैं।

सन्यासीके साथ चारुदत्त एक पर्वतके पास पहुंचा। रस लानेकी सब बातें समझाकर सन्यासीने चारुदत्तके हाथमें एक तूम्बी दी सींकेपर बैठाकर उसे कुंयेमें उतार दिया। चारुदत्त तूम्बीमें रस भर रहा था कि इतनेमें एक मनुष्यने उसे ऐसा करनेसे रोका। चारुदत्त पहले तो डरा, पर जब उस मनुष्यने कहा कि डरो मत— तब वह कुछ सरल होकर बोला तुम कौन हो और इस कुंएमें कैसे आये? कुएमें बैठा हुआ मनुष्य बोला—मै उज्जैनीका रहने वाला हूं और मेरा नाम धनदत्त है। सिंहलद्वीपसे लौटते समय तूफानमें पड़कर मेरा जहाज फट गया जिससे बहुत धन जनकी हानि हुई। शुभकर्मसे एक पटिया मेरे हाथ लग गया जिसके सहारे मैं बच गया। समुद्रसे निकलकर मैं अपने शहरकी ओर जा रहा था कि

रास्तेमें मुझे यही सन्यासी मिला। यह दुष्ट मुझे धोखा देकर यहां लाया। कुंएमेंसे रस भरकर देने पर भी इस पापीने पहले मेरे हाथसे तूम्बी लेली और फिर आप रस्सी काटकर भाग गया। मैं आकर कुंएमें गिरा। भाग्यसे चोट तो अधिक न लगी, पर दो-तीन दिन इसमें पड़े रहनेसे अब मेरे प्राण घुट रहें हैं। उसकी हालत सुनकर चारुदत्तको बड़ी दया आई पर वह स्वयं भी उसी परिस्थितिमें आ फंसा था, इसलिये उसकी कुछ सहायता न कर सका। चारुदत्तने उससे पूछा—तो मैं इसे रस भरकर न दूं? धनदत्तने कहा—ऐसा मत करो, रस तो भर कर दे ही दो, अन्यथा यह ऊपरसे पत्थर वगैरह मारकर बड़ा कष्ट पहुंचावेगा। तब चारुदत्तने एक बार तूम्बी रससे भरकर सींकेमें रख दी। सन्यासीने उसे निकाल लिया। चारुदत्तको निकालनेके लिए उसने फिर सींका नीचे डाला। अबकी बार स्वयं सींकेपर न बैठ चारुदत्तने कुछ वजनदार पत्थरोंको उसमें रख दिया। जब सींका आधी दूर आया तब सन्यासी उसे काटकर चलता बना। चारुदत्तकी जान बच गयी। उसने धनदत्तका बड़ा उपकार माना और कहा—मित्र! आज तुमने मुझे जीवन दान दिया है, जिसके लिये मैं जन्म जन्मान्तर तुम्हारा ऋणी रहूंगा। उस कुंएसे निकलनेका उपाय पूछनेपर धनदत्त बोला—यहां रस पीने प्रतिदिन एक गोय आया करती है जो आज चली गई है, कल फिर आवेगी सो तुम पूंछ पकड़कर निकल जाना। इतना कहते कहते उसका गला रुक गया और प्राण संकटमें पड़ गये। अपने उपकारीकी कुछ भी सेवा करनेमें असमर्थ समझ उसने धनदत्तको उत्तम गतिमें जानेके लिये पवित्र जिन धर्मका

उपदेश देकर पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया और साथ ही संन्यास भी लिवा दिया।

सवेरा होते सदाकी तरह उस दिन भी गोय रस पीने आई। पीकर जाते समय चारुदत्तने उसकी पूंछ पकड़ ली और उसके सहारे बाहर निकल आया। तमाम जंगल पार करनेपर रास्तेमें उसकी रुद्रदत्तसे भेंट हो गयी। वहांसे वे दोनों अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये रत्नद्वीप गये। रत्नद्वीप जानेके लिए पहले एक पर्वतपर जाना पड़ता था। पर्वतपर जानेका रास्ता बहुत संकीर्ण था। इसलिये वहां जानेके लिये इन्होंने दो बकरे खरीदे और उनपर सवार होकर सकुशल पर्वतपर पहुंच गये। वहां जाकर चारुदत्तके साथीने विचारा कि इन दोनों बकरोंको मारकर दो चमड़ेकी थैलियां बनानी चाहिये और उलटकर उनके भीतर घुस दोनोंका मुंह सी देना चाहिये। मांसके लोभसे यहां सदा भेरुण्ड पक्षी आया करते हैं। वे अपनेको उठाकर उसपार रत्नद्वीप ले जांयगे। वहां थैलियोंको फाड़कर हम बाहर हो जांयगे। मनुष्यको देखकर पक्षी उड़ जायंगा और सीधी तरह अपना सब काम बन जायगा।

चारुदत्तने रुद्रदत्तकी पाप भरी बात सुनकर उसे बहुत फटकारा और कहा कि ऐसे पाप द्वारा प्राप्त किये धनको मुझे कुछ जरूरत नहीं। रातको ये दोनों सो गये। चारुदत्तको गाढ़ी नींदमें सोया देख पापी रुद्रदत्त चुपकेसे उठा और जहां बकरे बंधे थे वहां गया। उसने पहले अपने बकरेको मारा और फिर चारुदत्तके बकरे पर हाथ बढ़ाया। इतनेमें अचानक चारुदत्तको नींद खुल गयी।

रुद्रदत्तको अपने पास सोया न पाकर उसका सिर ठनका। जाकर देखा कि पापी रुद्रदत्त बकरेका गला काट रहा है। मारे क्रोधके चारुदत्त लाल पीला हो गया। उसने रुद्रदत्तके हाथसे छूरा छीनकर उसे खूब खरी खोटी सुनायी। सच है, निर्दयी पुरुष कौन सा पाप नहीं करते ?

उस अधमरे बकरेको टकर टकर देखते देखकर चारुदत्तका हृदय दयासे भर आया। उसकी आंखोंसे आंसुओंकी बूंदें टपकने लगीं। बकरा प्रायः काटा जा चुका था। इसलिये उसके बचानेका प्रयत्न करनेसे वह लाचार था। उसकी शांतिके साथ मृत्यु और सुगतिके लिये चारुदत्तने उसे पंच नमस्कार मन्त्र सुनाकर सन्यास दे दिया। जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवानके उपदेशका रहस्य समझते हैं उनका जीवन परोपकारके लिए ही होता है।

चारुदत्तकी इच्छा थी कि मैं पीछा लौट जाऊं पर इसके लिये उसके पास कोई साधन न था। इसलिए लाचार हो उसे भी रुद्रदत्तकी तरह उस थैलीकी शरण लेनी पड़ी। उड़ते हुये भेरुण्ड पक्षी दो मांस-पिण्ड देख वहां आए और उन दोनोंको चोंचोंसे उठा चलते बने। रास्तेमें उनमें परस्परमें लड़ाई होने लगी जिसके फल स्वरूप रुद्रदत्त जिस थैलीमें था, वह चोंचसे छूट पड़ी। रुद्रदत्त समुद्रमें गिरकर मर गया। मरकर भी अपने पापके फलको भोगनेके लिए उसे नरकगामी होना पड़ा। चारुदत्तकी थैलीको जो पक्षी लिये था, उसने उसे रत्नद्वीपके एक सुन्दर पर्वतपर ले जाकर रख दिया। चोंच मारते ही चारुदत्त देख पड़ा और पक्षी डरकर भाग गया। जैसे ही चारुदत्त थैलीके बाहर निकला कि धूपमें ध्यान

लगाये एक महात्मा देख पड़े। उन्हे धूपमें मेरुकी तरह निश्चल देखकर चारुदत्तकी उनपर बहुत श्रद्धा हुई। मुनिराजका ध्यान पूरा होते ही उन्होंने चारुदत्तसे कहा— क्यों चारुदत्त, अच्छी तरह तो हो न ? मुनि द्वारा अपना नाम सुनकर चारुदत्तको बड़ी खुशी हुई कि इस अपरिचित देशमें भी उसे कोई पहचानता है, साथ ही उसे इस बातपर आश्चर्य भी हुआ। वह मुनिराजसे बोला—प्रभो! मालूम होता है कि आपने कहीं मुझे देखा है, बतलाइये तो आपको मैं कहां मिला था ? मुनि बोले—"सुनो, मैं अमितगति विद्याधर हूं। एक दिन मैं चम्पापुरीके बगीचेमें अपनी प्रियाके साथ सैर करने गया था। उसी समय धूमसिंह नामक विद्याधर वहां आया और मेरी स्त्रीको देख उसकी नियत खराब हो गयी। अपनी विद्याके बलसे उस कामान्ध पापीने मुझे एक वृक्षमें कील दिया और मेरी प्यारीको बिमानपर बैठाकर आकाश मार्गसे लेकर चल दिया। भाग्यवश उस समय तुम वहां आ गये। तुम्हें दयावान समझ मैंने वहीं रखी एक औषधि पीसकर मेरे शरीरपर लेप करनेको कहा। तुमने वैसा ही किया, जिससे दुष्ट विद्याओंका प्रभाव नष्ट हुआ और मैं छूट गया। जिस प्रकार गुरु-उपदेशसे जीव माया, मिथ्या की कीलसे छुट जाता है। मैं उसी समय कैलाश पर्वतपर गया और धूमसिंहको उचित दण्ड दे अपनी स्त्रीको छुड़ा लाया। उस समय तुमको मैंने मनमानो वस्तु मांगनेको कहा पर तुमने कुछ भी लेनेसे इन्कार किया। वह भी ठीक ही था क्योंकि सज्जन पुरुष दूसरोंकी भलाई किसी प्रकारकी आशासे नहीं करते हैं। इसके बाद मैं अपने नगरको गया और कुछ वर्षों तक राज्यश्रीका खूब आनंद

लूटा। बादको आत्म कल्याणकी इच्छासे पुत्रोंको राज्य सौंप मैंने दीक्षा ले ली जो मोक्षको देनेवाली है। चारण ऋद्धिके प्रभावसे मैं यहां आकर तपस्या कर रहा हूं। यही कारण है कि मैं तुम्हें पहचानता हूं। चारुदत्त इन बातोंको सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह वहां बैठा ही था कि मुनिराजके दो पुत्र उनकी पूजा करने वहां आये। मुनिराजने चारुदत्तसे भी उनका परिचय कराया। परस्पर मिलकर इन सबको बड़ी प्रसन्नता हुयी।

इसी समय एक खुबसूरत युवक वहां आया। युवकने आते ही चारुदत्तको प्रणाम किया। चारुदत्तने उसे ऐसा करनेसे रोकते हुए कहा कि पहले तुम्हें गुरुदेवको नमस्कार करना उचित था। आगत युवकने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं पहिले बकरा था। पापी रुद्रदत्त जब मेरा आधा गला काट चुका था,उस समय भाग्यसे आकर आपने मुझे नमस्कार मंत्र सुनाया और साथ ही सन्यास दे दिया। मैं शान्तिसे मरकर मन्त्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। इसलिये मेरे गुरु तो आप ही हैं—आपने ही मुझे सन्मार्ग बतलाया है। इसके बाद सौधर्म-देव धर्मप्रेमसे प्रेरित हो दिव्य वस्त्राभरण चारुदत्तकी भेंट कर और उसे नमस्कार कर स्वर्ग चला गया। परोपकारियोंका इस प्रकार सम्मान होना ही चाहिये।

इधर विद्याधर सिंहयश और वराहग्रीव मुनिराजको नमस्कार कर चारुदत्तसे बोले-चलिये, हम आपको आपकी जन्मभूमि चम्पा-पुरीमें पहुंचा आवें। चारुदत्त कृतज्ञता प्रकाश करते हुये जानेको सहमत हो गया। उन्होंने चारुदत्तको माल-असबाब सहित बहुत जल्द विमान द्वारा चम्पापुरी पहुंचा दिया। इसके बाद वे उसे

नमस्कार कर अपने स्थानको लौट गये। पुण्यबलसे संसारमें सब कुछ हो सकता है, अतएव पुण्य प्राप्तिके लिये जिन भगवानके आदेशानुसार दान, पूजा, व्रत, शील रूप चार पवित्र धर्मका सदा पालन करते रहना चाहिए।

अचानक अपने प्रिय पुत्रके आ जानेसे चारुदत्तके माता को बड़ी खुशी हुयी। उन्होंने बार बार उसे छातीसे लगाकर अपने हृदयको ठण्डा किया। मित्रवतीके भी आनन्दका ठिकाना न रहा। वह आज अपने प्रियतमसे मिलकर जिस सुखका अनुभव कर रही थी, उसकी समानतामें स्वर्गका दिव्य सुख भी तुच्छ है। बातकी बातमें चरुदत्तके आनेके समाचार सारी नगरीमें फैल गये जिससे सबको आनन्द हुआ।

चारुदत्त किसी समय बड़ा धनी था। अपने कुकर्मोसे वह राह का भिखारी बन गया। जब उसे अपनी दशाका ज्ञान हुआ तो फिर कर्मशील बनकर उसने कठिनाइयोंका सामना किया। कई बार असफल होने पर भी वह निराश नहीं हुआ अपने उद्योगसे उसके भाग्यका सितारा फिर चमक उठा और पूर्ण तेज प्रकाश करने लगा कई वर्षों तक खूब सुख भोग कर अपनी जगह अपने सुन्दर नाम के पुत्रको नियुक्त कर वह उदासीन हो गया। दीक्षा ले उसने तप आरम्भ किया और अन्तमें सन्यास सहित मर कर स्वर्ग लाभ किया। स्वर्गमें वह नाना प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ सुखसे रहता है। सुमेरु और कैलाश पर्वत आदि स्थानोंके जिन मन्दिरों में जाना विदेहक्षेत्र जाकर साक्षात् तीर्थंकर केवली भगवानकी स्तुति करना तथा उनका धर्मोपदेश सुनना आदि धर्म साधनमें ही वहां

भी अधिक समय लगता है। जिन भगवानके उपदेशे धर्मकी इन्द्र, नागेन्द्र विद्याधर आदि भक्ति पूर्वक उपासना करते हैं तुम भो उसी धर्मका आश्रय लो जिससे परम-पदको प्राप्त कर सको।

---

## ३६ पराशर मुनिकी कथा।

जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर अन्य मतोंकी असत्कल्पनाओंका सत्पुरुषोंको ज्ञान हो, इस लिये उन्हींके शास्त्रोंमें लिखी हुई पराशर नामक तपस्वीकी कथा लिखी जाती है।

हस्तिनापुरमें गंगभट नामक एक धीवर रहता था। एक दिन नदीमें उसे एक बडी मछली मिली जिसके चीरनेसे उसमेंसे एक सुन्दर कन्या निकली। उसके शरीरसे वड़ी दुर्गन्ध निकल रही थी। धीवरने उसका नाम सत्यवती रखा यत्नसे उसका पालन पोषण करने लगा। मछलीसे कन्या पैदा हो, यह वात सर्वथा असम्भव होने पर भी, लोग आंख वन्द कर ऐसी वातों पर विश्वास किये चले आते हैं।

सत्यवती जब वड़ी हुई, तव एक दिन गंगभट उसे नदी किनारे नाव पर वैठाकर आप किसी कामसे घर पर आ गया। इतनेमें पराशर मुनि वहां आ पहुंचे और सत्यवतीसे बोले—लड़की मुझे नदी पार जाना है, तू नाव पर वैठाकर मुझे पार कर दे। भोली सत्यवती उनकी वात मान उन्हें नाव पर वैठाकर नाव खेने लगी। स-

त्यवती सुन्दर तो थी ही, उसकी खिलती हुई जवानीने तपस्वीके तपको डगमगा दिया। कामके वश हो उन्होंने अपनी पापमयी मनोवृत्ति सत्यवती पर प्रगट की। सत्यवती सुनकर लज्जित हुई और डरती हुई बोली – महाराज ! आप जैसे सर्व समर्थ धर्मात्माके लिये यह दुर्गन्धमय नीच जातिकी लड़की कैसे योग्य हो सकती है ? पराशरको इस भोली लड़कीके निष्कपट विचार पर भी शर्म न आई—कामियोंको शर्म कहां ? उन्होंने सत्यवतीसे कहा—मैं अभी तेरा शरीर सुगन्ध मय बना देता हूं और अपने तपोबलसे तत्काल वैसा कर भी दिखाया। उनके प्रभावको देख सत्यवती राजी हो गयी और बोली—महाराज ! किनारेके लोग यह देखकर क्या कहेंगे ? तब पराशरने आकाशको धूंधला कर ( जिससे कोई देख न सके ) अपनी काम वासना पूरी की। इसके बाद उन्होंने नदी के बीचमें ही एक छोटा सा गांव बसाया और सत्यवतीसे ब्याह कर वहां रहने लगे।

कुछ दिन बाद सत्यवतीके व्यास नामक पुत्र हुआ। जन्मकालसे ही उसके सिर पर जटाएं थीं और वह यज्ञोपवीत पहिने था। जन्मते ही वह पिताको प्रणाम कर तपस्या करने चला गया। ये बातें पागल-प्रलाप छोड़ और क्या हो सकती हैं और विवेक बुद्धि वाले इन पर विश्वास भी कैसे कर सकते हैं ? भक्तिके आवेशमें आकर असत्य पर विश्वास करने वालोंने ऐसा लिख मारा है। अतएव बुद्धिमानोंको उचित है कि वे उन विद्वानोंकी संगति करें जो जैन धर्मके रहस्यको समझते हैं तथा जैन शास्त्रोंका श्रद्धाके साथ अध्ययन करें और उनमें अपनी पवित्र बुद्धिको लगावें। इसीसे उन्हें सच्चा सुख प्राप्त होगा।

# ३७ सात्यकि और रुद्रकी कथा

केवल ज्ञान ही जिनका नेत्र है, ऐसे जिन भगवान को नमस्कार कर शास्त्रानुसार सात्यकि और रुद्रकी कथा लिखी जाती है।

गन्धार देशके महेश्वरपुर नामक सुन्दर शहरमें सत्यन्धर नामके राजा अपनी स्त्री सत्यवतीके साथ रहते थे। इनके सात्यकि नामका एक पुत्र हुआ जिसने राज-विद्यामें बड़ी कुशलता प्राप्त की।

उस समय सिंधु देशके विशाला नगरीका राजा चहेक जैन धर्मका पालक और जिनेन्द्र भगवानका सच्चा भक्त था। उसकी रानी सुभद्रा बड़ी पतिव्रता और धर्मात्मा थी। उसके सात कन्याएं थीं जिनका नाम पवित्रा, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना था।

सम्राट श्रेणिकने चहेकसे चेलिनीको मांगा पर चहेकने उनकी आयु अधिक देख लड़की देनेसे इनकार कर दिया। श्रेणिकको यह बहुत बुरा लगा। अपने पिताका दुःखका कारण जानकर अभयकुमारने उनका एक सुन्दर चित्र बनवाया और उसे ले विशाला पहुंचा। वह चित्र चेलिनीको दिखलाकर उसने उसे श्रेणिक पर मुग्ध कर लिया। चहेकको सम्मति अनुकूल न देख अभयकुमारने चेलिनीको गुप्तमार्गसे लेजानेका बिचार किया। जब चेलिनी उसके

साथ जानेको तैयार हुई तव ज्येष्ठाने भी साथ चलनेको कहा। चेलिनी राजी तो हो गयी पर उसे लेजाना ठीक नहीं समझ थोड़ी दूर जाने पर ज्येष्ठासे कहा—वहन। मैं अपना आभूषण तो महल में ही भूल आई तू जाकर उन्हें ले आ? मैं तव तक यहीं खड़ी हूं। बेचारी ज्येष्ठा उसके झांसेमें आ गयी और कपड़ा लाने चली गयी लौटने पर उसने देखा कि वहां कोई नहीं है। अपनी वहनकी कुटिलतासे ज्येष्ठाको बहुत दुःख हुआ। इस दुखके मारे यशस्वती आर्यिकाके पास गयी और वह दीक्षित हो गयी। ज्येष्ठाकी सगाई सत्यन्धरके पुत्र सत्यकिसे हो चुकी थी। जब सात्यकिने उसके दीक्षा लेनेकी बात सुनी तो वह भी विरक्त होकर समाधि गुप्त मुनिसे दीक्षा लेकर मुनि बन गया।

एक दिन यशस्वती, ज्येष्ठा आदि आर्यिकाएं श्रीवर्द्धमान भगवानकी वन्दना करने चलीं। बनमें पहुंचते ही खूब जोरसे पानी बरसने लगा जिससे आर्यिकासंघको बड़ा कष्ट हुआ उनका संघ तितर वितर हो गया। ज्येष्ठा कालगुहा नामकी गुहामें पहुंची और उसे एकान्त समझ शरीरके भीगे वस्त्रोंको उतार उन्हें निचोड़ने लगी सात्यकि मुनि भी इसी गुहामें ध्यान कर रहे थे। उन्होंने ज्येष्ठा आर्यिकाका खुला शरीर देख लिया। देखते ही काम वश हो उन्होंने अपने शील रूपी मौलिक रत्नको आर्यिकाके शरीर रूपी अग्निमें झोंक दिया। कामसे अन्धा बना हुआ मनुष्य क्या नहीं कर सकता है?

गुराणी यशस्वती ज्येष्ठाकी चेष्टा आदिसे उसकी दशा जान गई। धर्म अपवादके भयसे वह ज्येष्ठाको चेलिनीके पास रख आई

चेलिनीने उसे गुप्त रीतिसे अपने यहां रख लिया। नौ महीने बाद ज्येष्ठाके पुत्र हुआ जिसे श्रेणिकने चेलिनीके पुत्र हुआ है, इस रूप में प्रगट किया। ज्येष्ठा उसे वहीं छोड़, आप आर्यिका संघमें चली आई और प्रायश्चित्त लेकर तपस्विनी हो गयी। उसका लड़का श्रेणिकके घर पलने लगा। बचपनसे संगति अच्छी न रहनेके कारण इसके स्वभावमें कठोरता आ गई। यह अपने साथ खेलने वाले लड़कोंको रुद्रताके साथ मारने पीटने लगा जिसकी शिकायत महारानीतक पहुंच गई। उसने इसका रौद्र स्वभाव देखकर नाम भी रुद्र रख दिया। जो वृक्ष जड़से खराब होता है उसके फलोंमें मीठापन कहांसे आ सकता है? एक दिन रुद्रसे और कोई अपराध बन पड़ा जिसे सुन चेलिनीने क्रोधके आवेशमें यहांतक कह डाला कि किसने इस दुष्टको जना और किसे यह कष्ट देता है। जिसे यह अपनी माता समझता था, उसके मुखसे ऐसी बात सुन रुद्र गहरे विचारमें पड़ गया। उसने सोचा कि इसमें कोई कारण अवश्य है। श्रेणिकके पास जाकर उसने पूछा—पिताजी! सच बतलाइये कि मेरे पिता कौन हैं और कहां हैं? पहले तो श्रेणिकने आनाकानी की पर जब रुद्रने बहुत पीछा किया तो लाचार हो उन्हें सब सच्ची बात बता देनी पड़ी। रुद्रको इससे बड़ा वैराग्य हुआ और वह अपने पिताके पास जाकर मुनि हो गया।

एक दिन रुद्र ग्यारह अंग और दश पूर्वका ऊंचे स्वरसे पाठ कर रहा था। उस समय श्रुतज्ञानके माहात्म्यसे पांच सौ बड़ी विद्याएं और सात सौ छोटी विद्याएं सिद्ध होकर आईं। उन्होंने रुद्रसे अपनेको स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। रुद्रने लालचवश

उन्हें स्वीकार तो कर लिया, पर लोभ आगे होने वाले सुख और कल्याणके नाशका कारण होता है, इसका उसने विचार न किया।

उस समय सात्यकि मुनि गोकर्ण पर्वतकी ऊंची चोटीपर ध्यान किया करते थे। उनकी बन्दनाको अनेक धर्मात्मा पुरुष आया करते थे। जबसे रुद्रको विद्याएं सिद्ध हुई तबसे वह मुनि वन्दनाके लिये आने वाले धर्मात्मा पुरुषोंको अपने विद्या बलसे सिंह व्याघ्र, गेंड़ा, चीता आदि हिंसक और भयंकर पशुओं द्वारा डरा कर पर्वतपर न जाने देता था। सात्यकि मुनिको मालूम होनेपर उन्होंने उसे समझाया और ऐसा करनेसे रोका। रुद्रने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और लोगोंको अनेक कष्ट देने लगा। तब सात्यकिने कहा—तेरे इस पापका फल बुरा होगा और तू स्त्रियों द्वारा तप भ्रष्ट होकर मृत्युका ग्रास बनेगा। अतएव अभीसे सम्हल जा जिसमे कुगतियोंका दुःख न भोगना पड़े। रुद्रपर इस धमकी-का भी कोई असर न हुआ और उसने अपनी दुष्टता जारी रखी पापियोंके हृदयमें सदुपदेश नहीं ठहरता।

एक दिन रुद्र मुनि कैलाश पर्वतपर गया और वहां आतापन योग द्वारा तप करने लगा। इसके बीच एक और कथा है जिसका इसी से सम्बन्ध है। विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मेघनिबद्ध, मेघ-निचय और मेघनिदान नामक तीन सुन्दर शहर थे। वहांके राजा कनकरथके उनकी रानी मनोहरासे देवदारु और विद्युज्जिह नामक दो पुत्र हुए। ये दोनों सच्चरित्र और विद्वान थे। योग्य समझ कन-करथने अपने बड़े पुत्र देवदारुको राज्य भार सौंप आप गणधर

मुनिराजके पास दीक्षा लेकर योगी बन गया। सबको कल्याण मार्ग बतलाना ही अब उनका काम हो गया।

दोनों भाइयोंमें बहुत दिनों तक तो पटीपर बादको कोई कारणसे फूट हो गयी। फल स्वरूप छोटे भाईने राज्यके लाभमें पड़कर बड़ेके विरुद्ध षड्यन्त्र रच उसे राज्यसे निकाल दिया। देवदारुको अपने मानभंगका बड़ा दुःख हुआ और वहांसे आकर वह कैलाश पर्वतपर रहने लगा। देवदारुके आठ सुन्दर कन्याएं थीं एक दिन सब बहनें तालाबपर स्नान करनेको आई। अपने अपने कपड़े उतार ये नहानेको जलमें घुसो, उसी समय रुद्र मुनिने इन्हें खुले शरीर देखा। देखते ही कामसे पोड़ित हो ये इनपर मोहित हो गये और अपनो विद्या द्वारा उनके कपड़े चुरा मंगवाये। कन्याएं जब स्नानकर बाहर निकली तो कपड़े न देख उन्हें आश्चर्य हुआ। वे लज्जाके मारे व्याकुल होने लगीं। इतनेमें उनकी नजर रुद्र मुनिपर पड़ी और पास जाकर संकोचसे पूछा—प्रभो! कृपाकर हमें बताइये कि मेरे कपड़े क्या हो गये? आपत्ति के समय लज्जा संकोच सब जाता रहता है। रुद्रने निर्लज्जकी तरह उनसे कहा—हां, मैं तुम्हारे वस्त्रका पता बता सकता हूं यदि तुम सब मुझे चाहने लगो। कन्याओंने कहा—हम अबोध हैं, यदि पिताजी इस बातको स्वीकार कर लें तो फिर हमें कोई उज्र न रहेगा। इसपर मुनिने उनके वस्त्र लौटा दिये। बालिकाओंने घर जाकर सब बातें अपने पिताजीसे कहीं। देवदासने एक विश्वस्त कर्मचारी द्वारा मुनिको कहला भेजा कि वे अपनी लड़कियोंको उन्हें अर्पण कर सकते हैं यदि मुनिराज विद्युजिह्वको मारकर उन

का राज्य उन्हें वापस दिलवा सकें। रुद्रने यह स्वीकार कर लिया रुद्रको अपने अनुकूल देख देवदास उसे घरपर ले आया। राज्य भ्रष्ट राजा पुनः राज्य प्राप्तिके लिये क्या नहीं कर सकता है ?

रुद्र विजयार्द्ध पर्वतपर गया और विद्याओंकी सहायतासे विद्युजिह्वको मारकर उसी समय देवदासको सिंहासनपर बैठा दिया। राज्य प्राप्तिके बाद देवदासने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अपनी सब लड़कियोंका व्याह आनन्द उत्सवके साथ रुद्रसे कर दिया। इसके सिवाय और भी बहुत सी कन्याओंका उसने व्याह किया। दिवा-रात्रि उनके काम सेवनके फल स्वरूप सैकड़ों राज-कन्याएं अकालमें ही काल कवलित हुई। फिर इसने पार्वती से शादी की जिससे इसकी कुछ तृप्ति हुई।

कामी होनेके सिवा इसे अपनी विद्याओंका भी बड़ा घमण्ड हो गया था। अपनी विद्या बलसे इसने सब राजाओंको तंग कर रखा था। बहुत तंग आकर पार्वतीके पिता तथा अन्य राजाओंने मिलकर इसे मार डालनेका विचार किया। पर उसके पास था विद्याओंका बल, जिससे कोई उसका सामना करनेका साहस न करता था और करता भी था तो वे उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। तब उन लोगोंने पता लगाया कि काम सेवनके समय विद्याएं रुद्रसे पृथक हो जाती हैं। इसलिये मौका देखकर पार्वती के पिता आदिने खड्ग द्वारा रुद्रको सस्त्रीक मार डाला। पापियों-को पापका फल भोगना ही पड़ता है।

विद्याएं अपने स्वामीकी मृत्यु देख बड़ी दुखी हुई और क्रोधित हो प्रजाको दुःख देने लगीं। नाना प्रकारके दुःखों और बीमारियों

से गरीव प्रजा त्राहि त्राहि करने लगी। इसी समय एक ज्ञानी मुनि वहां आये, जिनसे प्रजाओंने उपद्रवका कारण और उसको शान्तिका उपाय पूछा। मुनिने सव कथा कहकर बतलाया कि जिस अवस्थामें रुद्र मारा गया है, उसकी एक बार स्थापना कर उससे क्षमा मांगो। वैसा ही किया गया और उपद्रव शान्त हुआ। एक बार इस कारण उसको पूजा हुई पर मूर्खता वश लोग अब तक भेड़ियाधसानकी तरह उसकी पूजा करते चले आते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं, सच्चा देव तो वह है जो राग द्वेष रहित, सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी है। अर्हन्त भगवानको छोड़ और ऐसा कौन है?

वे जिनेन्द्र भगवान मुझे शान्ति दें जो सर्व गुणाधार, सर्व सुख दायक एवं शोक सन्तापके मिटाने वाले हैं।

---

## ३८ लौकिक ब्रह्माकी कथा।

संसार द्वारा पूजित भगवान ब्रह्मा (आदिनाथ स्वामी) को नमस्कार कर, देवपुत्र ब्रह्माकी कथा लिखी जाती है।

कुछ लोग अज्ञानता वश यह कहते हैं कि एक बार ब्रह्माजीके मनमें आया कि मैं इन्द्रादि देवोंका पद छीन सर्वश्रेष्ट हो जाऊं, इसके लिये वे घोर तपस्या करने लगे। वे साढ़े चार हजार वर्षतक (देवोंके वर्षके हिसावसे

जो मनुष्योंके वर्षसे कई गुनी होती है ) वाताहारकर एक पांवपर खड़े हो तप करते रहे। उनकी तपस्यासे इन्द्रादिकोंका आसन हिल गया। उन्होंने ब्रह्माजीको तप भ्रष्ट करनेके लिये नाच, गानमें प्रवीन, सुन्दरताकी प्रतिमा तिलोत्तमा नामकी वेश्याको भेजा। तिलोत्तमा उनके पास आई और हाव-भावसे नाचने लगी। तिलोत्तमाका नृत्य, भुवन मोहिनी रूप राशि और हाव-भाव देख ब्रह्मा जी तपसे विचलित हो गये। हजारों वर्षकी तपस्या उन्होंने क्षण भरमें नष्ट कर दी। तिलोत्तमाकी रूप राशिको वे बड़े चावसे देखने लगे। ब्रह्माजीको अपनी ओर आकर्षित देख, वह उनकी बांई ओर नाचने लगी। ब्रह्माजीने अपने तप बलसे दूसरा मुख बाँई ओर बना लिया। फिर वह पीछे जाकर नाचने लगी और उन्होंने तीसरा मुख पीछे बनाया। दाहिनी ओर जाकर नाचनेपर ब्रह्माजीने उस ओर भी मुख बना लिया। अन्तमें तिलोत्तमा आकाशमें जाकर नाचने लगी। तब ब्रह्माजीने अपना पांचवा मुख गधेके मुखके आकारका बनाया।

अब उनकी तपस्याका फल बहुत थोड़ा बच रहा था। इस प्रकार उन्हें तप भ्रष्टकर, हृदयमें कामको आग जला, तिलोत्तमा अच्युत स्वर्ग चली गयी। बेचारे ब्रह्माजो कामके तीव्र वेगसे मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े। तिलोत्तमा इन्द्रसे सब हाल कहती हुई बोली प्रभो! अब आप चैनसे स्वर्गमें भोग भोगें। इन्द्रने खुश होकर उससे पूछा—तिलोत्तमा! तू ब्रह्माजीके पास ठहरी नहीं? तिलोत्तमा बोली—वाह! आपने तो उस बूढ़े खूसटसे मेरी अच्छी जोड़ी मिलाई है। मैं तो उसके पास खड़ी भी नहीं रह सकती। इ-

को ब्रह्माजीकी हालतपर बड़ी दया आयी, इसलिये उसने उनकी शांतिके लिये उर्वशी नामक महासुन्दरी अप्सराको उनके पास भेजा। उर्वशाने ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हें सचेत किया। अपने पांव तले एक स्वर्गीय सुन्दरीको बैठो देख वे बहुत प्रसन्न हुए, मानो उन्हें बड़ी तपस्याका फल मिल गया है। फिर ब्रह्माजी घर बनाकर उर्वशीके साथ रहने और मनमाने भोग भोगने लगे। तबसे वे लौकिक ब्रह्मा कहलाने लगे।

बड़े दुःखकी बात है कि लोग देवी-देवताके सच्चे रूपको न जान, उन्मत्तकी तरह मन गढ़न्त बातें उनके सम्बन्धमें कह दिया करते हैं। क्या कोई हठ करके इन्द्रादि देवोंका पद छीन सकता है, अथवा स्वर्गकी देवांगनाएं व्यभिचार कर सकती हैं? त्रिलोक-स्रस्टा ब्रह्मा ऐसा नीच काम करेगा, इसपर कौन विचारवान व्यक्ति विश्वास कर सकता है? जैन शास्त्रोंमें ब्रह्मा उसे कहा है, जो मोक्ष-मार्ग-प्रदर्शक, सच्चा ज्ञानी और आत्माको आत्म स्वरूप में स्थिर करनेवाला है। वह अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधु इन अवस्थाओंमें पांच प्रकारका है। इनके सिवा संसार में और कोई ब्रह्मा नहीं है। राग-द्वेष रहित, सर्व नियन्ता, सर्वज्ञ ऋषभ भगवान ही मेरे सच्चे ब्रह्मा हैं।

वे परम पवित्र आदिनाथ जिनेन्द्र मुझे सब दुःखोंसे छुड़ा शांति प्रदान करें जो भक्तजन रूपी कमलोंको खिलानेके लिये सूर्यके समान, संसार सागरसे पार करनेवाले और सर्व गुण सम्पन्न हैं।

---

# ३९ परिग्रहसे डरे हुए दो भाइयोंकी कथा

धन, धान्य दास, दासी, सोना, चांदी आदि जो जीवोंको तृष्णाके जालमें फंसाकर पीछे दुख-दायी होते हैं, इनके त्यागी साधु-मुनी हैं। उनसे भी ऊंचे, जिनके त्यागकी सीमा नहीं है, उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर परिग्रहसे डरे हुए दो भाइयोंकी कथा लिखी जाती है।

दशार्ण देशके एकरथ नामक शहरमें धनदत्त सेठ अपनी स्त्री धनदत्ता तथा कई सन्तानोंके साथ रहता था। पुत्रोंका नाम धनदेव, धनमित्र और कन्याका धनमित्रा था।

धनदत्तकी मृत्युके बाद पापयोगसे दोनों भाइयोंका धन नष्ट हो गया और वे महा दरिद्र हो गये। सहायताकी आशासे ये दोनों अपने मामाके यहाँ कौशाम्बी गये और उन्हें पिताकी मृत्यु एवं अन्यान्य समाचार कहा। मामा उनका हाल सुनकर दुःखी हुआ और धीरज देते हुए उन्हें आठ कीमती रत्न दिये जिससे ये अपना संसार चला सकें। वे पुरुष धन्य हैं जो ऐसे याचकोंकी आशा सहानुभूति पूर्ण शब्दोंके साथ अपने धन द्वारा पूर्ण करते हैं।

रत्न पाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ दोनों भाई घरको रवाना हुए। रत्नके लोभसे रास्तेमें दोनोंकी नियत बिगड़ गई और उन्हें परस्पर मार डालनेकी इच्छा हुयी। इतनेमें वे गांवके पास पहुंच गये और उन्हें सुबुद्धि सूझी। दोनों अपने नीच बिचारोंपर पश्चाताप करने लगे तथा परस्परमें अपना बिचार प्रगट कर मनका

मैल निकाल दिया। ऐसे घृणित बिचारोंके मूल कारण, उन्हें वे रत्न हो जान पड़े, इसलिए रत्नोंको वेत्रवती नदीमें फेंक वे पार चले आये। उन रत्नोंको मांस समझ एक मछली निगल गई जो पीछे धीवरके जालमें फंसी। धीवरको मछलीके पेटमें रत्न मिला जो उसने बाजारमें बेंच दिया। कर्म योगसे ये रत्न धनदत्तके हाथ लगे। माताने उनके लोभसे अपनी संतानोंको मार डालना चाहा पर उसे भी अपने बिचारोंपर पश्चाताप हुआ और रत्नको अपनी लड़कीके हवाले कर दिया। उसने भी रत्नोंके लोभके मारे अपनी माता, भाई आदिकी जान लेनी चाही पर सम्हल गयी। संसारमें लोभ सब पापोंका मूल है। धनमित्रने रत्नोंको अपने भाइयोंको दे दिया और वे उन्हें पहचान गये। उन्हें रत्नोंके प्राप्त होनेका हाल जानकर बड़ा हो वैराग्य हुआ। उसी समय सब दुःखोंके कारण सांसारिक ममता को छोड उनने दमधर मुनिके पास दीक्षा लेली। इन्हें साधु होते देख उनकी माता और बहन भी आर्यिका हो गयी। आगे चलकर ये दोनों भाई बड़े तपस्वी-महात्मा हुए और संसारका कल्याण करने लगे। उनके दर्शन और सदुपदेशके लिए बड़े बड़े लोग आने लगे।

लोभ सिर्फ संसारके दुःखोंका ही कारण नहीं बल्कि माता, पिता, भाई, बहन, बन्धु, बान्धव आदिमें परस्पर ठगने और बुरे बिचारोंके उत्पन्न करनेका घर है। बुद्धिमानोंको अपने हितके लिए पापके बाप इस लोभको मन, बचन और कर्मसे छोड़ जिनेन्द्र भगवानके बताए हुये धर्ममें मनको दृढ़ करना चाहिये।

---

# ४० धनसे डरे हुए सागरदत्तकी कथा।

ज्ञान चक्षुसे तीनों लोकको देखने और जाननेवाले भगवान जिनेन्द्रको नमस्कार कर धनके लोभसे डरकर मुनि हो जानेवाले सागरदत्तकी कथा लिखी जाती है।

किसी समय धनमित्र, धनदत्त आदि सेठ व्यापारार्थ कौशाम्बी से चलकर राजगृहकी ओर रवाना हुये। रास्तेमें एक गहन बनमें चोरोंने उन्हें लूट लिया। क्षीण-पुण्य पुरुषको सब काममें नुकसान ही उठाना पड़ता है।

धन पाकर चोरोंकी नियत बिगड़ गयी। सब चाहने लगे कि धन मेरे ही हाथ लगे और किसोको कुछ न मिले। इस लालचमें पड़ एक दूसरेकी जान लेनेकी कोशिश करने लगा। रातको जब सब खानेको बैठे तो किसोने भोजनमें विष मिला दिया जिसे खाकर सबके सब मृत्युके शिकार बने। यहां तक कि विष मिलाने-वाला भी भूलसे वही भोजन खाकर मर गया। उनमें एक सागर-दत्त नामक वैश्य पुत्र बच गया। इसका कारण यह हुआ कि उसने रातमें न खानेकी प्रतिज्ञा ली थी। धनके लोभमें पड़कर सबको एक साथ मरा देख सागरदत्तको बड़ा वैराग्य हुआ।

रात्रि भुक्तत्याग ब्रती सागरदत्तने संसारकी सब लीलाओंको दुःखका कारण और बिजलीकी तरह क्षण भरमें नाश होनेवाला समझ सब धन वहीं पड़ा छोड़कर आप एक ऊंचे आचरणका साधु बन गया। वे सागरदत्त मुनि आप सज्जनोंका कल्याण करें।

---

# ४१ धनके लोभसे भ्रममें पड़े कुबेरदत्त की कथा ।

सारे संसार द्वारा पूज्य जिनेन्द्र भगवानको सबसे उत्तम गिनी जानवाली जिनवाणीको तथा गुरुओंको भक्ति पूर्वक नमस्कार कर परिग्रहके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है ।

मणिवत देशमें मणिवत नामका एक शहर था। उसके राजाका नाम भी मणिवत था। मणिवनकी रानीका नाम पृथिवीमती और पुत्रका मणिचन्द्र था। मणिचन्द्र विद्वान, बुद्धिमान और शूरवीर था। राज काजमें उसकी अच्छी गति थी।

योग्यताके साथ राज काज चलाते हुये राजा सुखसे अपना समय विताते थे। धर्मपर उनकी श्रद्धा थी। सुपात्रोंको दान, भगवानकी पूजा और दूसरोंकी भलाई आदि शुभ कामोंमें वे अपना समय व्यतीत करते थे। एक दिन पृथिवीमती महाराजके बालोंको संवार रही थी कि उसकी नजर सफेद बालपर पड़ी। रानीने उसे निकाल राजाके हाथमें रख दिया जिसे कालका भेजा दूत समझ राजा संसार और विषय भोगोंसे विरक्त हो गये। वे अपने सुयोग्य पुत्रको राज्य भार सौंप भगवानकी पूजा कर तथा याचकोंको दान दे जंगलकी ओर रवाना हो गये। और दीक्षा लेकर तपस्या करने लगे।

मणिवत मुनि नाना देशोंमें उपदेश देते हुए एक दिन उज्जैन-

के बाहर मसानमें आये। रातको मृत शय्यापर ध्यान करते हुए शान्तिके लिये वे परमात्माका स्मरण-चिन्तन कर रहे थे कि इतने में एक कापालिक वैताली विद्या साधनके लिये वहां आया। उसे चूल्हेके लिये तीन मुर्दोंकी जरूरत पड़ी। एक तो मुनिको मुर्दा समझ तथा दो और मुर्दोंको वह घसीट लाया। तीनोंके सिरका चूल्हा बना, उसपर उसने एक नर कपाल रखा और आग सुलगा कर नैवेद्य पकाने लगा। आग जब जोरसे जल उठी और मुनिकी नसें जलने लगी तो उनका हाथ ऊपरको ओर उठ जानेसे सिरपर का कपाल गिर पड़ा। कापालिक डरकर भागा पर मुनिराज मेरु-के समान वैसेके वैसे अचल बने रहे। सवेरा होनेपर आते जाते लोगोंने मुनिकी यह दशा देख जिनदत्तको जाकर सब हाल सुनाया जिनदत्त उसी समय मसानमें गया और मुनिको अपने घरपर लाकर एक प्रसिद्ध वैद्यसे उनके इलाजके लिये पूछा। वैद्य महाशय ने कहा—सोम शर्मा भट्टके यहां लक्षपाक तैल है उसे लाकर लगाओ आगका जला उससे फौरन आराम होता है। सेठ सोमशर्माके घर गया, पर भट्टजीको वहां न देख, उनकी तुकारी नामकी स्त्रीसे तैलके लिये प्रार्थना की। तैलके कई घड़े उसके यहां भरे रखे थे, तुकारीने उसमेंसे एक घड़ा जिनदत्तको ले जानेको कहा। जिनदत्त ऊपर जाकर एक घड़ा उठा कर लाने लगा। भाग्यसे सीढ़ियां उत-रते समय पांव फिसल जानेसे घड़ा हाथसे छूट गया। घड़ा फूट गया और तैल सब रेलम ठेल हो गया। जिनदत्तने डरते हुए घड़ेके फूट जानेका हाल तुकारीसे कहा। तुकारीने दूसरा घड़ा ले आनेको कहा। उसे पहले घड़ेके फूट जानेका ख्याल भी नहीं हुआ। सज्जनों

का हृदय समुद्रसे भी कहीं अधिक गम्भीर हुआ करता है। दूसरा घड़ा लाते समय भी तैलसे चिकनी जगह पांव पड़ जानेसे वह फिर फिसल गया और तैल बह गया। इसी तरह तीसरा घड़ा भी फूट गया। अब तो जिनदत्तके देवता कूच कर गये और मारे भयके वह थर-थर कांपने लगा। यह दशा देख तुकारीने उससे कहा घबड़ाने और डरनेकी कोई बात नहीं। तुमने जानकर घड़े थोड़े ही फोड़ दिये हैं? किसी प्रकारकी चिन्ता न कर, जब तुम्हें जरूरत हो, खुशीसे ले जाया करो। कोई कैसा भी सहनशील क्यों न हो, पर ऐसे मौकेपर उसे भी क्रोध आये बिना नहीं रहता। फिर इस स्त्रीमें इतनी क्षमा कहांसे आई? इसका जिनदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने तुकारीसे पूछा—मां! मैंने इतना भारी अपराध किया, उसपर भी तुमको रत्तीभर क्रोध नहीं आया, इसका क्या कारण है? तुकारीने कहा—भाई! क्रोध करनेका फल जैसा चाहिये वैसा मैं भुगत चुकी हूं, इसलिये क्रोधके नामसे ही मेरा जी कांप उठता है। यह सुनकर जिनदत्तका कौतुक और बढ़ा और उसने पूछा यह कैसे? तुकारी कहने लगी—

चन्दनगरमें धनवान और राजका आदरपात्र शिवशर्मा ब्राह्मण अपनी स्त्री कमलश्रीके साथ रहता था। उसके आठ पुत्र और एक कन्या थी। लड़कीका नाम भट्टा था, जो मैं ही हूं। मैं थी बड़ी सुन्दरी पर मुझमें सबसे बड़ा दुर्गुण यह था कि मैं अत्यन्त मानिनी और बोलनेमें बड़ी तेज थी। इसलिये मेरे भयका सिक्का लोगोंपर ऐसा जमा हुआ था कि किसीकी हिम्मत मुझे 'तू' कहकर पुकारनेकी नहीं होती थी। मुझ ऐसी मानिनी देख मेरे पिताने शहरमें

ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई मेरी बेटीको 'तू' कहकर न पुकारे। मुझसे किसीने 'तू' कहा कि मैं उससे लड़नेको तैयार हो जाती और पल भरमें उसको हज़ारों पड़ियोंको सामने ला खड़ी करती। पिताजी इस लडाई झगड़ेसे सौ हाथ दूर भागनेकी कोशिश करते। मेरे खोटे भाग्यसे डोंड़ी पिटवानेका यह फल हुआ कि उस दिनसे मेरा नाम 'तुकारी' पड़ गया और सब कोई मुझे इस नामसे पुकार पुकारकर चिढ़ाने लगे। अधिक मान कभी अच्छा नहीं होता। इस चिढ़के मारे कोई मुझसे ब्याह करने को राजी न होता था। मेरे सोमशर्मा जीने प्रतिज्ञा की कि मैं कभी इसे 'तू' कहकर न पुकारूंगा। तब इनके साथ मेरा ब्याह हो गया। मैं बड़े उत्साहके साथ उज्जैन लाई गयी। इस घरमें आकर मैं बड़े सुखसे रही। भगवानकी कृपासे मेरा घर सब तरह हरा भरा और धन-धान्यसे परिपूर्ण है।

पर 'पड़ा स्वभाव न जाय जीवसे' इस कहावतके अनुसार मेरा स्वभाव सहजमें थोड़े ही मिट जानेवाला था। एक दिन मेरे स्वामीको नाटक देखकर आनेमें बहुत देर हो गयी। इसपर मुझे इतना गुस्सा आया कि उस दिन दरवाजा न खोलनेकी प्रतिज्ञा कर मैं सो गयी। थोड़ी देर बाद वे आये और किवाड़ खोलनेको बार बार मुझे पुकारने लगे। मैं चुप्पी साधे पड़ी रही पर किवाड़ न खोला। बाहरसे चिल्लाते चिल्लाते वे थक गये पर उसका मुझपर कुछ असर न आया। आखिर उन्हें क्रोध आया और अपनी प्रतिज्ञा भूल 'तू' कहकर मुझे पुकारा। 'तू' कहते ही मैं सिरसे पांव तक जल उठी और क्रोधसे अन्धी बन किवाड़ खोलती हुई घरसे निकल भागी। मुझे इसका भी ठीक न रहा कि मैं कहां जा रही हूं। शहर

से बाहर एक जङ्गलमें जानेपर चारोंने मेरे सब गहने-दागीने और वस्त्र छीन मुझे विजयसेन नामक भीलको सौंप दिया। मुझे सुन्दरी देख उस पापीने मेरा धर्म बिगाड़ना चाहा पर भाग्यवश किसी दिव्य स्त्रीने आकर मुझे बचाया। भीलने उस दिव्य स्त्रीसे डरकर मुझे एक सेठके हाथ सौंप दिया। उसकी नियत भी बिगड़ी पर मेरे झाड़नेपर वह कुछ कर तो न सका लेकिन गुस्सेमें आकर मुझे एक ऐसे नीच आदमीके हाथ सौंप दिया जो जीवोंके खूनसे रङ्ग-कर कम्बल बनाया करता था। वह प्रति दिन जोंक लगाकर मेरा बहुत सा खून निकाल लेता और उससे कम्बल रंगा करता। मेरी जैसे हतभागिनीको पद पद पर कष्ट उठाना पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

इसी समय उज्जैनके राजाने मेरे भाईको यहांके राजा पारसके पास किसी कामसे भेजा। काम पूरा कर लौटती समय अचानक उससे मेरी भेंट हो गयी। मैंने अपने कर्मोंपर पश्चाताप किया। और सब हाल उससे कहा जो सुनकर उसे भी दुःख हुआ। उसी समय वह राजाके पास गया और उनसे सब हाल कहकर कम्बल बनानेवाले पापीसे मेरा पिण्ड छुड़ाया। वहांसे लाकर उसने फिर मुझे अपने स्वामीके घर पहुंचा दिया। कष्टके समय काम आनेवाले ही सच्चे बन्धु हैं। यह तो तुम्हें मालूम है कि मेरे शरीरका खून प्रायः निकाल चुका था जिससे घर जाते ही मुझे लकवा मार गया। तब वैद्यने यह लक्षपाक तैल बनाकर मुझे चङ्गा किया। इसके बाद मैंने एक वीतरागी साधुसे धर्मोपदेश सुनकर सर्व श्रेष्ठ सम्यक्त्व व्रत ग्रहण किया और साथ ही यह प्रतिज्ञा की कि आजसे मैं

किसीपर क्रोध न करूंगी। यही कारण है कि मैं अब किसीपर क्रोध नहीं करती।" अब आप जाइये और इस तेल द्वारा मुनिराज की सेवा कीजिये। अधिक देर करना उचित नहीं है।

जिनदत्त भट्टाको नमस्कार कर गया और तैलके मालिश तथा अन्य उपायों द्वारा मुनिकी सेवा करने लगा, जिससे कुछ दिनोंमें मुनिको आराम हो गया। चौमासा आ जानेके कारण मुनिराजने कहीं अन्यत्र जाना ठीक न समझ यहीं जिनदत्त सेठके जिनमन्दिरमें वर्षायोग लेलिया और रहने लगे।

जिनदत्तके कुबेरदत्त नामका एक लड़का था। उसकी चाल चलन ठीक न देख जिनदत्तने इसके डरसे कीमती रत्नोंका घड़ा जहां मुनि सोया करते थे वहां खोदकर गाड़ दिया। गुप्त रीतिसे यह काम करने पर भी कुबेरदत्तको इसका पता लग गया। उसने वहांसे घड़ेको निकाल मन्दिरके आंगनमें दूसरी जगह गाड दिया। कुबेरदत्तको ऐसा करते मुनिने देखा पर उन्होंने किसीसे कुछ नहीं कहा। कहते भी कैसे जब कि उनका मार्ग ही भिन्न था।

जब योग पूरा हुआ तब मुनिराज जिनदत्तको पूछकर वहांसे चले गये और शहरके बाहर जाकर ध्यान करने बैठ। मुनिराजके जानेके बाद सेठने रत्नोंका घड़ा घर ले जानेके लिये जमीन खोदकर देखा तो वहां घडा नहीं। घड़ेको एकाएक गायब देख उसे आश्चर्य हुआ। घड़ेका हाल केवल मुनि जानते थे। इस कारण उसे घड़ा गायब करनेका मुनिपर कुछ सन्देह हुआ। तब वह मुनिके पास गया और उनसे प्रार्थना की कि प्रभो! आपपर मेरा बड़ा प्रेम है, इसलिये आप कुछ दिनों तक और मेरे घरपर ठहरें तो बड़ी

कृपा हो। इस तरह मायाचारसे जिनदत्त मुनिराजको फिर अपने मन्दिरपर लौटा लाया। एक दिन उसने मुनिराजसे कहा कि स्वामी! कोई मनोरञ्जन धर्म कथा सुनाईये। इसपर मुनि बोले—हम रोज सुनाया करते हैं, आज तुम्हीं कोई कथा कहो। तुम्हें इतने दिन शास्त्र पढ़ते हो गये, देखें तुम्हें उनका सार कितना याद है? जिनदत्त अपने कपट-भावोंको प्रकट करते हुये एक ऐसी कथा सुनाने लगा। वह बोला—

"एक दिन राजा वसुपालने अयोध्याके राजा जितशत्रुके पास किसी कामके लिये अपना दूत भेजा। एक तो गर्मीका समय, उसपर राहकी थकावट, इससे उसे बड़े जोरसे प्यास लगी। पानी न मिलनेके कारण आते आते वह एक घने वनमें वृक्षके नीचे गिर पड़ा। उसकी यह दशा देख एक बन्दर दौड़ता हुआ तालावपर गया और जलमें डुबकी लगाकर वृक्षके नीचे पड़े पथिकके पास आया। आते ही उसने अपने शरीरको उसपर झिड़क दिया। जब जल उसपर गिरा तो उसकी आंखें खुली। फिर बन्दरके इशारेसे तालावपर जाकर उसने अपनी पिपासा बुझायी। उसने साथ भी थोड़ा जल ले जानेका विचार किया पर पासमें कोई बर्तन नहीं था। कोई उपाय न देख जीवन-रक्षक बन्दरको गोलीसे मार, उसके चमड़ेकी थैली बना, उसमें पानी भरकर वह चल पड़ा।" अच्छा प्रभो! अब आप ही कहिये कि उस नीच निर्दयी पथिकको क्या यह उचित था कि वह अपने उपकारी बन्दरकी इस प्रकार हत्या करे? उस दूतको कृतघ्न बतलाते हुये मुनिराजने भी अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेके लिये एक कथा आरम्भ की। वे कहने लगे—

"कौशाम्बीमें किसी समय शिवशर्मा ब्राह्मण अपनी स्त्री कपिलाके साथ रहता था। उसके कोई सन्तान न थी। एक दिन शिवशर्मा किसी दूसरे गांवसे अपने शहरकी ओर लौट रहा था। रास्तेके जंगलमें उसने एक नेवलेके बच्चे को देखा। उसे घर लाकर शिवशर्माने अपनी प्रियासे कहा—प्रिये मैं तुम्हारे लिये एक लड़का लाया हूं। यह कहकर उसने नेवलेको कपिलाकी गोदमें रख दिया। मोहान्ध पुरुष क्या क्या नहीं करते ? ब्राह्मणी उसे पालने-पोसने लगी। नेवला भी अपने ज्ञान और बुद्धिके अनुसार ब्राह्मणीका बतलाया कुछ काम कर दिया करता था।

कुछ दिन बाद ब्राह्मणीके भी एक पुत्र हुआ। एक दिन ब्राह्मणी बच्चेको पालने पर सुलाकर आप धान खांडने चली गयी और पुत्र रक्षाका भार नेवलेको सौंप गई। इतनेमें एक सर्पने आकर बच्चे को काट लिया और बच्चा मर गया। क्रोधमें आकर नेवलेने सर्प को टुकड़े टुकड़े कर डाले। खून भरे मुंहसे वह कपिलाके पास गया उसे खूनसे लथ-पथ देख कपिला कांप गई। उसने समझा कि इसने मेरे बच्चेको खा लिया और क्रोधके वेगमें बिना सोचे विचारे पास पड़े हुए मूसलेको उठाकर नेवले पर दे मारा। नेवला तड़फड़ा कर मर गया। फिर वह दौड़ती हुई बच्चेके पास गई और वहां एक काले सर्पको मरा पड़ा देखा। फिर उसे पछतावा हुआ। ऐसे मूर्खों को धिक्कार है जो जल्दी बाजीमें क्यासे क्या कर डालते हैं।"

अच्छा अब कहिये तो सेठजी ? सर्पके अपराध पर नेवलेको इस प्रकार मार देना क्या ब्राह्मणीको उचित था ? जिनदत्तने कहा नहीं यह उसकी गलती हुई। फिर उसने एक कथा आरंभ की:—

"वनारसके राजा जितशत्रुके यहां धनदत्त राजवैद्य था। उसकी स्त्रीका नाम धनदत्ता और पुत्रोंका धनमित्र और धनचन्द्र था। लाड़-प्यारमें उन्होंने अपनी कुल-विद्या भी न सीखी। कुछ दिन वाद वैद्यराजके मर जाने पर उन दोनों भाइयोंको मूर्ख देख उनके पिताकी जीविका पर राजाने किसी दूसरेकी नियुक्त कर दी। अब उनकी बुद्धि ठिकाने आयी और वैद्यक शास्त्र पढ़नेके लिये वे चम्पापुरीमें शिवमुर्ति वैद्यके पास गये। वैद्यसे अपनी सब हालत कह उन्होंने वैद्यक पढ़नेकी इच्छा प्रगट की। शिवमूर्ति बड़ा दया-वान् और परोपकारी था। वह दोनों भाइयोंको अपने पास रख-कर पढ़ाने लगा। कुछ ही वर्षोंमें दोनों अच्छे हुशियार हो गये फिर गुरुदेवसे कृतज्ञता प्रगट कर वे वनारसको रवाना हुए। राहके जंगलमें उन्होंने आंखकी पीड़ासे दुखित एक सिंहको देखा। धन-चन्द्रको उस पर बड़ी दया आयी और अपने वड़े भाईके बहुत मना करने पर भी उसने सिंहकी आखोंका इलाज किया। आराम होते ही आंख खोलने पर सिंहने धनचन्द्रको सामने खड़ा पाया और उसे क्रूरताके साथ खा गया।" मुनिराज! उस दुष्ट सिंह का बेचारे उपकारी वैद्यको खा जाना क्या अच्छा काम हुआ? मुनिने 'नहीं' कह कर एक और कथा आरम्भ की।

"चम्पा पुरीमें सोमशर्मा ब्राह्मणकी दो स्त्रियां थीं। एकका नाम सोमिल्य और दूसरीका सोमशर्मा था। पहली बांझ थी और दूसरीके एक लड़का था। वहीं एक वैल था जिसे लोग 'भद्र' नामसे बुलाया करते थे। वैल वड़ा सीधा सादा था, जो थोड़ा बहुत घास खानेको मिल जाता उसे ही खाकर रह जाता था एक दिन पापिनी

सोम शर्माने डाहके मारे सौतके बच्चेको निर्दयतासे मार, उसका दोष बैलके ऊपर लगा दिया। उसे ब्राह्मण बालकका मारने वाला समझ लोगोंने घास खिलाना छोड़ दिया और शहरके बाहर निकाल दिया। भूख प्यासके मारे वह दुःख पाने लगा और वह दुबला हो गया फिर भी किसीने उसे शहरके भीतर न घुसने दिया। एक दिन जिनदत्त सेठकी स्त्रीपर व्यभिचारका दोष लगा। वह अपनी निर्दोषता प्रमाणित करनेके लिये चौराहेपर जाकर खड़ी हुई जहां पर बहुतसे मनुष्य इकट्ठे हो रहे थे। कोई भयंकर दिव्य लेनेके इरादेसे उसने एक लोहेके टुकड़ेको आगमें तपाकर लाल किया। इस मौकेपर झट वहां पहुंचकर बैलने उस तप्त लोह खण्डको मुंह से उठा लिया। इसको यह भयंकर दिव्य देख सब लोगोंने उसे निर्दोष समझ लिया। अच्छा सेठजी! कहिये तो उस निरपराध पशुपर दोष लगाना, क्या उन लोगोंके लिये ठीक था? जिनदत्तने नहीं कहकर फिर एक कथा छेड़ी। वह बोला—

एक बार गंगा किनारे एक हाथीका बच्चा कीचड़में फंस गया उसे तड़पते देख विश्वभूति मुनि कीचड़से निकाल. अपने आश्रम में लिवा लाये। यत्न पूर्वक पालन पोषण करनेसे धीरे धीरे वह एक महान हाथीके रूपमें आ गया। श्रेणिकने इसकी प्रशंसा सुन इसे अपने यहां रख लिया। तापसके यहां हाथी बड़ी स्वतन्त्रतासे रहता था पर यहां उसे अंकुश आदिका कष्ट सहना पड़ा। इस दुःखके मारे एक दिन वह सांकल तोड़कर तापसके आश्रममें भाग आया राजाके नौकर भी उसे पकड़ने पीछे पीछे गये। तापसी मोठे शब्दोंमें समझा बुझाकर हाथीको नौकरोंके सुपुर्द करने लगा। इस

पर क्रोधित होकर उसने बेचारे तापसीको ही जान ले ली। तो क्या मुनिराज ! हाथीको यह उचित था कि वह अपने रक्षकको ही मार डाले ? मुनि 'ना' कहकर एक और कथा कहने लगे। उन्होंने कहा—

"हस्तिनापुरकी पूरव दिशामें विश्वसेन राजाका बनाया आमों का एक बगीचा था। उसमें आम खूब लग रहे थ। एक दिन एक चील मरे सांपको चोंचमें लिये आमके पेड़पर बठ गया। उस समय साँपके जहरसे एक आम पक गया। मालीने वह पका आम राजाको भेंट किया। राजाने उसे "प्रेमोपहार" के रूपमें अपनी रानी धर्मसेनाको दिया। रानी उसे खाते ही मर गई। राजाने क्रोधित होकर एक फलके बदले सारे बगीचेका मिटवा डाला। मुनिराजने कहा—क्यों सेठ महाशय ! राजाका यह काम ठीक हुआ क्या ? सेठने 'ना' कहकर एक और कथा शुरू की। वह बोला -

"एक मनुष्य जगलमें होकर चला जा रहा था। वहां सिंहको देख डरके मारे एक वृक्ष पर चढ़ गया। जब सिंह चला गया तब वह नीचे उतरकर जाने लगा। रास्तेमें इसे राजाके आदमी मिले जो भेरीके लिये एक अच्छे वृक्षकी तलासमें आए थे। उस दुष्टने लोगोंको वही वृक्ष बतला दिया जिस पर चढ़कर उसने जान बचायी थी। राजाके आदमी उस छायादार सुन्दर वृक्षको काटकर ले गये।" मुनिराज ! क्या उस दुष्टके लिये यह उचित था कि वह अपने प्राण रक्षकका सबनाश करे ? मुनिराजने 'नहीं' कह कर और एक कथा कही। वे बोले—

"गन्धर्व सेन राजाकी कौशाम्बी नगरीमें अंगार देव नामक सुनार रहता था। जातिका यह ऊंच था और रत्नोंकी जड़ाईका काम बहुत बढ़िया करता था। एक दिन वह राज मुकुटका बहुमूल्य मणि साफ कर रहा था कि इतनेमें मेदज मुनि आहारके लिये आये। उन्हें ऊंची आसन पर बैठा और उनके सामने उस मणिको रख वह भीतर स्त्रीके पास चला गया। इधर मणिको मांसके भ्रम से क्रूंज पक्षी निगल गया। भोजनका प्रबन्ध कर जब वह लौटा तो देखता है कि वहां मणि नहीं। मणि गायब देख उसके होश उड़ गये। उसने मुनसे पूछा—महाराज! अभी मणि आपके पास रख मैं भीतर गया. इतनमें वह कहां चला गया? मुनिको चुप देख अंगारदेव का सन्देह उन्हीं पर हुआ। उसने फिर पूछा—स्वामी! मणि क्या हुआ? जल्दी कहिये, नहीं तो राजाको पता होनेसे वह मेरे सारे परिवारको बरबाद कर डालेगा। मुनिको फिर भी चुप देख क्रोधसे उसका चेहरा लाल हो गया। उसने जान लिया कि मणि इसीने चुराया है। फिर मुनिको बांध, उसने डण्डेसे पीटना शुरू किया पर मुनि उसी तरह स्थिर बने रहे। ऐसे धन और मूर्खताको धिक्कार है जिसके वशमें मनुष्य विवेकहीन हो सब कुछ कर सकता है। अंगारदेव मुनिको जिस डण्डेसे पीट रहा था, वह एक बार क्रूंज पक्षीके गले पर भी जा लगा जिससे मणि बाहर आ गिरा। मणिको देखते ही अंगारदेव आत्म ग्लानि, लज्जा और पश्चातापके मारे अधमरा सा हो गया। वह मुनिके चरणोंमें गिर-क्षमा मांगने लगा।" क्यों, सेठजी! समझे मेदज मुनिको मणिका हाल मालूम था पर दयाके वश उन्होंने पक्षीका मणि निगल जाना

न बतलाया। उन्हें भय था कि कह देनेसे पक्षीकी जान न जाय। तुम्हारे घड़ेका हाल जानते हुए भी मैं नहीं कह सकता क्योंकि यह संयमी का मार्ग नहीं है कि वह किसीको कष्ट पहुंचावे। जो तुम करना चाहो करो, मुझे उसकी चिन्ता नहीं।

घड़ेका छुपाने वाला कुबेरदत्त अपने पिता और मुनिका कपोल कथन सुन रहा था। मुनिका अन्तिम निश्चय सुन उसको उनपर बड़ी भक्ति हुई। उसने उसी समय घड़ेको लाकर पिताके सामने रख दिया और जरा गुस्सेसे बोला—हां, देखता हूं, आप मुनिराज पर अब कितना उपसर्ग करते हैं। यह देख जिनदत्त शर्मिन्दा हुआ और अपने विचारोंपर पश्चाताप करने लगा। अन्तमें दोनों पिता पुत्रने मुनिराजके चरणोंमें पड़कर अपराध क्षमा करायी और उदासीन होकर उन्हीसे दीक्षा भी ले ली। तबसे वे आत्म कल्याणके साथ साथ औरोंको भी सन्मार्ग बतलाने लगे।

वे साधु रत्न मुझे शान्ति दें जो भगवानके बतलाये सम्यग्ज्ञान और सम्यकत्वको धारण किये हैं और शील ही जिसकी लहरें हैं ऐसे मुनिराजको मैं सादर नमस्कार करता हूं।

मूल संघके मुख्य चलाने वाले श्रीकुन्द कुन्दाचार्यको परम्परामें भट्टारक मल्लिभूषण हुए हैं। वे मेरे गुरु हैं, रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको धारण करने वाले तथा गुणोंकी खान। वे आप लोगोंका कल्याण करें।

# ४२ पिण्याक गन्धकी कथा ।

जगदाधार, जन सुखदायक श्री जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर धन-लोभी पिण्याक गन्धकी कथा लिखी जाती है ।

रत्नप्रभ कांपिल्य नगरके राजा थे । उनकी रानी विद्युत्प्रभा बड़ी सुन्दरी और गुणवती थी वहीं जिनदत्त सेठ रहता था । वह विवेकी और जिन धर्मपर पूर्ण विश्वास करनेवाला था । राजाके यहां भी उसकी प्रतिष्ठा थी । उसी शहरमें एक दूसरा करोड़पति और महा लोभी सेठ रहता था; जिसका नाम पिण्याकगन्ध था । इतना धन और सब प्रकारकी सुख सामग्री रहनेपर भी पापके उदय अथवा अपनी कंजूसीसे वह सदा दुःख ही भोगा करता था । उसकी स्त्रीका नाम सुन्दरी और पुत्रका विष्णुदत्त था ।

एक दिन राज तालबको खोदते समय उड्डु नामक मजूरको सोनेकी सलाइयोंसे भरी लोहेकी सन्दूक मिली । हजारों वर्षोंसे गड़े रहनेके कारण सन्दूकमें जंग लग गया था और सलाइयों पर बहुत मैल जम गया था । मैलसे यह नहीं जान पड़ता था कि वे सोनेकी हैं । उनमेंसे एक सलाई लाकर उड्डुने जिनदत्त सेठको लोहेके भाव वेचा । पीछे ध्यानसे देखने और धोने पर सेठको मालूम हुआ कि वह सोनेकी सलाई है । उसे चोरीका माल समझ सेठने उसकी एक जिन प्रतिमा बनवाई और प्रतिष्ठा कराकर मन्दिरमें उसे

विराजमान कर दिया। धर्मात्मा पुरुष पापसे बहुत डरते हैं। कुछ दिन बाद उडु फिर एक सलाई लिये जिनदत्तके पास पहुंचा। इस बार सेठने उसे यह कहकर नहीं लिया कि वह धन दूसरेका है। तब उडुने उसे पिण्याकगन्धके हाथ बेच दिया। पिण्याकगन्धको जब यह मालूम हुआ कि सलाई सोनेकी है, तो लाभमें आकर उसने उडुसे कहा कि इन दिनों मुझे लोहेकी बहुत जरूरत है इसलिये ऐसी सलाइयां और तुम्हारे पास हों तो दे जाना। इस प्रकार अट्ठानवें सलाइयां उसने खरीद कर ली। उडुको उसका सच्चा रूप और भाव न मालूम होनेके कारण सबकी सब सलाइयां लोहेके भाव बेंच दीं।

एक दिन पिण्याकगन्ध बहनके विशेष अनुरोध करनेपर भानजेके ब्याहहे दूसरे गांव जाने लगा तो अपने पुत्रको सलाई बताकर कह गया कि इसी आकार-प्रकारका लोहा कोई बेचने आवे तो उसे ले लेना। पिण्याकगन्धके पापका घड़ा अब भर चुका था, इसलिये फूटनेके समय वह जबरदस्ती दूसरे गांव भेजा गया।

उडुके पास अब एक ही सलाई बची थी, वह उसे बेचने पिण्याकगन्धके पास आया। उसे घरपर न देख उसने उसके लड़के विष्णुदत्तके हांथमें सलाई देकर कहा—आपके पिताजीने ऐसी बहुतेरी सलाइयां मुझसे मोल ली है, अब केवल एक ही बची है, इसे ले आप मुझे इसकी कीमत दे दीजिये। विष्णुदत्तने जरूरत न बतला कर उसे वापस कर दिया। उसी समय एक सिपाहीने मिट्टी खोदनेके लिए वह सलाई उससे खरीद ली।

एक दिन सिपाही जमीन खोद रहा था कि मैल साफ हो जाने

से सलाईपर कुछ लिखा हुआ उसे देख पड़ा। उसपर लिखा था कि "सोनेकी सौ सलाइयां सन्दूकमें हैं" यह देख सिपाहीने उड्डुसे संदूकके विषयमें पूछा। उसने सब बातें ठीक ठीक बतला दीं। फिर सिपाही उसे राजाके पास ले गया। राजाके पूछनेपर उड्डुने कहा कि मैंने ऐसी अट्ठानवें सलाइयां तो पिण्याकगन्ध सेठको बेच दी है और एक जिनदत्त सेठको। राजाने पहले जिनदत्तको बुलाकर सलाईके बाबत पूछा। जिनदत्तने कहा—महाराज! मैंने एक सलाई खरीदी थी, पर जब मुझे मालूम हुआ कि वह सोनेकी है तो मैंने उसकी जिन प्रतिमा बनवा ली, जो मन्दिरमें मौजूद है। राजा प्रतिमा देखकर खुश हुआ और जिनदत्तकी सचाईपर बहुमूल्य वस्त्राभूषण दे, उसका सत्कार किया। गुणोंकी पूजा सब जगह होती है।

इसके बाद राजाने पिण्याकगन्धको बुलवाया। घरपर न मिलनसे राजाको निश्चय हो गया कि उसने राज-धन धोखा देकर ठग लिया है। पूछ ताछ करनेपर सलाइयोंका हाल न बतानेके कारण राजाने उसका घर जप्त कर लिया और उसके कुटुम्बको कैदखानेमें डाल दिया। दूसरोंका धन मारनेसे एक दिन अपना ही सर्वनाश होता है।

उधर व्याह हो जानेके बाद घर लौटते समय रास्तेमें ही पिण्याकगन्धको अपने कुटुम्बकी दुर्दशाकी खबर मिली। सुनकर वह बड़ा दुःखी हुआ और धन-जनकी दुर्दशाका मूल कारण अपने पैरोंको ठहराया, जिनके द्वारा वह दूसरे गांव गया था। पैरोंपर उसे बहुत गुस्सा आया और पत्थरसे उसने उसी समय उन्हें तोड़ दिया।

मौत उसके सिरपर नाच रही थी। चोट अधिक लगनेसे वह लोभी बुरे विचारोंके साथ मरकर नरक गया। अतएव बुद्धिमानोंको अनीति और पापको बढ़ानेवाले लोभसे सदा दूर ही रहना चाहिये।

कर्म विजयी. प्रकाशमय, दोषरहित, भव्य-जनोंको मोक्ष देने वाले जिन भगवानका धर्म संसारमें सदा वर्तमान रहे तथा जीवों को सच्चा मार्ग दिखावे।

---

## ४३ लुब्धक सेठकी कथा।

सर्व ज्ञान मय, त्रिलोक-स्वामी जिन भगवानको प्रणाम कर लुब्धक सेठकी कथा लिखी जाती है।

अभयवाहन चम्पापुरीके राजा थे। इनकी रानी पुण्डरीका थी जिसके नेत्र पुण्डरीक-कमल कमल जैसे थे। वहीं लुब्धक नामका सेठ अपनी नागवसु और दो हँस-मुख पुत्र गरुड़दत्त और नागदत्तके साथ रहता था।

लुब्धक बहुत धनी था। बहुत खर्च करके उसने यक्ष, पक्षी, हाथी, ऊंट, घोड़ा, सिंह, हरिन आदि पशुओंकी एक एक जोड़ी सोनेकी बनवाई। इनके सींग, पूंछ, खुर आदिमें बहुमूल्य हीरा, मोती, माणिक आदि रत्नोंको जड़ाकर उसने एक दर्शनीय वस्तुओंका संग्रह किया जो उन्हें देखता वही लुब्धककी प्रशंसा करता।

स्वयं लुब्धक भी इस जगमगाती प्रदर्शनीको देख अपनेको धन्य मानता। उसे दुःख सिर्फ एक बातका था कि वह बैलकी जोड़ी बना रहा था जिसमें एक बैल उसने बनवाया पर सोना न रहनेके कारण दूसरा न बना सका। उसे इसकी चिंता बराबर रहती थी और इस कमीको पूरा करनेके यत्नमें वह लगा रहता था।

एक बार लगातार सात दिन तक पानी पड़नेसे नदी नाले सब भर गये। कर्म वीर लुब्धक ऐसे समयमें भी अपने दूसरे बैलके लिये लकड़ी लेने स्वयं नदी किनारे गया और बहती नदीसे लकड़ी निकाल उसकी गठरी बांधी, फिर सिरपर गठरी ले वह घर आया। तृष्णा कभी मिटती नहीं है।

रानी पुण्डरीका महलपर बैठी प्रकृतिकी शोभा देख रही थी। महाराज भी उसीके पास बैठे थे। लुब्धकको वृष्टिमें काठका बोझा लादकर आते देख रानीने अभयवाहनसे कहा—प्राणनाथ! आपके राज्यमें यह कोई बड़ा दरिद्र है, देखिये बेचारा इस पानीमें भी लकड़ियोंका गठ्ठर लिये आ रहा है। आप इसे कुछ सहायता कीजिये जिससे इसका कष्ट दूर हो। राजाने उसी समय लुब्धकको बुलाया ओर कहा जान पड़ता है कि तुम्हारे घरकी हालत अच्छी नहीं है, इसलिये तुम्हें जितने रुपयेकी जरूरत हो, मेरे खजानेसे ले जाओ। लुब्धकने उनसे कहा—महाराज! मुझे और कुछ न चाहिये, केवल एक बैलकी जरूरत है। राजाने उसे अपने यहांके बैलोंमेंसे एक बैल ले जानेको कहा। राजाके जितने बैल थे उन सबको देख लुब्धकने राजासे आकर कहा—पृथ्वीपति! आपके बैलोंमें मेरे जैसा एक भी बैल नहीं है। सुनकर राजाको आश्चर्य हुआ और

उन्होंने लुब्धकसे कहा—भाई ! तुम्हारा बैल कैसा है ? मैं देखना चाहता हूं। लुब्धकने बड़ी खुशीसे राजाको अपने घर ले जाकर सोनेके बने बैलको दिखलाया। जिसे उन्होंने महा दरिद्र समझा था उसे इतना बड़ा धनी देखकर आश्चर्य हुआ।

लुब्धककी स्त्री नागवसुने अपने घर महाराजको आया हुआ देख, उनकी भेंटके लिये सोनेके थालको बहुमूल्य रत्नोंसे सजाया। उसे अपने स्वामीके हाथमें देकर वह बोली—इस थालको महाराज की भेंट कीजिये। थालको रत्नोंसे भरा देख लुब्धककी छाती फटने लगी, पर महाराज पास ही थे, इसलिये थाल हाथोंमें लेना पड़ा। थाल लेते ही उसके हाथ थर थर कांपने लगे और ज्यों ही उसने देनेको महाराजके पास हाथ बढ़ाया कि लोभके मारे उसकी अंगु-लिया महाराजको सांपके फणकी तरह देख पड़ीं। जिसने कभी किसीको एक कौड़ी न दी हो, उसका मन क्या दूसरेकी प्रेरणासे कभी दानकी ओर झुक सकता है ? नहीं। राजाको उसके वर्ताव पर बड़ी घृणा हुई और एक पल भी वहां रहना उन्हें अच्छा न लगा। वे उसका नाम 'फणहस्त' रखकर अपने महलमें आ गये।

लुब्धककी दूसरे बैलकी महत्वाकांक्षा पूरी न होनेके कारण वह धन कमाने सिंहलद्वीप गया। वहां उसने लगभग चार करोड़का धन कमाया। जब वह अपना धन, माल, असबाव जहाजपर लाद-कर लौटा तो समुद्रमें जोरसे तूफान आनेके कारण जहाज उलटकर समुद्रके विशाल गर्भमें समा गया। लुब्धक वहीं आर्त्त ध्यानसे मर-कर अपने धनका रक्षक सांप हुआ। तब भी वह उसमेंसे एक कौड़ी किसीको नहीं उठाने देता था।

एक सर्पको धनपर बैठा देख लुब्धकके बड़े लड़के गरुड़दत्तको बहुत क्रोध आया और उसी समय उसने उसे मार डाला। इस बार वह चौथे नरकमें गया जहां पाप कर्मोंका दुस्सह कष्ट भोगना पड़ता है। इस प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ आदिके वश होकर जीव अनन्त काल तक कष्ट उठाया करता है। अतएव सुख चाहने वालोंको उन्हें छोड़ जिनेन्द्र भगवानके आदेशानुसार धर्माचरण करना चाहिये जो परम शान्ति-मोक्षको देनेवाला है।

---

## ४४ वशिष्ट तापसीकी कथा।
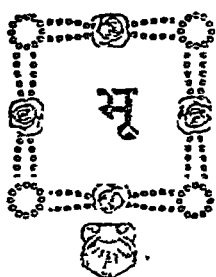
भूख, प्यास, रोग, शोक आदि अठारह दोषोंसे रहित भगवान जिनेन्द्रको प्रणाम कर वशिष्ट तापसीकी कथा लिखी जाती है।

उग्रसेन मथुराके राजा थे। उनकी रानीका नाम रेवती था। रेवती स्वामीको बड़ी प्यारी थी। वहीं जिनदत्त सेठ रहता था, जिसकी प्रियंगुलता नामकी एक नौकरानी थी।

पासमें ही यमुना किनारे वशिष्ठ नामका तापसी रहता था, जो प्रतिदिन नहा धोकर पञ्चाग्नि तप किया करता था लोग उसे महा तपस्वी समझ बड़ी भक्ति भावसे उसकी अर्चना करते थे जल भरनेको आने वाली दासियां भी तापसको बड़ी भक्ति भावसे प्रदक्षिणा करतीं और सेवा शुश्रूषा कर घर जातीं। प्रियंगुलताको छोड़ प्रायः सभीका यही हाल था। वह बचपनसे ही जिनाके यहां काम

करती रहा। इसीलिये उसे ये बातें बिलकुल नहीं रुचती थी। उसके साथको अन्यान्य स्त्रियोंको प्रियंगुलताका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा और मौका पाकर वे एक दिन उसे जबर्दस्ती तापसीके पास लिवा ले गयीं और इच्छा न रहनेपर भी उसका सिर तापसीके पांव पर रख दिया। इसपर वह क्रोधित होकर बोली कि यदि इस ढोंगी को मैं हाथ जोड़ूं तो फिर धीवरको क्यों न जोड़ूं। इससे तो वह बहुत अच्छा है। एक दासी द्वारा इस प्रकार निंदा सुन तापसीजीको बड़ा क्रोध आया और वे उन दासियोंपर बिगड़े जिन्होंने जबर्दस्ती उसे उनके पांवोंपर पटका था। दासियां तो मुनिकी लाल पीली आंखें देख उसी समय वहासे नौ दो ग्यारह हो गयीं। पर तापस-की क्रोधाग्नि न बुझी और उसने उग्रसेन महाराजके पास जाकर शिकायत की कि जिनदत्त सेठने धीवर कहकर मेरा अपमान किया है। उग्रसेनको एक दूसरे धर्मके साधका अपमान करना अच्छा नहीं जान पड़ा। जिनदत्तको बुलाकर पूछनेपर उसने कहा—महा-राज! मैंने तो उसे धीवर नहीं कहा है। उसे इनकार करते देख तापसी घबड़ाया और अपनी सचाई प्रमाणित करनेके लिये उसने कहा—अन्नदाता! जिनदत्तको दासीने ऐसा कहा था। तापसीकी बातपर महाराजको हंसी आयी। तब उन्होंने प्रियंगुलताको बुल-वाया। उसे देखते ही तापसीके क्रोधका ठिकाना न रहा। गाली देते हुए उन्होंने कहा—रांड, तूने मुझे धीवर बतलाया है पर देख, मैं धीवर नहीं, बल्कि हवापर जीवन रखनेवाला एक तपस्वी हूं। बतला तूने क्या समझकर मुझे धीवर कहा? प्रियंगुलताने निर्भय होकर कहा—ले सुने, जब तू रोज मछलियां मारा करता है, तब

मल्लाह तो है ही, ऐसी दशामें कौन तुझे तापसी कहेगा ? मैं जैनी हूं, इसलिये तुम्हारा अपमान नहीं करती, जैन धर्म तो सत्यका पक्षपाती है। उसमें सच्चे साधु सन्त ही पूजे जाते हैं। तेरे जैसे ढोंगी तथा भोले लोगोंको धोखा देनेवालोंकी उसके सामने दाल नहीं गलती। फिर तुझमें तो मछली मारनेवाले मल्लाहसे अधिक कोई बात पायी भी नहीं जाती है। यदि तू मल्लाह नहीं है तो जरा अपनी जटाओंको तो झाड़ दे। तापस महाराज इस बातपर घबड़ाये और बातें बनाकर उसे उड़ा देना चाहा। पर प्रियंगुलता यों छोडनेवाली न थी। उसने तापसीसे जटा झड़वाकर ही छोडा।

जटा झाड़नेपर हजारों छोटी छोटी मछलियां उसमेंसे गिरीं, जो देख सब दंग रह गये। उग्रसेनने जैनधर्मकी प्रशंसा करते हुए कहा—तापसी महाराज ! अब शीघ्र चले जाइये। आपने इस भेषका अच्छा डुबोया। मेरी प्रजाको आप जैसे मैले हृदय वाले साधुकी जरूरत नहीं। भरी सभामें अपमान होनेसे वह लज्जा एवं आत्म-ग्लानिसे मरा जाता था। तबसे उसे जो देखता, वही अंगुली उठाकर उसके ढोंगी होनेकी पोल खोलता। वहां और रहना अच्छा न समझ, तापसी वहांसे चला गया और गंगा तथा गंधवतीके संगमकी जगह आश्रम बनाकर रहने लगा। एक दिन जैन तत्वके परम जानकार वीरभद्राचार्य अपने संघको लिये इस ओर आ गये। वशिष्ठ तापसको पंचाग्नि तप करते देख एक मुनिने अपने गुरुसे कहा—महाराज ! यह तापसी तो महाकठिन तपस्या कर रहा है। आचार्य बोले—यह ठीक है कि ऐसे तपमें शरीरको बेहद कष्ट दिये बिना काम नहीं चलता, पर अज्ञानियोंका तप प्रशंसाके लायक नहीं।

भला जिसके मनमें दयाका नाम नहीं, जो संसारको सब माया ममता छोड़ योगी होकर भी प्रतिदिन हजारों जीवोंका नाश करता है, उसकी तपस्यासे क्या लाभ ? वशिष्ठके कानोंमें यह आवाज गई और क्रोधित होकर उसने आचार्यके निकट आकर कहा—आपने मुझे अज्ञानी क्यों कहा ? मुझमें आपने क्या अज्ञानता देखी ? आचार्यने कहा - भाई, गुस्सा मत हो. तुम्हें लक्ष्कर तो मैंने कोई बात नहीं कही है। मेरे विचार ऐसे सभी तापसोंके लिये है, जो अज्ञानतासे ठगे जाकर हिंसामय तपको तप समझते हैं। यह तप नहीं, जीवोंका होम है और जो तुम यह कहते हो कि मुझे आपने अज्ञानी क्यों बतलाया तो इसके उत्तरमें तुम्हीं बतलाओ कि तुम्हारे गुरु जो सदा तप किया करते थे, मरकर कहां पैदा हुए हैं ? तापस बोला—मेरे गुरुजी स्वर्गमें हैं। वीरभद्राचार्यने कहा—नहीं, तुम्हें मालूम नहीं है। मैं बतलाता हूं कि मरनेके बाद तुम्हारे गुरुकी क्या दशा हुई। आचार्यने अवधि ज्ञानमें जोड़कर कहा तुम्हारे गुरु स्वर्ग नहीं गये, बल्कि सांप हुए हैं और इस लकड़ीके साथ जल रहे हैं। तापसको विश्वास नहीं हुआ; बल्कि गुस्सा आया। आचार्यकी बात सच है या झूठ. इसकी परीक्षा करनेके लिये उसने लकड़ीको चीर डाला। वीर भद्राचार्यका कहा सत्य हुआ। सप उसमेंसे निकला जिसे देखकर तापसका अभिमान चूर-चूर हो गया। आचार्यपर उसको बड़ी श्रद्धा हुई। उसने प्रार्थना कर उनसे जैन धर्मका उपदेश सुना, जिससे उसके हृदयकी आंखें जो इतने दिनोंसे बन्द थीं, एकदम खुल गईं। मन पवित्र हो गया और बहुत दिनोंका कूट-कपट रूपी मैल न जाने कहां बहकर चला गया। उसी

समय वीरभद्राचार्यसे दीक्षा लेकर वह सच्चा तापसी बन गया।

घूमते-फिरते, धर्मोपदेश देते वशिष्ठ मुनि एक बार फिर मथुरा आये। तपस्याके लिये इन्होंने गोवर्धन पर्वत पसन्द किया। कुछ दिनोंतक वहां कठोर तपस्या करनेपर कई विद्याएं सिद्ध हो गईं। विद्याओंने आकर उनसे कहा—प्रभो! हम आपकी दासियां हैं, आप हमें कोई काम बतलाइये। वशिष्ठने कहा—इस समय तो कोई काम नहीं है, इसलिये तुम जाओ। समय आनेपर तुम्हें याद करूंगा सांसारिक माया-ममताको छोड़ तप करनेवाले मुनिको ऐसी ऋद्धि-सिद्धि की कोई जरूरत नहीं। वशिष्ठ मुनिने लोभमें पड़कर विद्याओंको अपनी आज्ञामें रहनेको कहा, यह उनके योग्य न था।

महीना भर उपवासके बाद वशिष्ठ मुनि पारणको शहरमें आये। उग्रसेनको उनके उपवासकी खबर पहलेसे ही थी। तभासे भक्तिवश उन्होंने शहरमें डोंडो पिटवा दो थी कि वशिष्ठ मुनिको मैं ही पारणा कराऊंगा। कभी-कभी मूर्खतासे की गई भक्ति भो दुःखका कारण होती है। उग्रसेन राजाकी भक्ति स्वार्थपूर्ण होनेके कारण उसका उलटा परिणाम हो गया। बात यह हुई कि जब वशिष्ठ मुनि पारणके लिये आये तो अचानक राजाका हाथो उन्मत्त हो गया। वह सांकल तोड़कर लोगोंको कष्ट देने लगा। राजा उसके पकड़वानेका प्रबन्ध करने लगे और मुनिके पारणेकी बात भूल गये। मुनि शहरमें इधर उधर घूम-घामकर वन लौट गये। दूसरे दिन कर्म संयोगसे शहरके एक महल्लेमें आग गई और राजा उसी के बुझानेमें व्यस्त रहे। मुनि उस दिन भी शहर और राजमहलमें भिक्षाके लिए चक्कर लगाकर लौट गये। तीसरे दिन जरासंध राजा

का कोई आज्ञा पत्र आ गया और उसीके पूरा करनेमें मुनिकी याद न आई। मुनि उस दिन भी लौटे जा रहे थे कि शहरके बाहर होते ही वे गस्त खाकर गिर पड़े। मुनिकी दशा देखकर एक बुढ़िया गुस्सासे बोली कि यहांका राजा बड़ा दुष्ट है जो न तो स्वयं मुनिको आहार देता है और न दूसरांको देने देता है। बुढ़ियाकी बातें मुनिने सुन ली और राजाकी नीचतापर उन्हें क्रोध आया। वे सीधे पर्वत पर गये और विद्याओंको बुलाकर बोले-मथुराका राजा बड़ा पापी है। तुम जाकर उसे फौरन मार डालो। मुनिको क्रोधवश आग उगलते देख विद्याओंने कहा—प्रभो! अनधिकार चेष्टा होनेपर भी हम आपसे कहेंगी कि इस वेशके लिये आपकी यह आज्ञा सर्वथा अनुचित है। एक जैन मुनिको कलंक न लगे, इसलिये हम उसे पूरा करनेमें भी हिचकती है। आप जैसे क्षमाशीलके लिये शत्रु-मित्र एकसे हैं। मुनिपर देवियोंकी इस शिक्षाका कुछ असर न हुआ। उन्होंने यह कहते प्राण छोड़ा कि तुम मेरी आज्ञाका दूसरे जन्ममें तो पालन करना ही। मैं दानमें विघ्न करनेवाले इस उग्रसेन राजाको मारकर अपना बदला अवश्य चुकाऊंगा। तपका फल पर जन्ममें मुझे इस प्रकार मिले, ऐसे विचारके साथ मरकर मुनिने रेवतीके गर्भमें जन्म लिया। एक दिन रेवतीको दुर्बल देख उग्रसेनने पूछा—प्रिये! तुम दिन-दिन दुबली क्यों होती जाती हो? तुम्हे चिन्तातुर देख मुझे बड़ा खेद होता है। रेवतीने कहा—नाथ! क्या कहूं, कहते हुए हृदय कांपता है। स्वामी, मुझे भयङ्कर दोहला हुआ है जिसे कहते आत्म ग्लानिसे मेरा हृदय फटा जाता है। इन बातोंसे उग्रसेनकी उत्कण्ठा और बढ़ी तथा उन्होंने कहनेके लिये आग्रह

किया। राजाका आग्रह देख रेवती जी कड़ाकर बोली—मेरी प्रबल इच्छा हो रहा है कि मैं आपका पेट चीरकर रक्तपान करूं। मुझे नहीं जान पड़ता कि ऐसा दुष्ट दोहला क्यों हो रहा है? यह प्रसिद्ध है कि गर्भमें जेसा बालक आता है, दोहला भी वैसा ही हाता है। सुनकर उग्रसेनको भी चिन्ता हुई, पर दोहलेके अच्छे बुरेका विचार न कर उस समय उन्होंने रानीकी इच्छा पूर्तिके लिये एक उपाय सोचा। फिर उन्होंने अपने आकारका एक पुतला बनवाया और उसमें कृतिम खून भरकर रानीसे इच्छा पूरी करनेके लिये कहा। रानी भी अपनी इच्छा पूर्तिके लिये उस पाप कर्मको पूराकर सन्तुष्ट हुई।

कुछ दिन बाद रेवतीके एक पुत्र हुआ जो देखनेमें बड़ा भयङ्कर था। उसकी आंखोंसे क्रूरता टपकती थी। उग्रसेनने उसके मुंहकी ओर देखा तो वह मुट्ठी बांधे बड़ी क्रूर दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगा। उन्हें लक्षणोंसे विश्वास हो गया कि जैसे बांसोंकी रगड़से उत्पन्न हुई आग सारे बनको जलाकर खाक कर देती है, ठीक उसी तरह कुपुत्र कुलका सर्वनाश करता है। इस लड़केके कुलक्षणोंसे यही प्रतीत होता है कि अब इस कुलके भी दिन अच्छे नहीं हैं। यद्यपि अच्छा बुरा होना कर्मके अधीन है, तथापि हाथपर हाथ रख बैठे न रहकर मुझे अपने कुलकी रक्षाके लिये यत्न करना चाहिये। यह विचार कर उग्रसेनने एक छोटीसी कांसेकी सुन्दर संदूक मंगवायी और उस बालकको अपने नामकी एक अंगूठी पहनाकर उस सन्दूकमें रख यमुना नदीमें छुड़वा दिया। दुष्ट किसीको प्रिय नहीं होता है।

कौशाम्बामें गंगाभद्र नामक मालीकी स्त्री राजोदरीने जल भरते समय नदीमें बहती हुई एक सन्दूक देखी। वह उसे बाहर निकाल अपने घर ले आई। सन्दूक खोलनेपर उसमेंसे एक बालक निकला, जिसे पा राजोदरी बड़ी प्रसन्न हुई, क्योंकि उसके कोई सन्तान न थी। बालक कांसेकी सन्दूकसे निकला, इसलिये उसका नाम कंस रख वह प्रेमसे पालन पोषण करने लगी।

कंस क्रूर स्वभावका था और अपने साथके बालकोंको मारा पीटा करता था। अड़ोस-पड़ोसके लोग तंग आकर दिन भरमें राजोदरीके पास पचासों शिकायतें करते थे। उस बेचारीने बहुत दिनोंतक उसका उत्पात सहा, पर अन्तमें इस दिन रातके झगड़ेको मिटानेके लिये उसने कंसको घरसे निकाल दिया। कंस वहांसे सौरीपुर आकर वसुदेवका शिष्य बन शास्त्राभ्यास करने लगा। थोड़े दिनोंमें इसकी शिक्षा अच्छी हुई। इस कथासे सम्बन्ध रखने वाली एक और कथा है, जो यहां लिखी जाती है:—

सिंहरथ नामका राजा जरासन्धका शत्रु था। जरासंध उसे पकड़ना चाहता था। बहुत यत्न करनेपर भी सिंहरथ पकड़में न आया। तब जरासंधने शहरमें डोंडी पिटवाई कि जो वीर शिरोमणि सिंहरथको पकड़ मेरे सामने ला उपस्थित करेगा, उसे मैं अपनी जीवंयसा लड़की ब्याह दूंगा और राज्यका कुछ अंश भी उसे दूंगा। अपने बड़े भाईसे आज्ञा लेकर वसुदेव इस कामके लिये तैयार हुआ। सेना साथ ले वह सिंहरथके ऊपर जा चढ़ा और उसकी राजधानी पोदनपुरको चारों ओरसे घेर लिया। स्वयं वसुदेव व्यापारीके भेषमें राजधानीके भीतर घुस गया और कुछ

खास लोगोंको धनका लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया। महा-वत सारथी आदिको उसने पैसेका गुलाम बनाकर अपनी मुट्ठीमें कर लिया। सिंहरथको नगर घेर जानेकी खबर मिलते ही उसने रणभेरी बजाई और लड़नेको शहरसे बाहर हुआ। दोनों ओरसे युद्धके जुझाऊ बाजे बजने लगे। उनकी गम्भीर आवाज आकाश को भेदती स्वर्गके द्वारोंसे टकराई। अमरांगना अपने यहां मेहमान आते समझ, इनके सत्कारके लिये फूलोंकी माला ले द्वारपर आ डटीं। थोड़ी देरमें युद्ध छिड़ गया और खूब मार-काट हुई।

खूनकी नदी बहने लगी। न्यायकी जीत किसीको प्राप्त न हुई, पर वसुदेवने पोदनपुरके जिन कुछ स्वार्थियोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया था, उन विश्वासघातियोंने अन्तमें धोखा दे सिंहरथको वसुदेवके हाथ पकड़वा दिया। सिंहरथका रथ मौकेपर बेकार हो गया। उसी समय वसुदेवने अपने सारथी कंससे कहा कि अब देखते क्या हो? उतरकर शत्रुको बांध लो। कंसने वैसा ही किया और सिंहरथको अपने रथमें रख वे उसी समय वहांसे चल दिये। वसुदेवने सिंह-रथको जरासंधके सामने उपस्थित किया। जरासंध बहुत खुश हुआ और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये वसुदेवसे जीवंयशाका पाणिग्रहण करनेको कहा। वसुदेव बोला—प्रभो! आपका कृपापात्र मुझे नहीं, मेरे प्रिय शिष्य कंसको होना चाहिये, क्योंकि उसीने सिंहरथको बांधा है; अतएव आप जो कुछ देना चाहें उसीको देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये। कंसका वंश-परिचय पूछनेपर उसने स्पष्ट कहा कि मैं एक मालिनका लड़का हूं। उसे और कुछ मालूम भी न था। जरासंधको कंसकी सुन्दरता और तेज देखकर इसे

बातपर विश्वास न हुआ और इसका निश्चय करनेके लिये उसकी मां बुलाई गई। कंसकी मां राज दरबारमें बुलानेकी खबर सुनकर घबड़ायी, क्योंकि कंसकी शैतानीका हाल वह पहलेसे ही जानती थी। उसने सोचा कि निश्चय कंसने कोई भारी दोष किया है, जिस कारण वह पकड़ा गया है। वह पछताने लगी—मैंने क्यों इस दुष्टको अपने घर लाकर रखा? बेचारी रोती झींकती राजाके पास गई और उस सन्दूकको साथ ले गयी, जिसमें कंस मिला था। राजाके सामने होते ही कांपते कांपते वह बोली—दुहाई महाराजकी! मैं सच कहती हूं, यह पापी मेरा लड़का नहीं है। इस सन्दूकसे निकला है। आप सन्दूक लीजिये और मुझे छोड़ दीजियें। मालिन को घबराई देख राजाको हँसी आई। जरासंधने उससे कहा—डरने की कोई बात नहीं, मैंने तुझे कष्ट देनेको नहीं बुलाया है। कंसका सच्चा परिचय देनेके लिये तू लायी गयी। इसके बाद सन्दूक खोलनेपर उसमेंसे एक कम्बल और एक अंगूठी निकली। अंगूठी पर खुदा हुआ नाम देख राजा कंसके विषयमें कोई शंका न रह गयी। एक अच्छे राजकुलमें जन्मा समझ जरासंधने जीवंयसाका ब्याह बड़े ठाट-बाटसे उसके साथ कर दिया। प्रतिज्ञानुसार राजका कुछ भाग भी कंसको मिला और वह राजा हो गया।

राजा होते ही उसे अपनी राज्य सीमा और प्रभुत्व बढ़ानेकी महत्वाकांक्षा हुई। मथुराके राजा उग्रसेनके साथ उसकी पूर्व जन्मकी शत्रुता थी। कंस जानता था कि उग्रसेन मेरे पिता हैं तब भी वह उनसे जला करता। वह सदा इस विचारमें लगा रहता कि मैं उग्रसेनसे लड़ूं और उसका राज्य छीनकर अपनी आशा पूरी

करूं। कुछ दिनों बाद उसने अपने पितापर चढ़ाई कर दी और युद्धमें कंसको विजय हुई। फिर उसने अपने पिताको एक लोहेके पिंजरेमें बन्द कर उसे शहरके दरवाजेपर रखवा दिया और आप मथुराका राजा बन बैठा। कंसको इतनेपर भी सन्तोष नहीं हुआ और बैरका बदला चुकानेके लिये वह उग्रसेनको नाना प्रकारके कष्ट देने लगा। खानेके लिये कोदोंकी रोटियां और छांछ, पीनेके लिये गन्दा पानी; पहननेके लिये मैले-कुचैले फटे चिथड़े वह उन्हें देता, मानो उग्रसेन कोई बड़ा अपराधी हो। उग्रसेनकी दशा देख उनके दुश्मनोंकी भी छाती फट जाती, आंसू टपक पड़ते, पर कंस को उसके लिये रत्ती भर भी दया अथवा सहानुभूति न थी। कुपुत्र कुलका काल होता है। अपने भाईकी नीचता देख कंसके छोटे भाई अति मुक्तकको संसारसे बड़ी घृणा हुई और मोह-माया छोड़ उसने दीक्षा ले ली। वसुदेव कंसके गुरु थे। इसके सिवा उन्होंने उसका बहुत कुछ उपकार भी किया था, इसलिये कंसकी उनपर बड़ी श्रद्धा थी। उसने उन्हें बुलाकर अपने ही पास रख लिया।

मृतकावतीपुरीके राजा देवकीकी एक बड़ी सुन्दरी कन्या थी। राजा बड़े प्यारसे उसका नाम अपने ही नामपर देवकी रख दिया था। कंस उसे बहनके समान मानता था। कंसने देवकीका ब्याह वसुदेवके साथ कर दिया। एक दिन जीवंयसा देवकी और अपने देवरानी पुष्पवतीके वस्त्रोंको आप पहनकर आप नाच रही थी। उसी समय अतिमुक्तक मुनि आहारके लिये आये। जीवंयसाने हँसी मजाक करते हुए मुनिसे कहा—देवरजी! आप भले आये। आप भी मेरे साथ नाचें तो बड़ा आनन्द आवे। मुनिने गम्भीरता

से उत्तर दिया—बहन ! मेरा यह मार्ग नहीं है, इसलिये अलग हो जा और मुझे जाने दे। जीवंयसाने हठ पकड़ लिया और कहा कि जब तक आप मेरे साथ न नाचेंगे, तब तक मैं न जाने दूंगी। मुनिको इसमे कष्ट हुआ और उन्होंने आवेशमें आकर उससे कह दिया कि मूर्खे ! नाचती क्या है ! अपने स्वामीसे जाकर बोल कि देवकीके लड़के द्वारा उसको मौत होगी और वह समय भी निकट है। सुनकर जीवंयसाको क्रोध आया और उसने देवकीके वस्त्रको, जिसे वह पहिने हुई थी, फाड़कर दो टुकड़े कर दिये। मुनिने फिर कहा—मूर्खे ! कपड़ा फाड़ देनेसे क्या होगा ? देख ! जिस तरह तूने कपड़ेके दो टुकड़े कर दिये हैं, उसी तरह देवकीका पुत्र तेरे बापके दो टुकड़े करेगा। जीवंयसाको बड़ा दुःख हुआ और वह नाचना गाना सब भूल गई। जीव अज्ञानता वश हंसते हंसते जो पाप करता है, उसका फल भी उसे बुरी तरह भोगना पड़ता है। वह रोती हुई कंसके पास गयी। कंस जीवंजसाको रोती देख बड़ा घबड़ाया। उसने पूछा-प्रिये ! तू क्यों रोती है ? किसे अपना जीवन प्यारा नहीं है, जिसने तुम्हें रुलाया ? जल्दी बताओ॥ जीवंयसाने मुनिद्वारा जो बाते सुनी थीं उन्हें कंससे कह दिया। सुनकर कंसको भी चिन्ता हुई। पर जीवंयसाको धीरज देते हुए वह बोला—प्रिये ! घबड़ानेकी कोई बात नहीं, मेरे पास इस रोग की भी दवा है। वह उसी समय वसुदेवके पास गया और उन्हें नमस्कार कर बोला-गुरुदेव ! आपने पहले मुझे एक 'वर' दिया था, उसकी मुझे अब जरूरत पड़ी है। कृपाकर मेरी आशा पूरी कीजिये। इतना कहकर कंस बोला—मेरी इच्छा देवकीके होने-

वाले पुत्रके मार डालने की है क्योंकि मुनिने उसे मेरा शत्रु बतलाया है। देवकीकी प्रसूति मेरे महलमें हो, इसकी आप अनुमति दीजिये। कंसकी नीचता और गुरुद्रोह देख वसुदेवकी छाती धड़क उठी, उनकी आंखोंमें आंसू भर आये। पर करते क्या? क्षत्रिय "प्राण जाहिं पर वचन न जाहीं" व्रतके व्रती होते हैं, इसलिये उन्होंने कंसका कहना बिना सोचे समझे मान लिया। देवकी पास ही खड़ी सब सुन रही थी। वह वसुदेवसे बोली-नाथ! मुझसे यह दुःसह पुत्र-दुख न सहा जायगा। मैं तो जाकर जिन दीक्षा ले लेती हूं। वसुदेवने कहा—प्रिये! खबड़ानेकी कोई बात नहीं है। चलो, हम चलकर मुनिराजसे पूछें कि बात क्या है? दोनों बनमें वहां गये, जहां अतिमुक्तक मुनि स्वाध्याय कर रहे थे। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वसुदेवने पूछा—हे योगिराज! कृपाकर मुझे बताइये कि मेरे किस पुत्रसे कंस और जरासंधकी मौत होगी? इस समय देवकी आमकी डाली पकड़े खड़ी थी। उस पर आठ आम लगे थे। उनमें छः आम तो दो दो की जोड़ी से लगे थे और दो पृथक पृथक थे। उन दो आमोंमें से एक आम उसी समय पृथ्वी पर गिर पड़ा और दूसरा थोड़ी देर बाद पक गया। इस निमित्त ज्ञान पर विचार कर अवधिज्ञानी मुनि बोले—भव्य वसुदेव! सुनो, मैं तुम्हें सब साफ साफ समझा देता हूं। देवकीके आठ पुत्र होंगे। उनमें छः तो नियमसे मोक्ष जायंगे, सातवां जरासंध और कंस का मारनेवाला होगा तथा आठवां कर्मोंका नाशकर मुक्ति-महिलाका पति होगा। मुनिराजसे यह शुभ संवाद सुनकर वसुदेव और देवकीको आनन्द हुआ। वसुदेवको

विश्वास था कि मुनिकी बात कभी झूठी हो नहीं सकती। मेरे पुत्र द्वारा कंस और जरासंध की होनेवाली मौतको भी कोई टाल नहीं सकता। इसके बाद वे दोनों मुनिको नमस्कार कर घर लौट आये।

देवकीको जबसे सन्तान होनेकी सम्भावना हुई तबसे उसके रहनेका प्रबन्ध कंसके महलमें हुआ। कुछ दिनों बाद उसने दो पुत्रों को एक साथ जना। उसी समय भद्रिलपुरमें श्रुतदृष्टि सेठकी स्त्री अलकाको भी पुत्र—युगल हुआ, जो मरा हुआ था। देवकीके पुत्रोंके पुण्यसे प्रेरित होकर एक देवी इस मृत-युगलको उठाकर देवकीके पास रख आई और उसके पुत्रोंको अलकाके पास ला रखा। पुण्यवानों की रक्षा सभी करते हैं। अतएव पूजा, दान, व्रत उपवासादि द्वारा निरन्तर पुण्य कमाते रहना चाहिये। कंसको देवकीके पुत्र होनेकी खबर मिलते ही उसने उस मरे हुए पुत्र युगल को उठाकर बड़े जोरसे शिला पर दे मारा। ऐसे पापियोंके जीवन का धिक्कार है। इसी प्रकार देवकीके जो और दो पुत्र युगल हुए उन्हें देवी वहीं अलकाके यहां रख आई और उसके मरे पुत्रोंको देवकीके पास ला रखा। कंसने इन दोनों मृत युगलोंकी भी पहले की सी दशा की। तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ।

अब सातवें पुत्रकी प्रसूतिका समय निकट आने लगा। इस बार देवकीके सातवें महीनेमें ही पुत्र हो गया। यही शत्रुओंका नाश करने वाला था, इसलिये वसुदेवको इसकी रक्षाकी अधिक चिन्ता थी। समय कोई दो तीन बजे रातका था, पानी बरस रहा था, उसी समय वसुदेव उसे गोदमें ले चुपकेसे कंसके महलसे

निकल गये। बलभद्रने इस होनहार बच्चेके ऊपर छतरी लगाई। चारों ओर घोर अन्धकार था। पर इस तेजस्वी बालकके पुण्यसे वही देवी, जिसने इसके छः भाइयोंकी रक्षा की थी, बैलके रूपमें सींगों पर दीया रखे आगे आगे हो चली। आगे चलकर इन्हें शहरके बाहर होनेके दरवाजे बन्द मिले, पर भाग्यवानोंके लिये असम्भव भी सम्भव हो जाता है। बच्चेके पांवोंका स्पर्श होते ही दरवाजा खुल गया। फिर अथाह यमुना पार करनी थी। वसुदेव भाग्यके भरोसे उसमें भी घुस पड़े। पुण्यबलसे यमुनाका अथाह जल घुटनों प्रमाण हो गया। पार होकर ये एक देवीके मन्दिरमें गये। इतनेमें इन्हें किसीके आनेकी आहट सुनाई दी। ये देवीके पीछे छिप गये।

इसीसे सम्बन्ध रखनेवाली एक और घटनाका हाल सुनिये। नन्द नामका एक ग्वाला पासके गांवमें रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यशोदा था। यशोदाके प्रसूति होनेवाली थी, वह पुत्रकी इच्छासे देवीकी पूजा कर गयी थी। उसी रातको उसे पुत्र न होकर पुत्री हुई। इससे उसके मनमें बड़ा कष्ट हुआ और लड़कीको लिये वह देवीके मन्दिरमें गई। लड़कीको देवीके सामने रखकर वह बोली—देवी जी! लीजिये अपनी पुत्रीको, मुझे इसकी जरूरत नहीं है। यह कहकर यशोदा मन्दिरसे चली गयी। वसुदेवने इस मौकेसे लाभ उठाया। उसमें पुत्रको देवीके सामने रख दिया और लड़कीको आप उठाकर चल दिये। जाते हुए वे यशोदासे कह गये कि अरी! जिसे तू देवीके पास रख आई है, वह लड़की नहीं, एक सुन्दर लड़का है। यशोदाको पहले तो आश्चर्य हुआ,

फिर वह दौड़ती हुई देवीके पास गई। सुन्दर बालकको देख उसके आनन्दका ठिकाना न रहा, वह पुत्रको गोदमें लिये उसे चूमती हुई घर आई। पुण्यबलसे, जिसकी स्वप्नमें भी आशा न होती है, वह सहजमें मिल जाता है।

इधर वसुदेवने घर पहुंचकर उस लड़कीको देवकीके पास रख दिया। सवेरा होते ही जब कंसको लड़की होनेका खबर मिली तो उस पापीने आकर उस वेचारीकी नाक काट ली।

यशोदाके यहां वासुदेव सुखसे रहकर दिन दिन बढ़ने लगे। उनकी बढ़तीके साथ कंसके अशकुन भी बढ़ने लगे। कभी आकाश से तारा टूटकर पड़ता, कभी बिजली गिरती, कभी उल्का गिरती और कभी और कोई भयानक उपद्रव होता। यह देख कंसको बड़ी चिन्ता हुई। उसने एक ज्योतिषीको बुलाकर उपद्रवका कारण पूछा। ज्योतिषीने निमित्त विचार कर कहा महाराज! इन उपद्रवोंका होना आपके लिये बहुत बुरा है। आपका शत्रु दिन दिन बढ़ रहा है और वह कहीं दूर न होकर यहीं गोकुलमें है। कंस बड़ी चिन्तामें पड़ा और अपने शत्रुके मारनेका उपाय सोचने लगा। इतनेमें उसे पूर्व जन्ममें सिद्ध विद्याओंकी याद आई। उसने उन विद्याओंको बुलाकर कहा—इस समय तुम सब बड़े मौक़ेसे आयी हो। अब क्षण भरकी भी देरी न कर जहा मेरा शत्रु हो, उसे वहीं मारकर शीघ्र उसकी मौतकी खबर मुझे दो। विद्याएं वासुदेवको मारने तैयार हो गईं। उनमें पहली पूतनाके वेषमें जाकर वासुदेवको दूधकी जगह विष पिलाने लगी। वासुदेवने उसे इतने ज़ोरसे काटा कि पूतनाके होश उड़ गये और वह चिल्लाकर भाग

खड़ी हुई। दूसरी कौएके वेपमें वासुदेवको आंख निकालनेकी चेष्टा करने लगी। पर वासुदेवने उसकी चोंच, पर आदि नोचकर उसका दिमाग ठीक कर दिया। इसी प्रकार और पांच भी वासुदेवको मारनेमें असफल रहीं, उल्टे उन्हें ही कष्ट उठाना पड़ा। यह देख आठवीं विद्याको बड़ा क्रोध आया। वह कालिका वेप बनाकर वासुदेवको मारने गई। वासुदेवने उसे भी गोवर्धन पर्वत उठाकर उसके नीचे दबा दिया। उन सबकी चेष्टा विफल होनेपर वे अपना सा मुंह लेकर कसके पास वापस आयीं और बोलीं—प्रभो! आपका शत्रु प्रबल है, हम उसे किसी प्रकार नहीं मार सकतीं। इतना कहकर वे चली गयीं। कंस हत-बुद्धि हो गया। वह सोचने लगा—जिसे विद्याएं न मार सकीं, उसे मारना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। तो क्या मैं उसीके हाथ मारा जाऊंगा? नहीं जबतक मुझमें दम है, तब तक उसको मारनेकी चेष्टा करूंगा। विद्याएं आखिर स्त्री-जातिकी हो न थीं जो स्वभावसे ही कायर होती हैं। देखता हूं, वह ग्वालेका छोकड़ा कैसे मेरे जैसे वीर राजपूतके हाथसे बचता है? उद्यमसे सब काम सिद्ध होता है।

कंसने मनकी इस प्रकार समझौती कर वासुदेवके मारनेकी एक नयी योजना की। उसके यहां दो नामी पहलवान थे। उन्हें कंसने कहा कि जो वासुदेवको कुश्तीमें जीतेगा, उसे भारी इनाम मिलेगा। कंसने यह सोचकर मनको सन्तोष दिया कि पहले तो मेरे पहलवान ही उसे मच्छरकी तरह पीस डालेंगे और कहीं दैवयोगसे इनके हाथसे बचा तो मैं उसकी छातीपर तलवार लिये खड़ा रहूंगा। फिर धड़से सिर जुदा करनेमें मुझे देर ही क्या

लगेगी? कंसको इस विचारसे धीरज बंधा।

कुश्तीके दिन नियत स्थानपर सारी मथुरा उस वीरको देखने उमड़ पड़ी, जो इन पहलवानोंके साथ लड़नेवाला था। आंखें उस वीर पुरुषकी बाट जोहने लगीं। आनेमें देरी देख कंस भी निराश होने लगा। कुश्तीका समय निकट आ गया, पर तबतक कोई लड़नेको अखाड़ेमें न उतरा। लोग जाने ही की तैयारीमें थे कि इतनेमें चौबीस पच्चीस वर्षका एक जवान भीड़को चीरता हुआ आया और गर्ज कर बोला—जिसे कुश्ती लड़नी हो वह, अखाड़ेमें उतर कर अपना बल दिखावे। उपस्थित मंडली आगत युवाकी देव-दुर्लभ सुन्दरता देख दङ्ग रह गयी। बहुतोंको उसकी छोटी उम्र तथा उन भीमकाय पहलवानोंको देख कुशङ्का होने लगी। आगन्तुक युवाकी हृदय हिलानेवाली गर्जना सुन एक भीमकाय पहलवान अखाड़ेमें उतरा और ताल ठोककर वीरको आनेके लिये ललकारा। युवक बिजलीकी तरह अखाड़ेमें दाखिल हुआ। इशारा होते ही दोनोंकी मुठभेड़ हुई। उस मूर्त्तिमान वीर श्रीने कुछ देर तो पहलवानको खेलाया, फिर उठाकर ऐसा पछाड़ा कि उसे आसमानके तारे देख पड़ने लगे। इतनेमें उसका दूसरा साथी अखाड़ेमें उतरा। वासुदेवने उसका भी वही दशा की। उपस्थित मंडलीके आनन्दकी सीमा न रही। तालियोंसे उसका खूब जय जयकार मनाया गया। अब कंससे न रहा गया, उसके हृदयमें ईर्षा, द्वेष और प्रतिहिंसाकी आग जल उठी। वह तलवार हाथमें लिये ललकार कर बोला—ठहरो! अभी लड़ाई बाकी है। वह तलवार लिये ही अखाड़ेमें उतरा। उसे देख सब भौंचक से रह गये।

किसीकी समझमें न आया कि रहस्य क्या है? सब उस भयङ्कर समयकी प्रतीक्षा करने लगे, जब आपसे आप इसका फैसला होनेवाला था। प्रकृति अधिक अन्याय, अत्याचार सहन नहीं करती, इसलिये वह फिर एक ऐसी शक्ति पैदा करती है जो उन अत्याचारों को जड़मूलसे उखाड़ फेंके। कंसके अत्याचरोंसे शान्ति और सुखका कहीं नाम-निशान न रह गया था, इसीलिये वासुदेवका आविर्भाव हुआ। कंसको अखाड़ेमें उतरा देख वासुदेव भी तलवार उठा उसके सामने खड़ा हुआ। दोनोंने अपनी तलवारें संभाली। कंसने क्रोधकर वासुदेवपर पहला वार किया। श्रीकृष्णने उसके वारको बचाकर उसपर ऐसा हमला किया कि कंससे सम्हलाते न बना। देखते २ वह धड़ामसे गिरकर सदाके लिये पृथ्वीकी गोदमें सो गया। प्रकृतिको सन्तोष हुआ। उसने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लोगोंको शिक्षा दी कि निर्बलोंपर अत्याचार करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। यदि तुम सुखी रहना चाहते हो तो दूसरोंको भी सुखी करनेका यत्न करो। कंसको निरीह प्रजापर अत्याकरनेका उपयुक्त प्रायश्चित्त मिला। अशान्तिकी जगह शान्तिपूर्ण शासनकी स्थापना हुई। वासुदेवने उसी समय कंसके पिता उग्रसेनको मुक्त कर राज सिंहासनपर बैठाया। इसके बाद श्रीकृष्ण ने जरासन्धपर चढ़ाई करके उसे भी कंसका रास्ता दिखाया और आप अर्ध चक्रवर्ती राजा होकर प्रजाका नीतिके साथ पालन करने लगे। यह कथा प्रसंगवश संक्षेपमें लिखी गयी है, जिन्हें विस्तारके साथ जानना हो, वे हरिवंश पुराण पढ़ें।

क्रोधी, मायाचारी, द्वेषी, मानी, अधर्मी, और अत्याचारी

कुछ दिनोंतक अपने खोटे कामोंको जारी रख सकते हैं। अन्तमें प्रकृति उनका नाम-निशानतक नहीं रहने देती। कालके हाथ तो सभीको पढ़ना ही है, पर धर्मात्माओंको विशेषता यह होती है कि मरनेके बाद भी वे लोगोंको श्रद्धाके पात्र होते हैं और सुगति लाभ करते हैं। दुराचारियोंकी लोगोंमें निन्दा होती है और अन्तमें उन्हें नरक जाना पड़ता है। इसलिये जो विचारशील हैं, उन्हें सांसारिक दुःखोंके नाश करनेवाले और अन्तमें मोक्ष देनेवाले जिन धर्मका सेवन करना चाहिये।

---

## ४५ लक्ष्मीमतीकी कथा

न जगद्बन्धुका ज्ञान होनेपर कुछ भी गुप्त नहीं रह जाता। अपने हितके लिये उसी जिनेंद्र भगवानको नमस्कार कर मान करनेका कैसा बुरा फल होता है, इस सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

मगधदेशके लक्ष्मी नामक सुन्दर गांवमें सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री लक्ष्मीमती देखनेमें सुन्दर और जवान थी। उसे अपनी जातिका अभिमान था और सदा वह अपनेको सजाने और श्रृङ्गार करनेमें मस्त रहती थी। अनेक गुणोंके रहते भी यह उसमें बड़ा दोष था।

एक बार पन्द्रह दिनोंके उपवास किये हुए श्री समाधि गुप्त मुनि आहारके लिये इसके यहां आये। सोम शर्मा उन्हें भक्तिसे ऊंचे आसनपर विराजमान कर अपनी स्त्रीको आहार करा देनेके लिये कहकर आप कहीं बाहर चला गया। उसे किसी कामकी जल्दी थी।

इधर ब्राह्मणी बेठी बैठी शीशेमें अपना मुंह देख रही थी। उसने अभिमानवश मुनिको गालियां दीं, उनकी निन्दा की और किवाड़ बन्द कर लिये। हाय! इससे अधिक और क्या पाप होगा? मुनिराज शान्त, तपस्वो, सर्वहितेषी और बड़े चरित्रवान थे, इसलिये ब्राह्मणीकी दुष्टतापर कुछ ध्यान न दे वे लौट गये। मुनि निन्दाके पापसे लक्ष्मीमतोके सातवें दिन कोढ़ निकल आया। सन्तोंकी निन्दासे कभी शान्ति नहीं मिलती। उसकी बुरो हालत देख घरके लोगोंने उसे घरसे बाहर कर दिया। यह कष्ट उससे न सहा गया और वह आगमें जलकर मर गयी। उस पापसे वह उसी गांवमें धोबीके यहां गधी हुई। इस दशामें उसे दूध पीनेको नहीं मिला और मरकर सूअरी हुई। फिर दो बार इसे कुत्तीका जन्म लेना पड़ा। अब नर्मदा नदीके किनारे भृगुकच्छ गांवमें वह एक मल्लाहके यहां काणा नामकी लड़की हुई है। जन्मसे ही इसका शरीर दुर्गन्धित होनेके कारण कोई उसके पास नहीं बैठता। यह अभिमानका फल है कि ब्राह्मणीसे मल्लाहकी लड़की हुई, फिर भी कोई नहीं पूछता।

एक दिन काणा लोगोंको नाव द्वारा नदी पार करा रही थी। इसने नदी किनारे उसी मुनिको तपस्या करते देखा जिसकी निन्दा कर वह इस गतिको प्राप्त हुई है। मुनिको नमस्कार कर उसने

पूछा—प्रभो ! क्या मैंने कहीं आपको देखा है ? मुनिने कहा—हाँ, बच्ची ! तू पूर्व जन्ममें ब्राह्मणी थी, तेरा नाम लक्ष्मीमती था। मुनि निन्दाके पापसे तुझे कोढ़ निकल आया। उस दुखको न सहकर तू आगमें जल मरी और आत्म-हत्याके पापसे गधी, सूअरी और दो बार कुत्ती हुई। अब तू मल्लाहके यहां पैदा हुई है। पूर्व जन्मका हाल सुनकर काणाको पहलेकी सबकी सब बातें याद हो गईं। फिर वह दुःखी हो मुनिको प्रणामकर बोली—प्रभो ! मैं बड़ी पापिनी हूं साधु-महात्माओंकी निन्दाकर मैंने बड़ा पाप किया है। अब इस-से मेरी रक्षा कीजिये। मुनिने उसे धर्मोपदेश दिया। काणाको सुन कर शान्ति मिली और वैराग्य हुआ। वह वहीं मुनिके पास दीक्षा लेकर क्षुल्लिकिनी हो गई। फिर अपनी शक्तिके अनुसार उसने खूब तपस्या की और शुभ भावोंसे मरकर स्वर्ग गई। यही काणा फिर कुण्ड नगरके राजा भीष्मकी महारानी यशस्वतीके रुपिणी नामको सुन्दर कन्या हुई। रूपिणीका व्याह वासुदेवके साथ हुआ। पुण्य-वलसे सब कुछ मिल सकता है।

जैन धर्म सर्व हितकारी सर्वोच्च धर्म है। इसके माननेवाले कुलीन, यशस्वी और धनी होकर अन्तमें मोक्षका सर्वोच्च सुख लाभ करते हैं।

# ४६ पुष्पदत्तकी कथा ।

अनन्त सुखके देने वाले, त्रिलोक स्वामी भगवान् जिनेन्द्रको नमस्कार कर मायाको नाश करनेके लिये मायाविनी पुष्पदत्ताकी कथा लिखी जाती है ।

अजितावर्त नगरके राजा पुष्पचूलकी रानीका नाम पुष्पदत्ता था। राज सुख भोगते हुए पुष्प चूलने एक दिन जिन धर्मका स्वरूप सुना जो स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है। धर्मोपदेश सुनकर राजाको वैराग्य हो गया। वे दीक्षा लेकर मुनि हो गये। उनकी रानीने भी देखा-देखी ब्रह्मिला आर्यिकाके पास आर्यिकाकी दीक्षा ले ली। दीक्षा लेनेपर भी इसे अपने बड़प्पनका अभिमान ज्योंका त्यों बना रहा। आर्यिकाओंको नमस्कार विनय करना इसे अपमानका कारण जान पड़ने लगा। इसके सिवा इस योग अवस्थामें भी यह शृङ्गार द्रव्यों द्वारा अपनेको सम्हाला करती थी। एक दिन ब्रह्मिला मुनिने इसे समझाया कि योगावस्थामें तुझे शृङ्गारादि नहीं करना चाहिये, ये विषयको बढ़ानेवाली चीजें हैं। पुष्पदत्ताने कहा नहीं जो, मै शृङ्गारादि कहां करती हूं। मेरा शरीर तो जन्मसे ही सुगन्धमय है। धर्म वासना स्वाभाविक न हो, तो समझानेसे उसका फल वैसा अच्छा नहीं होता, कभी कभी तो उलटा फल होता है। पुष्पदत्ताका इस मायाचारके फलस्वरूप मरकर चम्पापुरीमें सागरदत्त सेठकी दासी हुई। वहां भी इसके मुखसे दुर्गन्धि निकलती रहती थी और लोग इसे पूतिमुखी कहते थे। अतएव बुद्धि-

मांनोंको मायासे दूर रहना चाहिये, क्योंकि यह दुःखका कारण और सुगतिका नाश करनेवाली है।

---

## ४७ मरीचिकी कथा।

सुख रूपी धान्यको हरा-भरा करनेके लिये मेघ स्वरूप भगवान जिनेन्द्रके चरणोंको नमस्कार कर शास्त्रानुसार भरत-पुत्र मरीचिकी कथा लिखी जाती है।

अयोध्याके सम्राट भरतके मरीचि नामक पुत्र हुआ, जो भव्य और सरल स्वभावका था। जब इन्द्रादि देवों द्वारा पूजित भगवान आदिनाथ संसार छोड़ योगी हुए तब उनके साथ चार हजार राजा और भी साधु हो गये। इस कथाका नायक मरीचि भी इन साधुओंमें था।

राजा भरत एक दिन आदिनाथ तीर्थङ्करका उपदेश सुनने समवसरणमें गये। भगवानको नमस्कार कर उन्होंने पूछा—भगवन्! आपके उपदेशसे मुझे ज्ञात पड़ा कि आपके बाद तेइस तीर्थङ्कर और होंगे। क्या इस सभामें कोई ऐसा महा पुरुष है जो तीर्थङ्कर होने वाला हो? भगवान बोले—हां, है। वह यही तेरा पुत्र मरीचि है जो अन्तिम तीर्थंकर महावीरके नामसे प्रख्यात होगा। सुनकर भरतकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। पर इस बातसे मरीचिकी मति-गति उल्टी हो गयी। उसे अभिमान हो गया कि अब मैं तीर्थ-ङ्कर होऊंगा ही तो फिर नंगे रहना, दुःख सहना, पूरा भोजन न

करना आदि कष्ट क्यों सहूं ? आरामसे क्यों न रहूं ? ऐसे विचारों के उदय होते ही उसने व्रत, संयम, सम्यक्त्व आदिको छोड़ दिया। फिर तापसी बनकर सांख्य, परिव्राजक आदि कई मतोंको अपनी कल्पनासे चलाकर संसारके घोर दुखोंका भोगने वाला हुआ। प्रमाद कल्याण मार्गमें सबसे बड़ा विघ्नकर है और अज्ञानसे भव्य जन भी प्रमादी बनकर दुःख भोगते हैं। अतएव ज्ञानियोंको धर्म के कामोंमें तो भूलकर भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। बहुत दिनों तक संसारमें घूमनेके बाद मरीचिके पाप कर्मकी कुछ शान्ति हुई और फिर उन्हें जैन धर्मका उपदेश मिल गया। उसके प्रसादसे वह नन्द नामका राजा हुआ। फिर किसी कारणवश उसे संसार-से वैराग्य हो गया। मुनि होकर उसने सोलह कारण भावना द्वारा तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बन्ध किया। यहांसे वह स्वर्ग गया।

स्वर्गायु पूरा होनेपर इसने कुण्डलपुरमें सिद्धार्थ राजाको प्रिय कारिणी प्रियाके यहां जन्म लिया। ये ही संसार पूज्य महावीर भगवान्‌के नामसे प्रख्यात हुए। इन्होंने बचपनसे ही दीक्षा लेकर तपस्या द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त किया। अनेक जीवोंको इन्होंने कल्याण मार्गमें लगाया। अपने समयमें धर्मके नामपर होने वाली बेशुमार पशु हिंसाका इन्होंने घोर विरोधकर उसे जड़ मूलसे उखाड़ फेंका। इनके समयमें अहिंसा धर्मकी पुनः स्थापना हुई। अन्तमें ये परमधाम मोक्षको प्राप्त हुए। अतएव हे आत्म सुखके चाहने वालो! यदि तुम्हें मोक्ष सुखकी चाह है तो सदा हृदयमें जिन भगवानके पवित्र उपदेशको स्थान दो और उसके अनुसार काम करो।

वे वर्द्धमान-महावीर भगवान संसारमें सदा जय लाभ करें। उनका पवित्र शासन निरन्तर मिथ्यान्धकारका नाश कर चमकता रहे, जो जीवमात्रके हितकारी और ज्ञानके समुद्र हैं।

---

## ४८ गन्धमित्रकी कथा।

अनन्त गुण सम्पन्न और संसारके हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर गन्धमित्र राजाकी कथा लिखी जाती है, जिसने घ्राणेन्द्रियके विषयमें फंसकर अपनी जान देदी।

अयोध्याके राजा विजयसेन और रानी विजयवतीके दो पुत्र थे, जिनका नाम जयसेन और गन्धमित्र था। इनमें गन्धमित्र बड़ा लम्पट था। भौंरेको तरह नाना प्रकारके फूलों के सूंघनेमें वह सदा मस्त रहता था।

इसके पिता विजयसेन किसी कारणवश संसारसे विरक्त हो गये। जयसेनको राज्य सौंप और गन्धमित्रको युवराज बनाकर इन्होंने सागरसेन मुनिसे योग ले लिया। सज्जनोंकी धर्मकी ओर स्वाभाविक रुचि होती है।

गन्धमित्रको युवराज पद अच्छा न लगा। उसकी इच्छा राजा होनेकी थी। इसलिये उसने बड़े भाईके विरुद्ध षडयन्त्र रचा और कर्मचारियोंको धनका लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया।

प्रजाको भी उलटी-सोधी सुझाकर वहकाया। गन्धमित्रको इसमें सफलता मिली और मौका पाकर जयसेनको सिंहासनसे उतार वह आप राजा बन बैठा। राज वैभव महापापका कारण होता है, जिसके लोभमें पड़कर मूर्ख अपने सगे भाईतककी जान लेनेकी कोशिश करते हैं।

राज्यभ्रष्ट जयसेन अपने भाईके इस अन्यायसे दुःखित हुआ और वदला लेनेका उपाय सोचने लगा। प्रतिहिंसासे अपने कर्तव्य को वह भूल भूल वैठा। बड़ी उत्सुकतासे वह उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगा, जब गन्धमित्रको मारकर अपने हृदयको सन्तुष्ट करे।

गन्धमित्र लम्पट तो था ही। प्रतिदिन स्त्रियोंको साथ ले सरयू नदीमें वह जल-क्रीड़ा करने जाया करता था। जयसेनने इसी मौके से लाभ उठाया। एक दिन उसने जहरके पुट दिये अनेक मनोहर फूलोंको ऊपरको ओरसे नदीमें बहा दिया। फूल गन्धमित्रके पास होकर बहे जा रहे थे कि वह उन्हें लेनेके लिये झपटा। कुछ फूलों-को हाथमें ले वह सूंघने लगा। सूंघते ही विषका उसपर असर हुआ और देखते देखते वह चल बसा। मरकर भी घ्राणेन्द्रियके विषयकी लालसाके कारण उसे नरक जाना पड़ा।

गन्धमित्र केवल एक विषयका सेवन कर नरक गया, जो दुःखों का स्थान है। तब जो लोग पांचों इन्द्रियोंसे दिन रात विषयोंका सेवन करते हैं, वे किस घोर नरकमें जांयगे, इसका ध्यान करें। अतएव बुद्धिमानोंको विषयोंको ओरसे मन खींच जिनधर्मकी ओर लगाना चाहिये, जो स्वर्ग सुखका देने वाला है।

---

# ४६ गन्धर्व सेनाकी कथा।

सर्व सुखदायक जिन भगवानके चरणोंको नमस्कार कर गन्धर्व सेनाका चरित्र लिखा जाता है। यह भी एक ही विषयकी आसक्तिके कारण मौतके मुखमें पड़ी थी।

पाटलीपुत्रके राजा गन्धर्वदत्तकी रानी गन्धर्व दत्ताको गन्धर्व सेना नामक कन्या थी। गन्धर्वसेना गान विद्याओंमें बड़ी निपुण थी। उसनें प्रतिज्ञा कर रखो थी कि गान विद्यामें जो मुझे जीत लेगा, वही मेरा स्वामी होगा। उसकी मनोहर सुन्दरताको सुन अनेक क्षत्रिय-कुमार उसके पानेकी लालसासे आते थे पर सबको निराश हो लौट जाना पड़ता था। गन्धर्व सेनाके सामने गानेमें कोई नहीं ठहरने पाता था।

पांचाल नामक एक उपाध्याय गान विद्याका अच्छा जानकार था। उसकी इच्छा भी गन्धर्वसेनाको देखनेकी हुई। वह अपने पांच सौ शिष्योंको साथ लिये पटना आकर एक बगीचेमें ठहरा। गर्मीके दिनोंमें दूरको यात्रा करनेसे पांचाल थक गया था। किसी के आनेपर जगा देनेका आदेश देकर वह एक वृक्षकी ठण्ढी छाया-में सो गया। उसके सोते ही बहुतसे विद्यार्थी शहर देखने चले गये।

गन्धर्वसेनाको पांचालके आने और उसके पाण्डित्यकी खबर लगी। वह उसे देखने आई। बहुतसी वीणाओंको आस पास रखे सोया देख गन्धर्व सेनाने समझा कि विद्वान तो यह भारी मालूम होता है पर उसके लार बहते हुए मुखको देखकर उसे बड़ी घृणा

हुई। उसने फिर उसकी ओर देखातक नहीं। जिस वृक्षके नीचे वह सोया था उसकी चन्दन फूल आदिसे पूजाकर वह अपने महल में लौट आई। जब पांचालकी नींद खुली और उसने वृक्षको गन्ध पुष्पादिसे पूजा हुआ पाया तो उसे कुछ सन्देह हुआ। एक विद्यार्थी से पूछनेपर मालूम हुआ कि एक स्त्री आयी थी, जो वृक्षको पूजा कर चली गयी। पांचालने इतनेसे ही समझ लिया कि गन्धर्व सेना आकर चली गई और सोनेके कारण सब बना-बनाया काम बिगड़ गया। फिर भी उसने लौट जाना ठीक नहीं समझा। वह राजासे मिला और रहनेके लिये एक स्थान मांगा। स्थान उनकी प्रार्थनाके अनुसार गन्धर्वसेनाके महलके पास ही मिला, क्योंकि उसकी इच्छा राजकुमारीका गाना सुनकर यह देखनेकी थी कि इस विषयमें उस की कैसी गति है।

एक दिन रातके तीन चार बजे पांचाल वीणाको हाथमें लिये बड़ी मधुरतासे गाने लगा। शान्त रात्रिमें उसके गानेकी मधुर मनोहर आवाज आकाशको भेदती हुई गन्धर्वसेनाके कानोंसे टक-राई। गन्धर्वसेना इस समय गाढ़ी निद्रामें थी। इस मन मुग्धकर आवाजको सुनकर वह सहसा चौंक पड़ी और उठ बैठी। इतनेसे ही उसे सन्तोष न हुआ। फिर वह उस ओर दौड़ी, जिधरसे आ-वाज गूंजती हुई आ रही थी। इस बे-भान अवस्थामें दौड़ते हुए उसका पांव फिसल गया और धड़ामसे वह जमीनपर गिर पड़ी। गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। इस विषयासक्तिके कारण उसे चिरकालतक संसार भ्रमण करना पड़ा।

केवल कर्णेन्द्रियकी विषयासक्तिके कारण गन्धर्वसेना अथाह

संसार सागरमें डूबी। फिर जो पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें सदा मस्त रहते हैं, उनकी क्या हालत होगी ? अतएव धर्माचारियोंको इनसे बिलकुछ अलग रहना चाहिये।

---

## ५.० भीमराज की कथा।

वलज्ञान रूपी नेत्रोंके धारण करनेवाले श्री जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार करके भीमराज को कथा लिखो जातो है,जिसे सुनकर सत्पुरुषों को इस दुःखमय संसारसे वैराग्य हो।

कांपिल्य नगरमें भीम नामका एक दुर्बुद्धि और पापी राजा हो गया है। उसकी रानीका नाम सोम श्री और पुत्रका भीमदास था। भीमने कुतक्रमके अनुसार नन्दीश्वर पर्वमें मुनादी पिटवाई कि कोई इस पर्वमें जीव हिंसा न करे। मुनादी तो उसने पिटवा दो पर मांस खाये बिना उसे अपने ही चैन नहीं पड़ता था। उसने इस पर्वमें भी अपने रसोइयेसे मांस पकानेको कहा। दूकानें बन्द थीं। मांस मिलनेका कोई उपाय न देख वह मसानसे एक बच्चेकी लाश उठा लाया और उसे पकाकर राजाको खिलाया। मांस राजाको अच्छा लगा। उसने रसोइयासे पूछा-क्यों रे ! आज यह मांस और दिनोंकी अपेक्षा इतना स्वादिष्ट क्यों है ? रसोइयेने डरकर सच्ची बात राजासे कह दी। राजाने उससे कहा—आजसे तू बालकोंका ही मांस पकाया करना।

राजाने तो कह दिया, पर रसोइयेको इस बातकी चिन्ता हुई कि रोज वह बालकोंको लाये कहांसे ? राजाज्ञाका पालन तो होना ही चाहिये। तबसे रोज शामको वह मुहल्लोंमें जाता और किसी न किसी बच्चेको मिठाईका लोभ देकर झट उठा लाता। इस प्रकार रोज एक बच्चेकी जान जाने लगी। पापी लोगोंकी सङ्गति दूसरोंको भी पापी बना देती है।

बालकोंके इस प्रकार प्रतिदिन गायब होनेसे शहरमें बड़ी हलचल मच गई। सब इसका पता लगाने लगे। एक दिन रसोइया चुपकेसे एक बालकको उठाकर चला कि पीछेसे किसीने उसे देख लिया। रसोइया झटपट पकड़ लिया गया। पूछने पर उसने सब सच्ची सच्ची बातें बतला दीं। यह बात मन्त्रियोंके पास पहुंची। उन्होंने सलाह कर भीमदासको अपना राजा बनाया और भीमको रसोइयेके साथ शहरसे निकाल दिया। पापियोंका कोई साथ नहीं देता।

भीम वहांसे चलकर एक जङ्गलमें पहुंचा। उसे बहुत भूख लगी, पर खानेको कुछ नहीं था। तब वह अपने रसोइयेको ही मार कर खा गया। वहांसे घूमता फिरता वह मखेलपुर पहुंचा और वहां वासुदेवके हाथ मारा जाकर नरक गया।

अधर्मी पुरुष अपने ही पापोंसे संसार-सागरमें गोता खाते रहते हैं, इसलिये बुद्धिमानोंको सुखके स्थान जैन धर्मका पालन करना चाहिये।

# ५१ नागदत्ता की कथा ।

वों, विद्याधरों; चक्रवर्तियों और महाजनों द्वारा पूजित जिन भगवानको नमस्कार कर नागदत्ता की कथा लिखी जाती है।

आभीर देशके नासक्य नगरमें सागरदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम नागदत्ता था। इसके एक लड़का और एक लड़की थी, जिनका नाम श्रीकुमार और श्रीपेणा था। नागदत्ताकी आशनाई नन्द नामक एक चरवाहे से थी। नागदत्ताके वहकानेसे बीमारीका वहाना कर वह एक दिन गाय चराने नहीं आया। सागरदत्त स्वयं गौ चराने गया। जङ्गल में गौवोंको चरते छोड़ वह एक वृक्षके नीचे सो गया। पीछेसे नन्द ग्वालेने आकर उसे मार डाला। इसमें भी नागदत्तका हाथ था। कुलटाएं क्या नहीं कर सकती हैं?

नागदत्ता और नन्द इस प्रकार अपने राहका कांटा साफकर अपनी नीच मनोवृतिको पूरा करने और पापके बोझको बढ़ाने लगा। श्रीकुमार अपनी माताकी इस नीचतासे वहुत कष्ट पाने लगा। उसे लोगोंको मुंह दिखाना कठिन हो गया। उसने अपनी माताको इस विषयमें वहुत कुछ कहा सुना, फिर भी कोई असर न हुआ। उल्टे उसने श्रीकुमारको मार डालनेके लिये भी नन्दको उभाड़ा। नन्द फिर वहाना कर गौ चराने नहीं आया। श्रीकुमार स्वयं जानेको तैयार हुआ, यह देख श्रीपेणाने उसे रोककर कहा

कि भैया ! माताने इसी प्रकार कपट कर पिताजीको मरवा डाला है, अब वह तुम्हें भी मरवा डालनेको दांत पीस रही है। नन्दने इसीलिये आज फिर बहाना किया है। श्रीकुमार बोला—बहन ! अच्छा किया, जो तुमने मुझे सावधान कर दिया। तुम मेरी चिन्ता न करो। यदि मैं गौ चराने न जाऊंगा, तो माताको अधिक संदेह होगा और वह फिर मुझे मरवानेका कोई दूसरा यत्न करेगी। आज अच्छा मौका हाथ लगा है कि मैं उस अंकुरको जड़मूलसे उखाड़ फेंकूं। तुम घबराना नहीं, अनाथोंके नाथ अपना भी मालिक है।

श्रीकुमार बहनको समझाकर गौएं चराने जङ्गल गया। वहां एक लकड़ेको वस्त्रोंसे ढककर इस तरह रख दिया कि वह दूसरों को सोया हुआ मनुष्य जान पड़े और आप एक ओर छिप गया। श्रीषेणाकी बात सच निकली। नन्द दबे पांव तलवार लिये लकड़े के पास आया और उस पर वार किया। इतनेमें पीछेसे श्रीकुमार ने उसकी पीठमें भाला मारा, जो आरा-पार हो गया और नन्द वहीं तड़फड़ाकर मर गया। इधर श्रीकुमार गौवोंको लेकर घर लौटा। आज दुहनेके लिये भी वह स्वयं गया। उसे देख नागदत्ता ने पूछा—क्यों कुमार ! नन्द नहीं आया ? वह तुझे ढूंढ़ने जङ्गल की ओर गया था। क्या तूने देखा है कि वह कहां पर है ? श्रीकुमारसे तब न रहा गया और क्रोधित होकर उसने कहा—मा ! मुझे मालूम नहीं कि नन्द कहां है, पर मेरा भाला जानता है। खूनसे भरे भालेको देखते ही नागदत्ता समझ गई कि इसने उसे मार डाला है। फिर क्या था, क्रोधसे भरकर उस पापिनिने एक

मूसल उठाकर श्रीकुमारके सिर पर इतने जोरसे मारा कि सिर फटकर तत्काल वह धराशयी हो गया। अपने भाईकी हत्या देख श्रीपेगा दौड़ी हुई आई और नागदत्ताके हाथसे मूसल छुड़ाकर उसके सिर पर उसने जोरसे मारा, जिससे अपने कियेके योग्य सजा उसे भी मिल गई। नागदत्ता मरकर पापके फलसे नरक गयी। उस कामको धिक्कार है जो मनुष्यको अन्धा बना देता है और दुराचारी होकर जिसके वश लोग नरक यातना सहते हैं। इसलिये सत्पुरुषोंको उचित है कि वे जिनेन्द्र भगवानके आदेशानुसार सुखके साधन ब्रह्मचर्य व्रतका सदा पालन करें।

---

## ५२ द्वीपायन मुनिकी कथा।

संसारके स्वामी, अनन्त सुखदायक श्री जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर द्वीपायन मुनिका चरित्र लिखा जाता है, जैसा कि पूर्वाचार्योंने कहा है।

सोरठदेशकी द्वारका नगरीमें भगवान नेमिनाथका जन्म हुआ था, इससे वह पवित्र समझी जाती है। जिस समयकी यह कथा है, उस समय बलभद्र और वासुदेव वहांके राजा थे। एक दिन दोनों राज-राजेश्वर गिरनार पर्वतपर नेमिनाथ भगवानको पूजा करने गये। भक्ति पूर्वक वन्दना करनेके बाद बलभद्रने भगवानसे पूछा—हे संसारके अकारण बन्धु, त्रिलोक-

ज्ञाता, करुणा सागर, कृपाकर कहिये कि वासुदेवको जो सम्पत्ति प्राप्त है वह कितने समयतक ठहरेगी ? भगवान बोले—बारह वर्ष वासुदेवके पास रहकर फिर नष्ट हो जायगी। इसके बाद मद्यपान से यदुवंशका समूल नाश होगा, द्वारका द्वीपायन मुनिके सम्बन्धसे जलकर खाक हो जायगी और बलभद्र ! तुम्हारी इस छुरी द्वारा जरत्कुमारके हाथसे श्रीकृष्णकी मृत्यु होगी। भगवानके द्वारा यदुवंश, द्वारका और वासुदेवका भविष्य सुनकर बलभद्र द्वारका आये। उस समय द्वारकामें जितनी शराब थी, उसे उन्होंने गिरनार पर्वत के जंगलोंमें ढलवा दिया। उधर द्वीपायन अपने सम्बन्धसे द्वारका का भस्म होना सुन मुनि हो गये और द्वारका छोड़ अन्यत्र चले गये। बलभद्रके पास जो छुरी थी, उसे खूब घिस-घिसाकर उन्होंने समुद्रमें फेंकवा दिया। मनुष्य भावी जानकर उसे टालनेका बहुत यत्न करता है, पर उसके किये कुछ होता नहीं। कर्म योगसे छुरी एक मच्छ निगल गया और वही मच्छ फिर एक मल्लाहके जालमें आ फंसा। मच्छके चीरनेपर उसके पेटसे छुरी निकली और धीरे धीरे वह जरत्कुमारके हाथ पहुंच गई। जरत्कुमारने उसका फला बनाकर अपने बाणपर लगा लिया।

बारह वर्ष पूरे नहीं हुए, पर द्वीपायन ठीक हिसाब न रखनेके कारण उसे पूरा हुआ समझ, द्वारकाकी ओर लौट गिरनार पर्वत के पास कहीं आकर ठहर गये। एक दिनकी बात है कि द्वीपायन मुनि आतायन योग द्वारा तपस्या कर रहे थे। इसी समय यादवों के कुछ लड़के गिरनार पर्वतसे खेल कूदकर लौट रहे थे। रास्तेमें उन्हें जोरकी प्यास लगी। आते आते इन्हें पानीसे भरा एक गढ़ा

देख पड़ा, पर वह पानी नहीं था। बलभद्रने जो शराब ढलवा दी थी वही बहकर इस गढ़ेमें इकट्ठी हो गई थी। इस शराबको ही उन लड़कोंने पानी समझ पी लिया। थोड़ी देर बाद उसने इनपर अपना रंग जमाना शुरू किया। रास्तेमें इन्होंने द्वीपायन मुनिको ध्यान करते देखा। मुनिकी रक्षाके लिये बलभद्रने उनके चारों ओर कोटसा बनवा दिया था। एक ओर उसके आने जानेका दरवाजा था। इन शैतान लड़कोंने मजाकमें आ उस जगहको पत्थरों से ढक दिया। शराब पीनेवाले पापी लोगोंको हित अहितका कुछ ज्ञान नहीं रहता। लड़कोंको शैतानीका हाल जब बलभद्रको मालूम हुआ तो वे वासुदेवको लिये दौड़े दौड़े मुनिके पास आये और पत्थरोंको निकाल उनसे क्षमा प्रार्थना की। इस क्षमा करानेका मुनिपर कुछ असर नहीं हुआ, क्योंकि प्राण निकलनेकी तैयारी कर रहे थे। दो अंगुलियां दिखलाकर थोड़ी देर बाद वे मर गये। क्रोध से मरकर तपस्याके फलसे ये व्यन्तर हुए। कुवधि द्वारा आपने व्यन्तर होनेका कारण जान इन्हें लड़कोंके उपद्रवको सब बातें याद हो आईं। व्यन्तरको बड़ा क्रोध आया और उसने उसी समय द्वारकामें आग लगा दी। सारी द्वारका धन जन सहित देखते २ खाक हो गई। सिर्फ बलभद्र और वासुदेव ही बच सके, जिनके लिये द्वीपायनने दो अंगुलियां बतलायी थीं। उस भयंकर अग्नि-लीलाको देखकर इन दोनोंका जी भो ठिकाने न रहा। यहांसे निकल ये एक घोर जंगलमें आये। जो पलभर पहले राजा था, पापके उदय होनेसे दूसरे ही पल उसे भिखारी हो जाना पड़ा। इसलिये बुद्धिमानोंको सदा पापसे बचकर पात्र-दान, जिन पूजा

परोपकार आदि सत्कर्मों द्वारा पुण्यका संचय करना चाहिये। जंगलमें पहुंचते ही वासुदेवको इतनी प्यास लगी कि वे गश खाकर गिर पड़े। वलभद्र उन्हें वहीं छोड़ जल लाने चले गये। इधर जरत्कुमार न जाने कहांसे वहां आ पहुंचा और श्रीकृष्णको हरिणके भ्रमसे वाण द्वारा वेध दिया। जब उसने आकर देखा कि वह हरिण नहीं, वल्कि श्रीकृष्ण हैं तो उनके दुःखका पार न रहा। वह किं कर्तव्य विमूढ़ हो वलभद्रके भयसे उसी समय भाग गया। वलभद्र जब पानी लेकर लौटे और उन्होंने श्रीकृष्णकी दशा देखी तव जो उन्हें दुःख हुआ, वह लिखकर नहीं बताया जा सकता। यहांतक कि भ्रातृ प्रेमसे वे पागल हो गये और महीनों श्रीकृष्णको कन्धेपर लिये घूमते रहे। वलभद्रकी हालत देख उनके पूर्व जन्मके एक देव मित्रको दया आई। उसने आकर इन्हें समझा बुझाकर शान्त किया और इनसे भाईका अन्तिम संस्कार करवाया। संस्कारसे निवृत्त होनेपर इन्हें संसारकी दशापर वड़ा वैराग्य हुआ। ये उसी समय सव माया-ममता छोड़ योगी हो गये। फिर उन्होंने कठिन तप किया और अन्तमें धर्म-ध्यान सहित मरकर महेन्द्र स्वर्गमें देव हुए। वहां ये अपने पुण्य फलसे नाना प्रकारके स्वर्गीय भोगों को भोगने लगे। स्वर्गसे विमान द्वारा कैलाश, सम्मेद शिखर, हिमालय, गिरनार आदि पर्वतोंकी यात्राकर ये धर्मोपदेश भी सुना करते थे और विदेह क्षेत्रमें जाकर साक्षात जिन भगवानकी पूजा भक्ति करते थे।

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र रूपी तीन महान रत्नोंसे सुशोभित हैं और जिन भगवानके सच्चे भक्त हैं वे

ज्ञानके समुद्र वलभद्र मुनि हमें शान्ति और मंगल दें जिससे चित्त सदा प्रसन्न रहे।

---

# ५३ शराब पीनेवालेकी कथा।

सर्व सुख दायक सर्वज्ञ भगवानको नमस्कार कर शराब पीकर नुकसान उठानेवाले एक ब्राह्मण-की कथा लिखी जाती है, जिससे सर्व साधारण लाभ उठावे।

वेद-वेदांग विद एकपात नामक एक सन्यासी एकचक्रपुरसे गंगा स्नानार्थ जा रहा था। दैव योगसे रास्तेमें विन्ध्यावटी पहुं-चनेपर उसने देखा कि कुछ चाण्डाल शराब पीकर उन्मत्त हो अपनी जातिकी एक स्त्रीके साथ हंसी मजाक करते हुए नाच कूद रहे हैं। अभागा सन्यासी इस टोलीके हाथ पड़ गया। इन्हें देखते ही उन लोगोंने कहा—अहा! आप भले आये। आपकी ही हम लोगोंमें कसर थी। अब मांस खाइये, शराब पीजिये और जिन्दगी के सुख देनेवाली इस खूबसूरत औरतका मजा लूटिये। महाराज-जी आज बड़ी खुशीका दिन है, ऐसे समयमें आपके आ जानेसे तो हमारा सब करना-धरना सफल हो गया। लीजिये, अब देर न कर हमारी प्रार्थना पूरी कीजिये। उनकी बातें सुन बेचारे संन्यासी के तो होश उड़ गये। वे इन शराबियोंको कैसे समझावें, क्या कहें और कुछ कहें सुनें भी, तो वे माननेवाले कब? इस संकटसे छुट-कारा पानेके लिये संन्यासीने उनसे कहा—भाइयो, सुनो! एक तो

मैं ब्राह्मण और उसपर संन्यासी, फिर बतलाओ मैं मांस मदिरा कैसे खा-पी सकता हूं ? इसलिये मुझे जाने दो। उन चांडालोंने कहा—महाराज कुछ हो, बिना प्रसाद पाये तो हम नहीं जाने देंगे। हम आपसे यह भी कह देते हैं कि यदि आप अपनी खुशीसे न खायेंगे तो फिर जिस तरह बनेगा, हम लोग आपको खिलाकर ही छोड़ेंगे। बिना खाये आप जीतेजी गंगाजी नहीं देख सकते। अब तो सन्यासीजी घबड़ाये। वे कुछ विचारमें थे कि इतनेमें उन्हें स्मृतियोंके कुछ नीचे लिखे प्रमाण वाक्य याद आ गये—

"जो मनुष्य तिल या सरसोंके बराबर मांस खाता है वह नरकोंमें तबतक दुःख भोग करेगा, जबतक पृथ्वीपर चन्द्र और सूर्य रहेंगे।" सन्यासीजीने समझा कि यह वचन कम खानेवालों के लिये है, न कि अधिक खानेवालोंके लिये।" ब्राह्मण लोग यदि चाण्डालीके साथ विषय सेवन करें तो उनकी 'कष्ट भक्षण' नामके प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि हो सकती है और जो आंवले, गुड़ आदिसे बनी हुई शराब पीते हैं, वह शराब पीना नहीं कहा जा सकता—आदि।"

इसलिये जैसा ये कहते हैं, उसके करनेमें शास्त्र-स्मृतियोंसे तो कोई दोष नहीं आता। यह विचारकर उस मूर्खने शराब पी ली। पहले कभी शराब न पीनेके कारण उसका रंग इसपर खूब चढ़ा और नशेमें चूर हो यह सुध-बुध सब भूल गया। लंगोटी आदि फेंक यह भी उन लोगोंकी तरह नाचने लगा। खोटी संगति कुल, धर्म, पवित्रता आदि सभी बातें नष्ट कर देती है। बहुत देर-तक नाचनेसे वह थक गया और उसे बड़े जोरकी भूख लगी। वहां

मांस छोड़ और कुछ खानेको नहीं था, इसलिये सन्यासीने उसे ही खा लिया। पेट भरनेके बाद ही उसे कामने सताया। तब जवानी की मस्तीसे मस्त हुई उस स्त्रीके साथ उसने अपनी नीच वासना पूरी की। मतलब यह कि एक शराबके पीनेसे उसे सब नीच काम करने पड़े। दूसरे ग्रन्थोंमें भी इस एकपात सन्यासीके सम्बन्धमें लिखा है कि "मूर्ख एकपातने स्मृतियोंके वचनोंको प्रमाण मानकर शराब पी, मांस खाया और चाण्डालिनीके साथ विषय-सेवन किया अतएव बुद्धिमानोंको उचित है कि वे सहसा किसी प्रमाणपर विश्वास न कर बुद्धिसे काम लें क्योंकि मीठे पानीमें मिला हुआ विष भी जान लिये विना नहीं छोड़ता।

गंगा-गोदावरीका नहानेवाला, वेद-वेदाङ्ग-विद, विष्णुभक्त एकपात जैसा सन्यासी अज्ञान वश, स्मृतियोंके वचनोंको हेतु-शुद्ध मानकर दुष्कर्ममें फंस गया और वर्षोंके ब्रह्मचर्यका नष्टकर कामी हुआ, अतएव बुद्धिमानोंको उचित है कि वे सच्चे शास्त्रोंका इस तरह अभ्यास करें जो पापसे बचाकर कल्याण-मार्गका बताने वाला हो।

# ५४ सगर चक्रवर्त्ती की कथा ।

दे

वों द्वारा पूजित भगवान जिनेन्द्रनाथको नमस्कार कर दूसरे चक्रवर्त्ती सगरका चरित्र लिखा जाता है।

जम्बूद्वीपके प्रसिद्ध और सुन्दर विदेहक्षेत्र की पूरव दिशामें सीता नदीके पश्चिमकी ओर वत्सकावती नामका एक देश है। इसकी राजधानी पृथिवी नगरके राजाका नाम जयसेन था। जयसेनकी रानी जयसेना थी। इनके रतिषेण और धृतिषेण नामके दो पुत्र थे। दोनों भाई बड़े सुन्दर और गुणवान थे। रतिषेण अचानक मर गया। जयसेन पुत्र शोकसे दुःखित हो, धृतिषेणको राज दे, मारुत और मिथुन राजाके साथ यशोधर मुनिके पास दीक्षित हो साधु हो गये। बहुत दिनों तक इन्होंने तपस्या की। फिर सन्यास सहित शरीर छोड़ स्वर्गमें ये महाबल नामक देव हुए। इनके साथ दीक्षा लेनेवाला मारुत भी इसी स्वर्गमें मणिकेतु नामक देव हुआ। एक दिन इन दोनोंने विनोद करते-करते धर्म प्रेमसे प्रतिज्ञा की कि जो हम दोनोंमें पहले मनुष्य-जन्म धारण करे, उसे स्वर्गमें रहनेवाला देव जाकर समझावे और संसारसे उदासीनता उत्पन्न कराकर जिन दीक्षा के सम्मुख करे।

महाबलकी आयु बाईस सागरकी थी। मनमाना स्वर्ग सुख भोगकर अन्तमें पुण्य-प्रभावसे वह अयोध्याके राजा समुद्रविजय

की रानी सुव्रताके सगर नामका पुत्र हुआ। इसकी उम्र सत्तर लाख पूर्व वर्षोंकी थी। इसके सोनेके समान चमकते हुए शरीरकी ऊंचाई साढ़े चार सौ धनुष्य अर्थात १८७५ हाथोंकी थी। इसकी अनुपम सुन्दरता देख सभी प्रसन्न होते थे। सगरने राज्य श्री प्राप्त कर छहों खण्ड पृथ्वी विजय की। अपनी भुजाओंके बल इसने दूसरे चक्रवर्त्तीका मान प्राप्त किया। इतना होने पर भी वह धर्म-कर्म भूल न गया था। इसके साठ हजार पुत्र हुए। धन जनसे परिपूर्ण हो सुखसे यह अपना समय व्यतीत करता था। पुण्यबलसे जीवोंको सभी सम्पदाएं मिल सकती हैं। अतएव बुद्धिमानोंको जिन भगवानके बताये पुण्य-मार्गका अनुसरण करना चाहिये।

इसी समय सिद्धवनमें चतुर्मुख महामुनिको केवल ज्ञान हुआ। स्वर्गके देव, विद्याधर और राजे-महाराजे उनकी पूजाके लिये आये। सगर भी भगवानके दर्शनको आया था। सगरको आया देख मणिकेतुने कहा—राजराजेश्वर! क्या अच्युत स्वर्ग की बात याद है? जहां तुमने और मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो हम दोनोंमेंसे पहले मनुष्य जन्म ले, उसे स्वर्गका देव जाकर समझावे और संसारसे उदासीन कर तपस्याके सम्मुख करे। आपने बहुत समय तक राज्य-सुख भोग किया। अब इसे छोड़नेका यत्न करना चाहिये। विषय-भोग दुःखके कारण और संसारमें घुमानेवाले हैं। आप स्वयं बुद्धिमान हैं, अधिक मैं क्या समझा सकता हूं? सिर्फ अपनी प्रतिज्ञा पालनके लिये आपसे इतना निवेदन किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इन क्षण-भंगुर विषयोंसे अलग हो जिन भगवानका परम पवित्र तपो-मार्ग ग्रहण करेंगे।

मणिकेतुके इन उपदेशोंका पुत्र मोही सगर पर कुछ असर न हुआ। मणिकेतुने देखा कि अभी यह सांसारिक मायाजालमें इतना फंस रहा है कि इसे विषय भोगोंसे उदासीन बना देना कठिन ही नहीं वरन असंभव सा है। अस्तु फिर देखा जायगा। यह विचार कर मणिकेतु अपने स्थान पर चला गया। काल लब्धि के बिना कल्याण हो भी तो नहीं सकता।

कुछ समयके बाद मणिकेतुके मनमें फिर एक बार तरङ्ग उठी कि अब किसी दूसरे प्रयत्नसे सगरको तपस्याके सम्मुख करना चाहिये। फिर वह चारण मुनिका वेष बनाकर सगरके जिन मन्दिर में आया और भगवानका दर्शन कर वहीं ठहर गया। उसकी नयी उम्र और सुन्दरता देख सगरको बड़ा अचम्भा हुआ। सगरने पूछा मुनिराज! आपने इस नयी उम्रमें, जिसने संसारका कुछ सुख नहीं देखा, ऐसे कठिन योगको किस लिये धारण किया? मुझे तो आपको योगी हुए देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। तब देवने कहा—राजन! तुम कहते हो, वह ठीक है। पर मेरा विश्वास है कि संसारमें सुख है ही नहीं। जिधर मैं आंखें खोलकर देखता हूं मुझे दुख या अशान्ति ही देख पड़ती है। यह जवानी बिजलीकी तरह चमक कर पल भरमें नाश होनेवाली है। ये विषय-भोग सर्पके समान भयंकर हैं। संसार रूपी अथाह समुद्र नाना प्रकार के दुःख रूपी जल-जीवोंसे भरा हुआ है,जिसे पार करना जीवोंके लिये दुस्तर है। तब पुण्यसे जो यह शरीर मिला है, इसे इस अथाह समुद्रमें बहने दें या जिनेन्द्र भगवानके बताये तप रूपी जहाज द्वारा इसके पार होनेका यत्न करें। मैंने तो इस असार

संसारसे पार होनेका यत्न करना ही अपना कर्तव्य और दुर्लभ मनुष्य देहके प्राप्त करनेका फल समझा है। तुम्हें भी मैं यही सलाह देता हूं कि इस नाशवान माया-ममताको छोड़ कभी नाश न होने वाली लक्ष्मीका यत्न करो। मणिकेतुने और भी कई उदाहरणों द्वारा सगरको समझानेका यत्न किया, पर सब कुछ जानता हुआ भी पुत्र प्रेमके वश हो वह संसारको न छोड़ सका। मणिकेतुको इससे बड़ा दुःख हुआ कि सगरकी दृष्टिमें अभी संसारकी तुच्छता नजर न आई और वह उलटा उसीमें फंसता जाता है। लाचार हो वह स्वर्ग चला गया।

एक दिन सगर राजसभामें सिंहासन पर बैठे हुए थे। उस समय उनके पुत्रोंने आकर प्रार्थना की कि पूज्यपाद पिताजी! उन वीर क्षत्रिय-पुत्रोंका जन्म व्यर्थ है जो कुछ काम न कर पड़े पड़े खाते-पीते और मजा उड़ाया करते हैं, अतएव आप कृपाकर हमें कोई काम बतलाइये। फिर वह कितना ही कठिन क्यों न हो, हम पूरा करेंगे। सगरने जवाब दिया—पुत्रो! तुम्हारा कहना ठीक है पर मेरे पास अभी कोई ऐसा काम नहीं है जिसके लिये मैं तुम्हें कष्ट दूं। इसलिये पुण्यसे जो यह सम्पत्ति प्राप्त है, इसे तुम अभी भोगो, फिर देखा जायगा। उस दिन तो लड़के चुपचाप इसलिये चले गये कि पिताकी आज्ञा तोड़ना ठीक नहीं, पर उन्हें सन्तोष नहीं हुआ।

कुछ दिनों बाद फिर ये सगरके पास जा नमस्कार कर बोले पिताजी! अबतक आपके आज्ञानुसार हम लोगोंने भोगोंको भोगा, पर अब हम अत्यन्त लाचार हैं। हमारा मन यहां बिलकुल

नहीं लगता, इसलिये आप हमें किसी काममें लगाइये, नहीं तो हमें भोजन न करनेको भी वाध्य होना पड़ेगा। सगरने उनका आग्रह देखकर कहा—मेरी इच्छा नहीं है कि तुम कष्ट उठानेको तैयार हो पर जब तुम किसी तरह माननेको न हीं, तो मैं तुम्हें यह काम बताता हूं कि श्रीमान भरत सम्राटने कैलाश पर्वतपर चौबीस तीर्थंकरोंके चौबीस मन्दिर बनवाये हैं। वे सब सोनेके हैं और उनमें बे शुमार धन खर्च किया गया है। उनमें जो अनन्त भगवानकी पवित्र प्रतिमाएं हैं, वे रत्नमयी हैं। उनकी रक्षा करना बहुत जरूरी है। इसलिये तुम जाओ और कैलाशके चारों ओर एक गहरी खाई खोदकर उसे गंगाका प्रवाह लाकर भर दो, जिससे कभी कोई मन्दिरोंको कुछ हानि न पहुंचा सके। सगर पुत्र पिता की आज्ञा सुन बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें नमस्कार कर उत्साहके साथ अपने कामके लिये चल पड़े। कैलाशपर पहुंचकर कई वर्षोंके कठिन परिश्रम द्वारा उन्होंने चक्रवर्तीके दण्ड रत्नकी सहायतासे अपने कार्यमें सफलता प्राप्त कर ली।

अच्छा, अब उस मणिकेतुकी बात सुनिये—उसने सगरको संसारको उदासीन कर योगी बनानेके लिये दो बार यत्न किया पर उसे निराश होना पड़ा। इस बार उसने एक भयंकर काण्ड रचा। जिस समय सगरके साठ हजार लड़के खाई खोदकर गंगाका प्रवाह लाने हिमवान पर्वतपर गये और उन्होंने दण्ड-रत्न द्वारा पर्वत फोड़नेके लिये उसपर चोट मारी; उस समय मणिकेतुने एक महाविषधर सर्पका रूप धर, जिसकी फुंकार मात्रसे कोसोंके जीव-जन्तु भस्म हो सकते हैं, अपनी विषैली हवा छोड़ी, जिससे देखते

देखते वे सब जलकर खाक हो गये। सत्पुरुष दूसरेकी भलाई करने के लिये कभी कभी पहले उसका अहित कर उसे हितकी ओर लगाते हैं। मन्त्रियोंको इनके मरनेकी खबर मिली, पर उन्होंने राजासे इसलिये नहीं कहा कि वे इस महान दुःखको न सह सकेंगे। तब मणिकेतु ब्राह्मणका रूप लेकर सगरके पास पहुंचा और बड़े दुख के साथ रोना रोता बोला—राजाधिराज! आप सरीखे न्याय प्रिय राजाके होते हुए अनाथ हो जाना पड़े। मेरी आंखोंके एक-मात्र तारेको पापी लोग जबरदस्ती मुझसे छुड़ा ले जायं और मुझे द्वार २ का भिखारी बना जायं, इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात होगी? प्रभो! आज दुष्टोंने मुझे बे-मौत मार डाला है। आप मेरी रक्षा कीजिये। सगरने उसे धीरज देकर कहा—ब्राह्मण देव! घबराइये मत, वास्तवमें बात क्या है उसे कहिये, मैं आपका दुख दूर करनेका यत्न करूंगा। ब्राह्मणने कहा महाराज क्या कहूं? कहते छाती फटी जाती है, यह कहकर वह फिर रोने लगा। चक्रवर्तीको इससे बड़ा दुःख हुआ। उसके आग्रह करनेपर मणि-केतु बोला—अच्छा तो मेरी दुःख-गाथा सुनिये। मेरा एक लड़का था, जो मुझे कमाकर खिलाता पिलाता था, पर आज मेरा भाग्य फूट गया। उसे काल नामका लुटेरा मेरे हाथोंसे जबर्दस्ती छीनकर भाग गया। मैं बहुत रोया-कलपा, आरजू-मिन्नत की, दयाकी भीख मांगी, पर उस पापीने मेरी ओर आंख उठाकर भी न देखा। आप मेरे पुत्रको उस पापीसे छुड़ाकर ला दीजिये। नहीं तो मेरी जान न बचेगी। सगरको काल-लुटेरेका नाम सुनकर कुछ हंसी आयी। उसने कहा—महाराज! आप बड़े भोले हैं। भला, जिसे

काल ले जाता है, वह फिर कभी जिन्दा हुआ है क्या ? काल तो अपना काम किये ही चला जाता है। चाहे कोई बूढ़ा हो या जवान अथवा बालक. सबके प्रति उसके समान भाव हैं। आप तो अभी अपने लड़केके लिये रोते हैं, पर वह आपको भी जल्द ले जाने वाला है। आप उससे अपनी रक्षा चाहते हैं तो दीक्षा लेकर मुनि हो जाइये और आत्म कल्याणका यत्न कीजिये। इसके सिवा काल-पर विजय पानेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। ब्राह्मणने सुन-कर कहा—जब कालसे कोई मनुष्य विजय नहीं पा सकता तो लाचारी है। हां, महाराज ! एक जरूरी बात कहना मैं भूल ही गया था जिसके लिये आप क्षमा करेंगे। जब मैं रास्तेमें आ रहा था तो लोग आपसमें बोल रहे थे कि हाय ! बड़ा बुरा हुआ कि महाराजके लड़के जो कैलाश पर्वतकी रक्षाके लिये खाई खोदने गये थे, सबके सब एक साथ ही मर गये। ब्राह्मणका कहना पूरा भी न हुआ था कि सगर एकदम गश खाकर गिर पड़े। ऐसे भयङ्कर दुःखद समाचारको सुन कौन मूर्छित न होगा। उसी समय उप-चारों द्वारा सगर होशमें लाये गये। इसके बाद मौका पाकर मणि केतुने उन्हें संसारकी दशा बतलाकर खूब उपदेश किया। इस बार वह सफल प्रयत्न हो गया। सगरको वैराग्य हो गया और भगीरथ-को राज देकर उन्होंने दृढ़धर्म केवली द्वारा दीक्षा ले ली, जो संसार चक्रसे छुडानेवाली है।

सगरके दीक्षा लेनेके बाद ही मणिकेतु कैलाश पर्वतपर पहुंचा और उन लड़कोंको माया-मौतसे सचेतकर बोला—सगर-सुतो ! आपकी मृत्युका हाल सुनकर आपके पिताको अत्यन्त दुःख हुआ

और संसारको असार समझ वे साधु हो गए। मैं आपके कुलका ब्राह्मण हूं। महाराजके दीक्षा लेनेपर आपको ढूंढने निकला था, अच्छा हुआ जो आप मुझे मिल गये। अब आप राजधानीमें जल्दी चलें। ब्राह्मण रूपधारी मणिकेतुसे अपने पिताका दीक्षित हो जाना सुन सगर सुनोंने कहा—महाराज! आप जायं, हम लोग अब घर नहीं जांयगे। हमारे लिये पिताजी राज्य-पाश छोड़कर साधु हो गये तो क्या हम ऐशो-आराम भोगकर इसका बदला दें? कभी नहीं, पूज्य पिताजीने जिस मार्गको उत्तम समझकर ग्रहण किया है, वही हमारे लिये अनुकरणीय है। आप कृपाकर भैया भगीरथसे कह दीजियेगा कि वह हमारे लिये चिन्ता न करें। ब्राह्मणसे इस प्रकार कहकर वे सब भाई दृढ़ धर्म भगवानके समवशरण आये और पिताकी तरह दीक्षा लेकर साधु बन गये।

भगीरथको भाइयोंका हाल सुनकर बड़ा वैराग्य हुआ। उसकी इच्छा भी योगी बननेकी हुई, पर राज्य प्रबन्ध उसीपर निर्भर रहने के कारण वह दीक्षा न ले सका। उसने मुनियों द्वारा जिनधर्मका उपदेश सुन श्रावकोंका व्रत ग्रहण किया। मणिकेतुका सब काम जब अच्छी तरह हो गया तब वह प्रकट हुआ और उन मुनियोंको नमस्कार बोला—आपका मैंने बड़ा भारी अपराध किया है। आप लोग जैन धर्मके यथार्थ तत्वको जाननेवाले हैं। इसलिये सेवक को क्षमा करें। इसके बाद मणिकेतुने आद्यन्त सब घटना कह सुनाई। सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे उससे बोले—देवराज! इसमें तुम्हारा क्या अपराध हुआ जो क्षमा की जाय! तुमने तो उलटा हमारा उपकार किया है, जिसके लिये हमें तुम्हारा

कृतज्ञ होना चाहिए। मित्रके नाते तुमने जो कार्य किया है, वैसा करनेके लिये तुम्हारे विना और कौन समर्थ था ? तुम जिन भगवानके सच्चे भक्त हो। सगर-सुतोंका इस प्रकार सन्तोपजनक उत्तर पा मणिकेतु बहुत प्रसन्न हुआ। फिर उन्हें नमस्कारकर वह स्वर्ग चला गया। यह मुनि संघ विहार करता हुआ सम्मेद शिखर पर आया और वहीं कठिन तपस्याकर शुक्ल ध्यानके प्रभावसे निर्वाण लाभ किया।

उधर भगीरथने जब अपने भाइयोंका मोक्ष प्राप्त करना सुना तो उसे भी संसारसे वैराग्य हो गया। वरदत्त पुत्रको राज्य सौंप कैलाश पर्वतपर जाकर उसने शिवगुप्त मुनिराजसे दीक्षा ले ली। मुनि होकर भगीरथने गंगा तटपर कभी प्रतिमा योगसे, कभी आतापन योगसे और कभी और आसनोंसे खूब तपस्या की। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवताओंने क्षीर समुद्रके जलसे भगीरथके चरणोंका अभिषेक किया जो अनेक सुखोंका देनेवाला है। उस अभिषेकके जलका प्रवाह बहता हुआ गंगामें गया। तभीसे गंगा तीर्थके रूपमें परिणत हुई और उसमें स्नान करना पुण्य समझा जाने लगा। तप-बलसे अन्तमें कर्मोंका नाशकर भगीरथने जन्म, जरा, मरणादि रहित मोक्ष सुखको प्राप्त किया।

ज्ञान-चक्षु द्वारा संसारके पदार्थोंको जानने और देखनेवाले श्री सागर मुनि और जैन तत्वके विद्वान सागर सुत मुझे वह लक्ष्मी दें जो कभी नाश होनेवाली नहीं है और सर्वोच्च सुखकी देनेवाली है।

## ५५ मृगध्वजकी कथा।
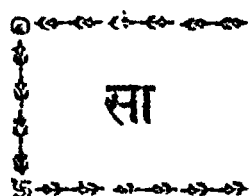
सारे संसार द्वारा भक्ति सहित पूजा किये गये जिन भगवानको नमस्कार कर प्राचीन आचार्योंके कहे अनुसार मृगध्वज राजकुमारकी कथा लिखी जाती है।

अयोध्याके राजा सोमन्धरकी रानी जिनसेना थी। इनका पुत्र मृगध्वज बड़ा मांस-लोलुप था। इसे बिना मांस खाये एक दिन भी चैन न पड़ता था। वहां एक राजकीय भैंसा था, जो बुलानेसे आता, लौट जानेका कहनेसे चला जाता था। एक दिन यह भैंसा तालाब में क्रीड़ा कर रहा था कि इतनेमें राजकुमार मृगध्वज, मन्त्री और सेठके लड़केको साथ लिये वहां आया। भैंसेके पांवोंको देखकर मृगध्वजने नोकरसे कहा कि आज इस भैंसेका पिछला पांव काटकर इसका मांस खानेको पकाना। इतना कहकर मृगध्वज चल दिया। नौकरने आज्ञानुसार भैंसका पांव काट कर मांस पकाया, जिसे देख राजकुमार और उसके साथी बड़े प्रसन्न हुए।

इधर बेचारा भैंसा लंगड़ाता हुआ राजाके सामने जाकर गिर पड़ा। राजाने उसकी मौत निकट देख कुछ विशेष पूछताछ न कर दया बुद्धिसे उसे सन्यास देकर नमस्कार मंत्र सुनाया। संसारमें ऐसे अनेक परोपकारी हैं जो चन्द्र, सूर्य, कल्प वृक्ष, पानी आदि उपकारक वस्तुओंसे भी कहीं बढ़कर हैं। भैंसा मरकर नमस्कार मन्त्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ। पवित्र जिन धर्म वास्तवमें जीवोंका हित करनेवाला है।

इसके बाद राजाने इस बातका पता लगाया कि भैंसाकी यह दशा किसने की। अपने मन्त्री और सेठके पुत्रका दोष मालूम होने पर राजाके गुस्सका ठिकाना न रहा। उन्होंने तीनोंको मार डालनेकी आज्ञा दी। राजाज्ञाकी खबर जब उन तीनोंको लगी तो झटपट मुनिदत्त मुनिके पास जाकर उन्होंने दीक्षा ले ली। इनमें मृगध्वज महामुनि बड़े तपस्वी हुए। उन्होंने ध्यानाग्नि द्वारा घातिया कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञान प्राप्त किया और संसार द्वारा पूज्य हुए। जैन धर्मके प्रभावसे महापापी भी पाप मुक्त हो त्रिलोक पूज्य हो जाता है।

भव्य जनोंके उद्धार करनेवाले, केवल ज्ञान रूपी नेत्रके धारक देवों, विद्याधरों और राजा-महाराजाओं द्वारा पूज्य मृगध्वज मुनि मुझे और आप भव्य जनोंको महामंगल मय मोक्ष लक्ष्मी दें।

---

## ५६ परशुरामकी कथा।
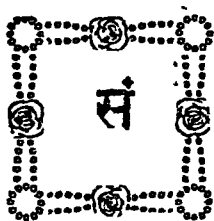
संसार सागरसे पार करनेवाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर परशुरामका चरित्र लिखा जाता है, जिसे सुनकर आश्चर्य होता है।

अयोध्याका राजा कार्त्तवीर्य अत्यन्त मूर्ख था। उसकी रानीका नाम पद्मवती था। अयोध्याके जंगलमें यमदग्नि ऋषिका आश्रम था। वहीं उनकी स्त्री रेणुका रहती थी। इसके श्वेतराम और महेन्द्र राम नामक दो लड़के थे। एक दिन रेणुकाके भाई वरदत्त मुनि वहीं आकर एक वृक्षके नीचे ठहरे। उन्हें देख रेणुका प्रेम

से उनसे मिलने आई और हाथ जोड़कर वहीं बैठ गयी। बरदत्त मुनि उससे कहने लगे—बहन! सब जीव सुख चाहते हैं पर सच्चे सुखका अन्वेषी विरला ही होता है। यही कारण है कि प्रायः लोग दुःखी देखे जाते हैं। सच्चे सुखका कारण पवित्र सम्यग्दर्शनका ग्रहण करना है। जो पुरुष सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं, वे दुर्गतियों में फिर नहीं भटकते। उनमें कितने तो उसी भवसे मोक्ष चले जाते हैं। सम्यक्त्वका साधारण स्वरूप यह है कि सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्रपर विश्वास लाना। सच्चे देव वे हैं जो राग, द्वेष आदि अठारह दोषोंसे रहित हों, जिनके ज्ञानके सामने कुछ गुप्त न रह गया हो, जिन्हें देव, विद्याधर और राजे-महाराजे भी पूजते हों, जिनका आदेशित धर्म इस लोक और परलोकमें भी सुखदायक हो तथा जिस पवित्र धर्मकी इन्द्रादि देव भी पूजा-भक्तिकर अपना जीवन कृतार्थ समझते हों। धर्मका स्वरूप उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव—आदि दश लक्षणों द्वारा प्रसिद्ध है। सच्चे गुरु वे हैं जो शील और संयमके पालनेवाले हों, परिग्रह रहित हों ज्ञान और ध्यानका साधन हो जिनके जीवनका खास उद्देश्य हो। इन बातोंपर विश्वास करनेको सम्यक्त्व कहते हैं। इसके सिवा पात्र-दान, भगवानकी पूजा, अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षा व्रत धारण करना, पर्वोमें उपवास करना आदि बातें भी गृहस्थोंके लिये आवश्यक है। यह गृहस्थ धर्म कहलाता है। तू इसे धारण कर, इससे तुझे सुख प्राप्त होगा। भाईके उपदेश द्वारा बड़ी श्रद्धा भक्तिके साथ उसने सम्यक्त्व रत्न द्वारा अपनी आत्माको विभूषित किया। रेणुकाका धर्म-प्रेम देखकर बरदत्त मुनिने उसे एक 'परशु' और

दूसरी 'कामधेनु' ये दो महाविद्याएं दीं जो नाना प्रकारके सुख देनेवाली हैं। रेणुकाको विद्या देकर वरदत्त मुनि विहार कर गये इधर सम्यक्त्व शालिनी रेणुका घर आकर सुखसे रहने लगी। रेणुकाका धर्म-प्रेम बढ़ता ही गया और वह भगवानकी बड़ी भक्तिनी हो गई।

एक दिन राजा कार्त्तवीर्य हाथी पकड़नेको इसी वनकी ओर आ निकला और घूमता हुआ रेणुकाके आश्रममें पहुंच गया। यमदग्नि ऋषिने सत्कारके साथ उसे अपने यहां भोजन कराया। कामधेनु विद्याकी सहायतासे भोजन बहुत उत्तम तैयार हुआ जिसे खाकर राजा प्रसन्न हुआ। जिन्दगीमें उसे कभी ऐसा भोजन न मिला था। उस कामधेनुको देखकर इस पापी राजाके मनमें पाप आया। यह कृतघ्न उस बेचारे तापसीका मारकर गौ ले गया। दुर्जन उपकारका बदला इसी प्रकार चुकाया करते हैं।

राजाके जानेके थोड़ी देर बाद रेणुकाके दोनों लड़के जंगलसे लकड़ियां आदि लेकर आये। माताको रोती देख उन्होंने कारण पूछा, रेणुकाने सब हाल कह सुनाया। माताकी दुःखभरी बातें सुनकर श्वेतरामके क्रोधका ठिकाना न रहा। मातासे 'परशु' नामकी विद्या लेकर अपने छोटे भाईके साथ वह कार्त्तवीर्यसे बदला लेनेको चल पड़ा। राजाके नगरमें पहुंचकर उसने कार्त्तवीर्यको युद्धके लिये ललकारा। कार्त्तवीर्यकी प्रचण्ड सेना रहनेपर भी परशु विद्याके प्रभावसे दोनों भाइयोंने सारी सेनाको छिन्न भिन्न कर दिया। अन्तमें कार्त्तवीर्यका मारकर पिताका बदला लिया। मरकर पापके फलसे कार्त्तवीर्य नरक गया। उस तृष्णाको धिक्कार है जिसके वश

हो लोग न्याय अन्यायका कुछ विचार नहीं करते। अतएव बुद्धि-मानोंको न्याय बुद्धसे सदा काम लेना चाहिये, क्योंकि अन्यायसे बड़े बड़े राजा महाराजाओंका भी अस्तित्व नष्ट हो जाता है। श्वेतरामने कार्त्तवीर्यको परशु विद्यासे मारा था, इसलिये अयोध्या में वह 'परशुराम' के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

संसारमें जो शूरवीर, विद्वान, सुखी और धनी हुए देखे जाते हैं, वह पुण्यकी महिमा है। इसलिये जो इन्हें चाहते हैं, उन्हें जिन भगवान द्वारा प्रदर्शित पुण्य मार्गपर चलना चाहिये।

---

## ५७ सुकुमाल मुनि की कथा।

नके नामका ध्यान करनेसे हर प्रकारकी धन-सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है उन परम पवित्र जिन भगवानको नमस्कार कर सुकुमाल मुनिकी कथा लिखी जाती है।

यह उस समयकी कथा है, जब अतिबल कौशाम्बीके राजा थे। वहां एक सोम शर्मा पुरोहित रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम काश्यपी था। इसके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो लड़के हुए। मा-बापके लाड़ले होनेके कारण ये कुछ पढ़ लिख नहीं सके। कालचक्रसे असमयमें ही सोमशर्माकी मृत्यु हो गई। दोनों पुत्रोंको निरा मूर्ख देख अतिबलने पुरोहित पद किसी और को दे दिया। यह ठीक है कि मूर्खोंका कहीं आदर-सत्कार

नहीं होता। अपना अपमान हुआ देख इन दोनों भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ। अब इन्हें कुछ लिखने पढ़नेकी सूझी। अपने मामा सूर्यमित्रके पास राजगृह जाकर इन्होंने सब हाल कहा। इनकी पढ़नेकी इच्छा देखकर सूर्यमित्रने स्वयं इन्हें पढ़ाना शुरू किया और कुछ ही वर्षोंमें इन्हें अच्छा विद्वान बना दिया। और ये अपने शहरको लौट आये। आकर इन्होंने अतिबलको अपनी विद्याका परिचय कराया। अतिबल इन्हें विद्वान देख खुश हुआ और इनके पिताका पुरोहित पद फिर इन्हें दे दिया।

एक दिन सन्ध्या समय सूर्यमित्र सूर्यको अर्घ चढ़ा रहा था कि अंगुलीसे राजकीय रत्न-जटित अंगूठी निकल कर महलके नीचे तालाबमें जा गिरी। भाग्यसे वह एक खिले हुए कमलमें पड़ी, जो रात होने पर कमलके सिकुड़ जानेसे उसीमें बन्द हो गई। पूजाके बाद जब उसकी नजर अंगुली पर पड़ी तो उसे मालूम हुआ कि अंगूठी कहीं गिर पड़ी। अब तो डरके मारे वह कांपने लगा उसे चिन्ता होने लगी कि राजा जब अंगूठी मांगेगा तो कहांसे दूंगा। अंगूठीके लिये उसने बहुत कुछ खोज-ढूंढ़ की, पर पता न चला। तब किसीके कहनेसे वह अवधिज्ञानी सुधर्म मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर उनसे अंगूठीके बारेमें पूछा। मुनिने कहा कि सूर्यको अर्घ देते समय तालाबमें एक खिले हुए कमलमें अंगूठी गिर पड़ी है, वह सबेरे मिल जायगी। वैसा ही हुआ, सूर्योदय होते ही जैसे कमल खिला, सूर्यमित्रको उसमें अंगूठी मिल गई। सूर्यमित्र बड़ा खुश हुआ, साथ ही उसे आश्चर्य हुआ कि मुनिने यह बात कैसे बतलाई? उनसे मुझे भी यह विद्या सीखनी चाहिये;

यह विचार कर सूर्यमित्र मुनिके पास गया। उन्हें नमस्कार कर उसने प्रार्थना की कि मुझे भी आप अपनी विद्या सिखा दीजिये तो बड़ी कृपा होगी। मुनिराजने कहा—भाई! मुझे इस विद्याके सिखलानेमें कोई इन्कार नहीं है पर बिना जिन दीक्षा लिये यह विद्या नहीं आ सकती। सूर्यमित्र तब केवल विद्याके लोभसे दीक्षा लेकर मुनि हो गया। सुधर्म मुनिने सूर्यमित्रको मुनियोंके आचार विचारके शास्त्र तथा सिद्धान्त-शास्त्र पढ़ाये, जिसने उसकी आंखें खुल गयीं। गुरु उपदेश रूपी दीपक द्वारा अपने हृदयके अज्ञाना-न्धकारको दूरकर वह जैन धर्मका अच्छा विद्वान हो गया। गुरुओंकी भक्ति और सेवा करनेसे सब काम सिद्ध हो सकते हैं।

मुनिधर्ममें कुशल होने पर गुरुकी आज्ञा लेकर सूर्यमित्र मुनि अकेले विहार करने लगे। एक बार वे विहार करते हुए कौशाम्बी आये। अग्निभूतिने इन्हें भक्ति-पूर्वक दान दिया और वायुभूतिसे मुनिकी वन्दना करनेके लिये आग्रह किया जिससे उसे जैन धर्ममें प्रेम हो। वायुभूति सदा जैन धर्मके विरुद्ध रहता था इसलिये अग्निभूतिके आग्रहका फल भी उलटा हुआ। क्रोधित होकर वायु-भूतिने मुनिकी और अधिक निन्दा की, उन्हें बुरा भला कहा। दुर्गतियोंमें जानेवालेको बुद्धि उपदेश करने पर भी और अधिक पापके कीचड़में फंसती है। अग्निभूतिको अपने भाईकी दुर्बुद्धि पर बड़ा दुःख हुआ और वह मुनिके साथ बनमें चला गया। वहां धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य हो जानेसे दीक्षा लेकर वह भी तपस्वी हो गया। अपना और दूसरोंका हित करना अबसे अग्निभूतिके जीवनका उद्देश्य हुआ।

अग्निभूतिके मुनि हो जानेकी बात सुनकर उनकी स्त्री सती सोमदत्ताको अत्यन्त दुःख हुआ। उसने वायुभूतिसे कहा—तुमने मुनि वन्दना न की जिससे दुःखी हो तुम्हारे भाई भी मुनि हो गये। यदि वे अबतक मुनि न हुए हों तो चलो हम दोनों उन्हें समझाकर वापस लावें। वायुभूतिने गुस्सा होकर कहा कि तुम्हें गरज हो तो तुम जाओ, मुझे उस बदमाश नंगेके पास जानेकी जरूरत नहीं है। यह कहकर अपनी भौजाईको एक लात मारकर वह चलता बना। सोमदत्ताको उसके व्यवहारसे बड़ा दुःख हुआ, पर अबला होनेसे वह उस समय कुछ न कर सकी। तब उसने निदान किया कि तूने जो मुझे लातोंसे ठुकराया है, इसका बदला स्त्री होनेसे इस समय मैं न ले सकी, पर याद रख इस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्ममें बदला अवश्य लूंगी। मुझे तभी सन्तोष होगा, जब मैं तेरे उस पांवको जिससे तूने लात मारी है और मेरे हृदय भेदनेवाले तेरे हृदयको खाऊंगी। ग्रन्थकार कहते हैं कि ऐसी मूर्खताको धिक्कार है जिसके वश प्राणी अपने पुण्य कर्मको ऐसे नीच निदानों द्वारा भस्म कर डालते हैं।

'इस हाथ दे और उस हाथ ले' इस कहावतके अनुसार वायुभूतिको भी मुनि निन्दाका फल बहुत जल्द मिल गया। पूरे सात दिन भी न हुए होंगे कि वायुभूतिके सारे शरीरमें कोढ़ निकल आया। धर्म पथ-प्रदर्शक महात्माओंको निन्दा करने वाले पापी पुरुष किन महाकष्टोंको नहीं पाते। वायुभूति कोढ़के दुःखसे मरकर कौशाम्बीमें ही एक नटके यहां गधा हुआ। गधा मरकर वह जंगली सूअर हुआ। इस पापायसे मरकर इसने चम्पापुरीमें एक

चाण्डालके यहां कुत्ताका जन्म धारण किया। कुत्ता मरकर चम्पापुरीमें हो एक दूसरे चाण्डालके यहां लड़की हुई जो जन्मसे अन्धी थी। इसका सारा शरीर बदबू कर रहा था, इसलिये माता पिताने इसे छोड़ दिया। फिर भी एक जांबू झाड़के नीचे पड़ी पड़ी यह जांबू खाया करती थी।

सूर्यमित्र मुनि अग्निभूतिको साथ लिये हुए इस ओर आ निकले। उस जन्मकी दुःखिना लड़कीको देखकर अग्निभूतिके हृदय में कुछ मोह और दुःख हुआ। उन्होंने गुरुसे पूछा—प्रभो! इस कष्ट में भी यह लड़की कैसे जी रही है? ज्ञानी सूर्यमित्र मुनिने कहा—तुम्हारे भाई वायुभूतिने धर्मसे पराङ्मुख होकर जो मेरी निन्दा की थी, उसी पापसे उसे कई भव पशु पर्यायमें लेने पड़े। अब यह चाण्डाल कन्या हुई है पर इसकी उम्र बहुत थोड़ी रह गयी है। इस लिये जाकर तुम इसे व्रत लिवाकर सन्यास दे आओ। अग्निभूतिने उस चाण्डाल कन्याको पांच अणुव्रत देकर सन्यास लिवा दिया।

चाण्डाल कन्या मर कर व्रतके प्रभावसे चम्पापुरीमें नाग शर्मा ब्राह्मणके यहां नागश्री नामकी कन्या हुई। एक दिन नाग श्री बनमें नाग-पूजा करने गयी थी। पुण्यसे सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि भी विहार करते वहां पहुंच गये। उन्हें देख नागश्रीके मनमें उनके प्रति अत्यन्त भक्ति हो गयी। वह हाथ जोड़कर उनके पास बैठ गयी। नागश्रीको देख अग्निभूतिके मनमें कुछ प्रेमका उदय हुआ, जो होना उचित ही था क्योंकि वह थी उनके पूर्व जन्मका भाई। गुरुसे प्रेम होनेका कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि पूर्व जन्मके भ्रातृ-भावके कारण ऐसा हुआ है। तब अग्निभूतिने उसे धर्मोपदेश

दिया और सम्यक्त्व तथा पांच अनुव्रत उसे ग्रहण करवाये। व्रत ग्रहण कर जब नागश्री जाने लगी तब उन्होंने उसे कह दिया कि तेरे पिताजी यदि व्रत लेनेसे नाराज हों तो तू हमारे व्रत हमें आकर सौंप जाना।

इसके बाद नागश्री मुनिराजोंको प्रणाम कर घर पर आ गई। नागश्रीकी सहेलियोंने उसके व्रत लेनेकी बात नाग शर्मासे कह दी। नागशर्माने कुछ क्रोधकासा भाव दिखाकर नागश्रीसे बोला—बच्ची! तू बड़ी भली है, जो झटसे हरएकके बहकानेमें आ जाती है। भला, तू नहीं जानती कि पवित्र ब्राह्मण कुलमें उन नङ्गे मुनियोंके व्रत नहीं लिये जाते। इसलिये उनके व्रत तू छोड़ दे। नागश्री बोली पिताजी! आते समय उन मुनियोंने कहा था कि तेरे पिता जो व्रत छोड़नेका आग्रह करें तो तू हमारे व्रत हमें हीं दे जाना। आप चलिये मैं उन्हें उनका व्रत दे आती हूं। नागश्रीका हाथ पकड़े नागशर्मा क्रोधसे भरा जा रहा था कि रास्तेमें कुछ गुल-गपाड़ा सुन पड़ा। उस जगह बहुतसे लोग इकट्ठे हो रहे थे और एक मनुष्य उनके बीच बंधा हुआ पड़ा था, जिसे कुछ निर्दयी लोग क्रूरतासे मार रहे थे। नागश्रीने पूछा—पिताजी! यह बेचारा निर्दयतासे क्यों मारा जा रहा है? नागशर्मा बोला—बच्ची! वणिक पुत्र वरसनेका यह कुछ रुपया धारता था। तकाद्दा करने पर इस पापीने उसे जानसे मार डाला। उस अपराधके लिये राजाने इसे प्राण दण्डकी सजा दी है जिससे दूसरा कोई फिर ऐसा अपराध न करे। तब नागश्री जरा जोर देकर बोली कि पिताजी! यही व्रत तो उन मुनियोंने मुझे दिया है, फिर आप उसे छोड़नेको क्यों कहते

हैं ? नागशर्मा लाजवाब हो बोला—अच्छा तो इस व्रतको छोड़ बाकी व्रत तो उन्हें दे दो। आगे चलकर एक और पुरुषको बंधा देख नागश्रीने पूछा पिताजी ! यह क्यों बांधा गया है ? नागशर्माने कहा—पुत्री ! यह झूठ बोलकर लोगोंको ठगा करता था जिससे बहुतसे लोग भिखारी हो गये हैं, उसी अपराधमें इसकी यह दशा की जा रही है। तब फिर नागश्रीने कहा—तो पिताजी. यही व्रत तो मैंने भी लिया है। इसी प्रकार चोरी, लोभ आदिसे दुःख पाते हुए मनुष्योंको देखकर नागश्रीने अपने पिताको निरुत्तर कर दिया और व्रतोंको नहीं छोड़ा। तब हार खाकर नागशर्माने कहा—यदि तेरी इच्छा इन व्रतोंको छोड़नेकी नहीं है तो मत छोड़, पर तू मेरे साथ उन मुनियोंके पास तो चल। मैं उन्हें पूछूंगा कि मेरे पूछे बिना उन्होंने मेरी लड़कीको व्रत क्यों दे दिये ? दूर से ही मुनियोंको देख कर उसने कहा—क्यों रे नङ्गे साधुओ ! तुमने मेरी लड़कीको व्रत देकर क्यों ठग लिया ? ऐसे पापियोंके विचारोंको सुनकर बड़ा ही खेद होता है। जो यह नहीं समझते कि व्रत, शील जो पुण्यके कारण हैं, उनसे कोई कैसे ठगा जा सकता है ? नागशर्माको आपेसे बाहर देखकर सूर्यमित्र बड़ी धीरता और शान्तिसे बोले—भाई, जरा धीरज धर, क्यों इतनी जल्दी कर रहा है। मैंने इसे व्रत दिया है अपनी लड़की समझकर और वास्तवमें यह है भी मेरी लड़की। तेरा तो इसपर कुछ भी अधिकार नहीं है। यह कहकर सूर्यमित्र मुनिने नागश्रीको पुकारा और वह झटसे आकर उनके पास बैठ गई। अब तो ब्राह्मण देवता बड़े घबड़ाये और 'अन्याय' 'अन्याय' चिल्लाते हुए राजाके

पास पहुंचे। राजासे उसने कहा महाराज! नंगे साधुओंने मेरी नागश्री लड़कीको जबर्दस्ती छीन लिया है। वे कहते हैं कि यह तेरी लड़की नहीं, हमारी लड़की है। आप उन पापियोंसे मेरी लड़की दिलवा दीजिये। नागशर्माकी बात सुनकर सारी राजसभा आश्चर्यमें पड गयी। राजाकी समझमें कुछ न आया, तो वे सबको साथ लिये मुनिके पास आये और उन्हें नमस्कार कर बैठ गये। फिर झगड़ा उपस्थित हुआ। नागशर्मा नागश्रीको अपनी लड़की बताने लगा और सूर्यमित्र मुनि अपना। मुनि बोले—यदि यह तेरी लड़की है तो बता तूने इसे क्या पढ़ाया है? मेरी लड़की यह इसलिये है कि मैंने इसे सब शास्त्र पढ़ाये हैं। तब राजा बोले प्रभो आपने जो इसे पढ़ाया है उसकी परीक्षा इससे दिलवाइये, जिससे हमें विश्वास हो। यह सुन सूर्यमित्र मुनि अपने वचन रूपी किरणों द्वारा लोगोंके मूर्खता रूपी अन्धकारका नाश करते हुए बोले—हे नागश्री! हे पूर्व जन्ममें वायुभूतिका भव धारण करनेवाली पुत्री! तुझे मैंने जो पूर्व जन्ममें शास्त्र पढ़ाये हैं, उनकी इस उपस्थित मण्डलीके सामने तू परीक्षा दे। सूर्यमित्र मुनिके कहते ही नागश्री ने जन्मान्तरका पढ़ा-पढ़ाया सब विषय सुना दिया। राजा तथा और सब मण्डलीको इससे बड़ा आश्चर्य हुआ और नागश्रीके सम्बन्धकी सब बात जाननेकी उनमें उत्कण्ठा हुई। अवधि ज्ञानी सूर्यमित्र मुनिने वायुभूतिके भवसे नागश्रीके जन्म तककी सब कथा उनसे कह सुनाई। सुनकर राजाको यह सब मोहकी लीला जान पड़ी। मोहको दुःखका मूल कारण समझकर उन्हें वैराग्य हुआ और उन्होंने उसी समय जिन दीक्षा ले ली। नाग शर्मा भी जैन

धमका उपदेश सुनकर मुनि हो गया और तपस्याकर अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। नागश्रीको भी पूर्व जन्मका हाल सुनकर वैराग्य हुआ और दीक्षा लेकर वह आर्यिका हो गई। अन्तमें शरीर छोड़कर तपस्याके फलसे वह अच्युत स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई। संसार में गुरु सबसे श्रेष्ठ हैं जिनकी कृपासे जीवोंको सब सम्पदाएं प्राप्त हो सकती हैं।

यहांसे बिहार कर सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिराज अग्नि मन्दिर नामक पर्वतपर पहुंचे। वहां तपस्या द्वारा घातिया कर्मोंका नाशकर उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया और त्रिलोक पूज्य हो अन्तमें परम सुखमय मोक्ष लाभ किया।

अवन्ति देशके उज्जैन शहरका रहनेवाला इन्द्रदत्त सेठ बड़ा धर्मात्मा और जिन भगवानका सच्चा भक्त था। उनकी स्त्री गुणवती नामके अनुसार गुण सम्पन्न और सुन्दरी थी। नागश्रीका जीव, जो अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था, वहां अपनी आयु पूरीकर गुणवती सेठानीके सुरेन्द्रदत्त नामक सुशील और गुणी पुत्र हुआ। सुरेन्द्रदत्तका ब्याह उज्जैन हीमें रहनेवाले सुभद्र सेठकी लड़की यशोभद्राके साथ हुआ। पुण्यके प्रभावसे इन्हें किसी वस्तुकी कमी न थी और आनन्दसे ये अपना समय व्यतीत करते थे। धर्म प्रेमभी इनका ज्योंका त्यों था।

एक दिन यशोभद्राने एक अवधिज्ञानी मुनिराजसे पूछा—योगिराज! क्या मेरी आशा इस जन्ममें पूरी होगी? मुनिराजने कहा हां, अवश्य होगी। तेरा होनेवाला पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान और अनेक गुणोंका धारक होगा। सिर्फ चिन्ताकी यह बात है कि तेरा

स्वामी पुत्रका मुख देखते ही जिन दीक्षा ले लेगा। तेरा पुत्र भी जब कभी किसी जैन मुनिको देखगा तो वह भी उसी समय विषयोंका त्याग योगी हो जायगा।

इसके कुछ महीने बाद, नागश्रीके जीवने जो स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ था, स्वर्ग अपनी आयु पूरी कर, यशोभद्राके गर्भसे जन्म लिया। इनका नाम सुकुमाल रखा गया। सुरेन्द्रदत्त पुत्रका मुख देख उसे अपने सेठ पदका तिलककर मुनि हो गया।

जब सुकुमाल बड़ा हुआ तो उसकी मांको चिन्ता हुई कि कहीं यह भी किसी मुनिको देखकर मुनि न हो जाय। इसलिये यशोभद्राने अच्छे घरानेकी कोई बत्तीस सुन्दर कन्याओंके साथ उसका ब्याह कर दिया। सबसे अलग अलग रहनेके लिये उसने एक बड़ा भारी महल बनवाया जो विषय भोगोंकी एकसे एक उत्तम सामग्रियोंसे परिपूर्ण रहा करता था। यह सब प्रबन्ध इसलिये किया गया था कि जिससे सुकुमालका मन सदा विषयोंमें फंसा रहे। पुत्र मोहसे उसने अपने घरमें जैन मुनियोंका आना जाना भी बन्द करवा दिया।

एक दिन बाहरके सौदागरने आकर राजा प्रद्योतनको एक बहुमूल्य रत्नजटित कम्बल दिखलाया। मूल्य अधिक होनेके कारण राजाने उसे नहीं लिया। यशोभद्राको कम्बलका खबर मिलते ही उसने सौदागरको बुलाकर कम्बल सुकुमालके लिये खरीद लिया। रत्नोंको जड़ाइके कारण कम्बल कड़ा था, इसलिये सुकुमालनें उसे पसन्द न किया। तब यशोभद्राने उसके टुकड़े करवाकर अपनी बहुओंके लिये उसकी जूतियां बनवा दीं। एक दिन सुकुमालकी

स्त्रा जूतियां खोलकर पांव धो रही थी कि इतनेमें एक चील मांस के टुकड़ेके लोभसे एक जूती उठा ले उड़ी। उसकी चोंचसे छूटकर वह जूती एक वेश्याके मकानकी छतपर गिरी। वेश्या उसे राज-घरानेकी समझकर राजाके पास ले गई। राजा भी उसे देखकर दंग रह गया कि इतनी कीमती जूतियां जिसके यहां पहनी जाती हैं, उसके धनका क्या ठिकाना होगा। मेरे शहरमें इतना भारी धनी कौन है, इसका पता लगाना चाहिये। खोज करनेपर मालूम हुआ कि सुकुमाल सेठ वह धनी है और जूती उसीकी स्त्रीकी है। राजाको सुकुमालसे मिलनेकी उत्कण्ठा हुई और एक दिन वे उस से मिलने गये। राजाको अपने घर आया देख यशोभद्रा बड़ी प्रसन्न हुई और उनका खूब आदर सत्कार किया। राजाने प्रेम-वश सुकुमालको भी अपने पास सिंहासनपर बैठा लिया। यशो-भद्राने दोनोंकी एक साथ आरती उतारी। दीयेकी तथा हार की ज्योतिसे मिलकर बढ़े हुए तेजको सुकुमालकी आंखें न सह सकीं। उनमें पानी आ गया। इसका कारण पूछनेपर यशोभद्राने राजासे कहा—महाराज! इसने कभी रत्नमय दीयेको छोड़ ऐसे दीयेको नहीं देखा, इसलिये इसकी आंखोंमें पानी आ गया है। यशोभद्रा जब दोनोंको भोजन कराने बैठी तो सुकुमाल चावलोंमेंसे एक एक चावल बीन कर खाने लगा। राजाने यशोभद्रासे इसका भी कारण पूछा। यशोभद्राने कहा—राज राजेश्वर! इसे जो चावल खानेको दिये जाते हैं वे खिले हुए कमलोंमें रखकर सुगन्धित किये जाते हैं। आज वे चावल थोड़े होनेसे मैंने उन्हें दूसरे चावलोंके साथ मिलाकर बना लिया। इससे यह एक-एक चावल चुन चुन

कर खाता है। राजाने पुण्यात्मा सुकुमालकी प्रशंसा कर कहा— सेठानीजी! अबतक कुवर साहब आपके घरके सुकुमाल थे, पर अब मैं इनका अवन्ति-सुकुमाल नाम रखकर इन्हें सारे देशका सुकुमाल बनाता हूं। मेरे देशमें सुकुमारता और सुन्दरताका यही आदर्श है। इसके बाद राजा सुकुमालको संग लिये जल-क्रीड़ा करने बावड़ीपर गये। खेलते समय राजाकी अंगुलीसे अंगूठी निकलकर क्रीड़ा सरोवरमें गिर गई। राजा उसे ढूंढ़ने लगे तो जलके भीतर उन्हें हजारों बड़े बड़े सुन्दर और कीमती भूषण देख पड़े। उन्हें देख राजाकी अक्ल चकरा गई। वे सुकुमालके अनन्त वैभवको देख यह सोचते हुए महलको लौट आये कि यह सब पुण्यकी लीला है।

सज्जनो! धन-धान्यादि सम्पदाका मिलना, पुत्र, मित्र और सुन्दर स्त्रीका प्राप्त होना, अच्छे अच्छे वस्त्राभूषणोंका पहनना, मनोहर महलोंमें रहकर सुस्वादु वस्तुएं खानेको मिलना, विद्वान तथा नीरोग होना आदि सुख-सामग्रियां जीवोंको जिनेन्द्र भगवान के उपदेशित मार्गपर चलनेसे मिल सकती हैं। अतएव दुःख-दायी खोटे मार्गको छोड बुद्धिमानोंको स्वर्ग मोक्षके सुखका बीज पुण्य कर्म करना चाहिये। पुण्य, जिन भगवानकी पूजा, पात्र दान, व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य आदिके धारण करनेसे होता है।

एक दिन जैनतत्वके परम विद्वान सुकुमालके मामा गणधराचार्य सुकुमालकी आयु थोड़ी रही जानकर उसके महलके पीछे बगीचेमें आकर ठहरे और चतुर्मास लग जानेसे उन्होंने वहीं योग धारण कर लिया। यशोभद्राको उनके आनेकी खबर मिलते ही

वह उसके पास गई और बोली—प्रभो! जबतक आपका योग पूरा न हो तबतक आप कहीं ऊंचेसे स्वाध्याय या पठन-पाठन कीजियेगा। जब उनका योग पूरा हुआ, तब उन्होंने अपनी योग सम्बन्धी सब क्रियाओंको करके अन्तमें लोक-प्रज्ञप्तिका पाठ करना शुरू किया। उसमें उन्होंने अच्युत स्वर्गके देवोंकी आयु, उनके शरीरकी ऊंचाई आदिका खूब अच्छी तरह वर्णन किया, जिसे सुनकर सुकुमालको जाति स्मरण हो आया। पूर्व जन्ममें पाये दुःखोंका याद कर वह कांप उठा। वह उसी समय चुपकेसे महलसे निकलकर मुनिराजके पास गया और नमस्कार कर उनके पास बैठ गया। मुनिने उससे कहा—बेटा! अब तुम्हारी आयु सिर्फ तीन दिनकी रह गयी है। इसलिये विषय भोगोंको छोड़ अब अपना आत्महित करना चाहिये। जो विषय भोगोंकी धुनमें मस्त रह कर अपने हितको ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें कुगतियोंके अनन्त दुःख उठाने पड़ते हैं। जाड़में आग बहुत प्यारी लगती है पर जो उसे छूयेगा, वह तो जलेगा ही। यही हाल इन ऊपरके स्वरूपसे मनको लुभानेवाले विषयोंका है। इसलिये ऋषियोंने इन्हें 'भोगा भुजङ्ग भोगाभाः' अर्थात् सर्पके समान भयंकर कह कर विषयोंका भोगकर आज तक कोई सुखी नहीं हुआ तो फिर इनसे सुखको आशा करना नितान्त भूल है। मुनिराजका उपदेश सुनकर सुकुमालको बड़ा वैराग्य हुआ। वह उसी समय जिन दीक्षा लेकर मुनि हो गया। मुनि होकर वह वनकी ओर चला गया। उसका यह अन्तिम जीवन कठोरसे कठोर चित्तवाले मनुष्योंके हृदयको हिला देने वाला है। पाठकोंको सुकुमालको

सुकुमारता का हाल मालूम है। आरती उतारनेके समय मङ्गल द्रव्य सरसोंके चुभनेको भी सुकुमाल न सह सका था। रत्न-जटित कम्बल कठोर होनेके कारण उसने ना-पास कर दिया था। माके प्रेम और लाड़-प्यारके कारण उसे कभी जमीन पर पांव रखनेका मौका नहीं आया था। उसो सुकुमालने अपने जीवन प्रवाहको कुछ मिनटोंके उपदेशसे विलकुल उलटा वहा दिया। जिसने कभी यह नहीं जाना कि घर-बाहर क्या है, वह अव अकेला भयङ्कर जंगलमें जा वसा। जिसने स्वप्नमें भी दुःख नहीं देखा, वही अव दुःखोंका पहाड़ अपने सिर पर उठा लेनेको तैयार हो गया। कंकरीली जमीन पर चलनेसे उसके फूलोंसे कोमल पांवोंमें घाव हो गये। उनसे खूनकी धारा वह चली, पर धन्य सुकुमालकी सहन-शीलता, जो उसने उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं झांका। अपने कर्तव्यमें वह इतना एकनिष्ठ हो गया कि उसे इस वातका भान ही न रहा कि मेरे शरीरकी क्या दशा हो रही है। इतनेमें ही सुकुमालकी सहन-शीलताकी इति-श्री नहीं हो गई, अभी आगे चलकर और देखना है कि इस परीक्षामें वह कहां तक उत्तीर्ण होता है।

पांवोंसे खून वहता जाता है और सुकुमाल मुनि चले जा रहे हैं। चलकर वे एक पहाड़की गुफामें पहुंचे! वहां वे ध्यान लगाकर वारह भावनाओंका विचार करने लगे। उन्होंने प्रायोपगमन सन्यास ले लिया, जिसमें किसीसे अपनी सेवा-शुश्रुषा भी कराना मना है। सुकुमाल मुनि इधर तो आत्म-ध्यानमें लीन हुए। अब जरा इनके वायुभूतिके जन्मको याद कीजिये।

जिस समय वायुभूतिके बड़े भाई अग्निभूति मुनि हो गये, उस समय उनकी स्त्रीने वायुभूतिसे कहा था कि तुम्हारे कारणसे ही तुम्हारे भाई मुनि हो गये। इसलिये यदि उन्होंने अबतक दीक्षा न ली हो तो चलो हम तुम उन्हें समझा-बुझाकर घर लौटा लावें। इस पर गुस्सा होकर वायुभूतिने भौजीको बुरा-भला कहकर उसपर लात जमा दिया था। तब उसने निदान किया था कि पापी, तूने निर्बल समझकर मेरा जो अपमान किया है इतका बदला मैं इस समय नहीं चुका सकती। पर याद रख, इस जन्ममें नहीं तो पर जन्ममें सही, बदला लूंगी और घोर बदला लूंगी।

इसके बाद वह मर कर अनेक कुयोनियोंमें भटकी। अन्तमें वायुभूति तो सुकुमाल हुए और उसकी भौजी सियारनी हुई। जब सुकुमाल मुनि बनकी ओर रवाना हुए और उनके पांवोंमें कङ्कर, पत्थर, कांटे आदि लगकर खून बहने लगा तो यही सियारनी अपने पिल्लोंको साथ लिये उस खूनको चाटती चाटती वहीं आ गई जहां सुकुमाल मुनि ध्यानमें लीन हो रहे थे। सुकुमालको देखते ही पूर्व जन्मके संस्कारसे सियारनीको अत्यन्त क्रोध आया। वह घूमती हुई उनके बिलकुल निकट आ गयी और सुकुमालका खाना शुरू कर दिया। उसे खाते देख उसके पिल्ले भी खाने लग गये। जो कभी एक तिंनकेका चुभ जाना भी नहीं सह सकता था, वह आज ऐसे घोर कष्टको सहकर भी सुमेरु-सा निश्चल बना है। सुकुमालके शरीरका चार हिंसक जीव निर्दयतासे खा रहे हैं फिर भी वह रंचमात्र हिलता-डुलता नहीं है। उस महात्माकी इस अलौकिक सहन-शक्तिका किन शब्दोंमें उल्लेख किया जाय, यह

बुद्धिमें नहीं आता। सुकुमाल मुनिकी यह सहन शक्ति उन कर्तव्य-शील मनुष्योंको अप्रत्यक्ष रूपसे शिक्षा दे रही है कि अपने उच्च और पवित्र कर्तव्योंमें आनेवाले विघ्नोंकी परवा मत करो। विघ्न आवे और खूब आवे। आत्माकी अनन्त शक्तियोंके सामने ये विघ्न कुछ चीज नहीं—किसी गिनतीमें नहीं। तुम अपने पर विश्वास करो—भरोसा करो। हरएक काममें आत्म दृढ़ता, आत्म-विश्वास उनके सिद्ध होनेका मूल मंत्र है। जहां ये बातें नहीं, वहां मनुष्यता भी नहीं, तब कर्त्तव्य-शीलता तो फिर कोसों दूरी पर है। विलासितामें जीवन यापन करने पर भी कर्त्तव्य-शीलता सुकुमालके पास थी। यही कारण है कि हृदय-विदारक कष्टोंका सामना कर भी वे अचल बने रहे।

सुकुमाल मुनिको उस सियारनीने पूर्व वैरके सम्बन्धसे तीन दिन तक खाया, पर वे मेरुके समान धीर बने रहे। दुःखकी उन्होंने कुछ पर्वा न की। यहां तक कि खानेवाली सियारनी पर भी उनके बुरे भाव न हुए। शत्रु-मित्रको सम भावसे देखकर उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन किया। तीसरे दिन सुकुमाल शरीर छोड़कर अच्युत स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए।

वायुभूतिकी भौजीने निदानके वश सियारनी होकर अपने वैरका बदला चुका लिया। निदान अत्यन्त दुःखोंका कारण है, अतएव भव्य जनोंको यह पापका कारण निदान कभी नहीं करना चाहिये। इस पापके फलसे सियारनी मरकर कुगतिमें गई।

कहां वे मनको लुभानेवाले भोग और कहां यह दारुण तपस्या, महा पुरुषोंका चरित्र कुछ विलक्षण हुआ करता है। सुकुमाल मुनि

अच्युत स्वर्गमें देव होकर दिव्य सुखोंको भोगते हैं और जिन भगवानकी भक्तिमें सदा लीन रहते हैं। सुकुमाल मुनिकी इस वीर मृत्युके उपलक्षमें स्वर्गके देवोंने आकर उनका जय जयकार मनाया। इसी दिनसे उज्जैनमें महाकाल नामक कुतीर्थकी स्थापना हुई जिसके नामसे अगणित जीव रोज वहां मारे जाते हैं। देवोंने जो सुगन्धित जलकी वर्षा की थी, उससे वहां की नदी गन्धवती नामसे प्रसिद्ध हुई।

जिसने दिन रात विषय-भोगोंमें ही अपनी सारी जिन्दगी बिताई, जिसने कभी दुःखका नाम भी न सुना, वही महापुरुष सुकुमाल मुनिराज द्वारा अपनी तीन दिनकी आयु सुनकर उसी समय सांसारिक ममताको छोड़ जिन दीक्षा ले बनमें चले गये। वहां भी पशुओं द्वारा दुःसह कष्ट सहकर जिसने धैर्य और शान्ति के साथ मृत्युको अपनाया, वे सुकुमाल मुनि मुझे कर्त्तव्यके लिये कष्ट सहनेकी शक्ति प्रदान करें।

# ५८ सुकोशल मुनि की कथा ।
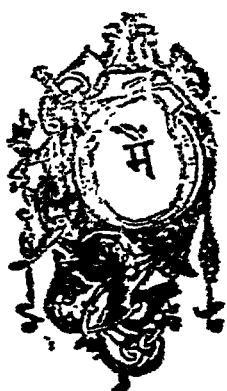
मैं गत पवित्र जिन भगवान, जिनवानी और गुरुओंको नमस्कार कर सुकोशल मुनिकी कथा लिखी जाती है।

अयोध्यामें प्रजापाल राजाके समयमें सिद्धार्थ नामक एक सेठ था, जिसके बत्तीस सुन्दर स्त्रियां थीं। खोटे भाग्यसे इनमें किसीके कोई सन्तान न थी। स्त्री कितनी भी सुन्दरी और गुणवती हो, पर विना सन्तानके उसकी शोभा नहीं होती जैसे विना फूल-फलके लताओंकी शोभा नहीं होती। इन स्त्रियोंमें सेठ महाशयकी जो अत्यन्त प्यारी स्त्री जयावती थी वह पुत्र-प्राप्तिके लिये सदा कुदेवोंकी पूजा-मानता किया करती थी एक दिन कुदेवोंकी पूजा करते देख एक मुनिराजने उससे कहा—बहन! इन कुदेवोंकी पूजा करनेसे तेरी आशा पूरी न होगी। कारण सुख-सम्पत्ति, सन्तान प्राप्ति, नीरोगता, मान मर्यादा, सद्बुद्धि आदि जितनी अच्छी बातें हैं, उन सबका कारण पुण्य है। इसलिये तू पुण्य-प्राप्तिका उपाय करो तो अच्छा हो। इन यक्षादिक कुदेवोंको पूजा छोड़ तू जिन धर्म पर विश्वास कर। इससे तू सत्पथ पर आ जायगी और फिर तेरी आशा भी पूरी होगी। जयावतीको मुनिका उपदेश रुचा और वह जिन धर्म पर श्रद्धा करने लगी। चलते समय उसे ज्ञानी मुनिने यह भी कह दिया था कि सात वर्षके भीतर तेरी कामना अवश्य पूरी होगी। तू चिन्ता

छोड़ धर्मका पालन कर। मुनिका अन्तिम वाक्य सुन जयावतीको बड़ी खुशी हुई क्योंकि उसकी वर्षोंकी भावना अब सफल होनेवाली है। मुनिका कथन सत्य हुआ। जयावतीने धर्मके प्रसादसे पुत्र-रत्नका मुंह देखा। उसका नाम सुकोशल रखा गया। सुकोशल खूबसूरत और तेजस्वी था।

सिद्धार्थ सेठ विषय-भोगोंको भोगते भोगेते कंटाल गये थे। हृदयकी ज्ञानमयी आंखोंने उन्हें संसारका सच्चा स्वरूप बतला कर डरा दिया था। वे संसारमें अब एक मिनट भी नहीं रहना चाहते थे पर अपनी सम्पत्तिको सम्हालनेवाला कोई न होनेसे पुत्र दर्शन तक उन्हें लाचार हो घरमें रहना पड़ा। पुत्रका मुखचन्द्र देख, उसे अपने सेठ-पदका तिलक कर उन्होंने नयन्धर मुनिराज के पास दीक्षा ले ली।

पुत्रका जन्म होते ही सिद्धार्थ सेठ घर-बार छोड़ योगी हो गये। उनकी इस कठोरता पर जयावतीको बड़ा क्रोध आया, उसे नयन्धर मुनिपर भी गुस्सा आया, क्योंकि इस समय सिद्धार्थको दीक्षा देना उन्हें उचित न था। इसी कारण मुनि मात्रपर उसकी अश्रद्धा हो गयी और उसने अपने घरमें मुनियोंका आना-जाना तक बन्द करा दिया। बड़े दुःखकी बात है कि जीव मोहके वश धर्मको उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे जन्मका अन्धा हाथमें आये चिन्तामणिको खो बैठता है।

वयः प्राप्त होने पर सुकोशलका व्याह अच्छे कुलकी बत्तीस कन्या-रत्नोंसे हुआ। सुकोशलके दिन एशो-आरामसे कटने लगे। सैंकड़ो दास-दासियां उसको आंखोंके इशारे मात्रसे उसकी आव-

श्यकताएं पूरी किया करती थीं। सुकोशलको कभी किसी बातकी चिन्ता न करनी पड़ती थी। जिनके पुण्यका उदय होता है उन्हें सब सुख-सम्पत्ति सहजमें प्राप्त हो जाती है।

एक दिन सुकोशल, अपनी मा, स्त्री और दासियोंके साथ महलके ऊपरसे अयोध्याकी शोभा देख रहा था। वहांसे उसने एक मुनिराजको आते देखा जो उसके पिता सिद्धार्थ ही थे। ये कई नगरों और गांवोंमें विहार करते हुए आरहे थे। इनके वदनपर कोई वस्त्र न देख सुकोशल बड़ा चकित हुआ। इसके पहले उसने कभी मुनिको नहीं देखा था। उनका अजब वेष देखकर सुकोशलने मा से पूछा—मा! यह कौन है? सिद्धार्थको देखते ही जयावतीकी आंखों से खून बरस गया। वह कुछ घृणा और उपेक्षाको लिये बोली—बेटा! होगा कोई भिखारी, तुझे इससे क्या मतलब। इस उत्तर से सुकोशलको सन्तोष नहीं हुआ। उसने फिर पूछा—मा! यह तो बड़ा सुन्दर और तेजस्वी देख पड़ता है, तुम इसे भिखारी कैसे बताती हो? जयावतीको अपने स्वामी पर ऐसी घृणा करते देख सुकोशलकी धाय सुनन्दासे न रहा गया। वह बोल उठी—अरी तू नहीं जानती कि ये हमारे मालिक हैं। फिर इनके सम्बन्धमें ऐसा उलटा सुझाना तुझे योग्य नहीं है। ये मुनि हो गये तो क्या, तुझे इनकी निन्दा करनी चाहिये? इसकी बात पूरी न भी हो पायी थी कि सुकोशलकी माने उसे चुप कर दिया और बोली—तुझे कौन पूछता है जो बीचमें टपक पड़ी। दुष्ट स्त्रियोंके मनमें धर्म प्रेम कभी नहीं होता जैसे जलती हुई आगके बीचका भाग ठण्डा नहीं होता।

सुकोशल ठीक तो न समझ सका, पर उसे इतना ज्ञान हो गया कि माने मुझे सच्ची बात नहीं बतलाई। इतनेमें रसोइयेने सुकोशलको भोजन करनेके लिये बुलाया। माता और स्त्रीके बहुत आग्रह करने पर भी सुकोशलने भोजन करनेसे तब तकके लिये इनकार कर दिया जब तक उसे उस महापुरुषका सच्चा हाल न बताया जाय। जयावतीको सुकोशलके इस हठसे क्रोध आ गया और वह वहांसे उठकर चली गयीं। फिर सुनन्दाने सिद्धार्थ मुनिकी सब बातें सुकोशलसे कह दीं। सुनकर सुकोशलको दुःख तो हुआ ही, साथ ही वैराग्यने उसे सावधान कर दिया। वह उसी समय सिद्धार्थ मुनिराजके पास गया और उन्हें नमस्कार कर उसने धर्मका स्वरूप जाननेकी इच्छा प्रगट की। सिद्धार्थने उसे मुनि धर्म और गृहस्थ धर्म अच्छी तरह समझाया। सुकोशलको मुनि धम पसन्द पड़ा। घर आकर वह सुभद्राकी गर्भस्थ सन्तानको अपने सेठ पदका तिलक कर सांसारिक माया-ममता छोड़ सिद्धार्थ मुनिसे दीक्षित हो, मुनि हो गया। जिसे धर्म पर सच्चा प्रेम और आत्म-हितका ध्यान है उस महापुरुषको सच्ची-झूठी सुझाकर कौन कैदमें रख सकता है?

एकमात्र पुत्रके योगी बन जानेसे जयावतीके हृदयपर गहरी चोट लगी और वह दुःखसे पगली सी हो गयी। खाना-पीना उसके लिये जहर हो गया। चिन्ताके मारे उसकी आंखें सदा आंसुओंसे भरी रहतीं। मरते दमतक वह पुत्र-शोक न भूल सकी। इसी चिन्ता, दुःख और आर्तध्यानसे उसके प्राण निकल गये। बुरे भावोंसे मरकर मगध देशके मौद्गिल नामक पर्वतपर उसने

व्याघ्रीका जन्म लिया। इसके तीन बच्चे हुए। अपने बच्चोंके साथ यह पर्वतपर ही रहती थी। जिनेन्द्र भगवानके पवित्र धर्मको छोड़नेसे ऐसी ही दुर्गति होती है।

विहार करते हुए सिद्धार्थ और सुकोशल मुनिने भाग्यवश इसी पर्वतपर आकर योग धारण कर लिया। योग पूरा होनेके बाद भिक्षाके लिए शहरमें जानेको ये पर्वतपरसे नीचे उतर रहे थे कि वह व्याघ्री, जो पूर्व जन्ममें सिद्धार्थकी स्त्री और सुकोशलकी मां थी। इन्हें खानेको दौड़ी। जबतक ये सन्यास लेकर बैठते हैं, उसने इन्हें खा लिया। ये पिता-पुत्र समाधिसे शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धिमें जाकर देव हुए। वहांसे आकर अब वे निर्वाण लाभ करेंगे। ये दोनों मुनिराज आप भव्य जनोंको और मुझे शान्ति प्रदान करें।

सुकोशलको खाते खाते व्याघ्रीको दृष्टि उसके हाथोंके लांछनों (चिन्हों) पर जा पड़ी, जिसे देखते ही उसे पूर्व जन्मका ज्ञान हो गया। जिस पुत्रको वह बेहद प्यार करती थी उसे ही खा रही है। यह ज्ञान होते ही उसे जो दुःख और आत्म-ग्लानि हुई वह लेखनी की शक्तिके बाहर है। फिर वह नाना प्रकारसे अपनेको धिक्कारने लगी। उस सांसारिक मोहको भी धिक्कार है जिसके वश ही जीव हित-अहितको भूल कुमार्गमें फंसकर दुर्गतियोंके दुःखको भोगता है। इस प्रकार अपने किये कर्मोंके लिये पश्चात्ताप कर उस व्याघ्री ने सन्यास ग्रहण कर लिया और अन्तमें शुद्ध भावोंसे मर कर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुई। जीवोंकी शक्ति और जैन धर्मका प्रभाव अद्भुत है। कहां तो पापिनी व्याघ्री और कहां उसे स्वर्गकी

प्राप्ति। इसलिये आत्म सिद्धिके चाहनेवाले भव्यजनोंको स्वर्ग-मोक्ष के देनेवाले पवित्र जैन धर्मका पालन करना चाहिये।

श्री मूलसंघ रूपी अत्यन्त ऊंचे उदयाचलसे उदय होनेवाले मेरे गुरु श्री मल्लि भूषण रूपी सूर्य संसारमें सदा प्रकाश करते रहें।

वे प्रभाचन्द्राचार्य विजय लाभ करें, जो ज्ञानके समुद्र हैं। समुद्रमें रत्न होते हैं, आचार्य महाराजने सम्यग्दर्शन रूपी श्रेष्ठ रत्नको धारण किया है। समुद्रमें तरंगें होती हैं, ये भी सप्तभङ्ग रूपी तरङ्गोंसे युक्त हैं—स्याद्वाद विद्याके बड़े ही विद्वान हैं। समुद्र की तरंगें जैसे कूड़ा-करकट निकाल बाहर फेंक देती हैं, उसी तरह ये अपनी सप्तभंग वाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्व रूपी कूड़े-करकट को हटा दूर करते हैं। अन्य मतोंके विद्वानोंको शास्त्रार्थमें परा-जित कर ये विजय लाभ करते हैं। समुद्रमें मगरमच्छ, घड़ियाल आदि अनेक भयानक जीव होते हैं पर प्रभाचन्द्र रूपी सागरकी यह विशेषता है कि इसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि मगरमच्छ नहीं हैं। समुद्रमें अमृत रहता है और इनमें जिनेन्द्र भगवानका वचन रूपी अमृत समाया हुआ है। समुद्रमें अनेक बिकने योग्य वस्तुएं रहती हैं, ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होनेवाली पुण्य रूपी विक्रेय-वस्तुको धारण किये हुए हैं।

# ५६ गजकुमार मुनिकी कथा

अपने गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध हुए और जिन्होंने कर्म करके सिद्धि लाभ की, उन जिन भगवान को नमस्कार कर गजकुमार मुनिकी कथा लिखी जाती है।

नेमिनाथ भगवानके जन्मसे पवित्र हुई प्रसिद्ध द्वारकाके अर्ध-चक्री वासुदेवकी रानी गन्धर्व सेनासे गजकुमारका जन्म हुआ था। राजकुमार बड़ा वीर था, जिसके प्रतापको सुनकर शत्रुओंकी छाती फटने लगती थी।

पोदनपुरके राजा अपराजितने तब बड़ा सिर उठा रखा था। उसे काबूमें लानेके वासुदेवके सब यत्न निष्फल हुए। तब इन्होंने शहरमें ढौंड़ी पिटवाई कि जो मेरे शत्रु अपराजितको पकड़, मेरे सामने उपस्थित करेगा उसे उसका मनचाहा वर मिलेगा। गज-कुमार ढौंड़ी सुन पिताके पास गया और हाथ जोड़कर उसने स्वयं अपराजितपर चढ़ाई करनेकी प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना मंजूर हुई और वह सेना लेकर अपराजित पर जा चढ़ा। दोनों ओरसे घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें विजय लक्ष्मीने गजकुमारका साथ दिया। अपराजितको लाकर उसने पिताके सामने उपस्थित कर दिया। गजकुमारकी वीरता देख वासुदेव बहुत खुश हुए। उन्होंने इच्छानुसार वर देकर उसे सन्तुष्ट किया।

ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जो मनचाहा वर पाकर सदाचारी और सन्तोषी बने रहें। गजकुमारकी भी यही दशा हुई। मनचाहा वर पिताजीसे लाभकर उसने अन्यायकी ओर कदम बढ़ाया। वह पापी जबरदस्ती भले घरोंकी सती स्त्रियोंकी इज्जत लेने लगा। वह ठहरा राजकुमार, उसे कौन रोक सकता था ? जो रोकनेकी कुछ हिम्मत करता, उसे गजकुमार जड़ मूलसे उखाड़ फेंकनेका यत्न करता। उस दुराचारको धिक्कार है जिसके वश मूर्ख-जनोंको लज्जा और भयतक नहीं होता।

इसी तरह गजकुमारने अनेक अच्छी अच्छी कुलीन स्त्रियोंकी इज्जत ले डाली। इसके दबदबेसे किसीने चूं तक न किया। एक दिन पांसुल सेठकी सुरति नामकी स्त्रीपर इसकी नजर पड़ी, इसने उसे खराब भी कर दिया। यह देख पांसुलका हृदय क्रोधाग्निसे जलने लगा पर वह बेचारा कुछ कर नहीं सकता था। इसलिये उसे भी चुपचाप घरमें बैठना पड़ा।

एक दिन भगवान नेमिनाथ भव्य जनोंके पुण्योदयसे द्वारकामें आये। बलभद्र, वासुदेव तथा और भी बहुतसे लोग भगवानकी पूजा करने गये। पूर्ण भक्तिभावसे उन्होंने भगवानकी पूजा-स्तुति की। इसके बाद उन्होंने गृहस्थ और मुनि धर्मके सम्बन्धमें भगवान का उपदेश सुना जो अनेक सुखोंका देनेवाला है। सभी उपदेश सुनकर प्रसन्न हुए। सर्वज्ञ भगवानका धर्मोपदेश सुन किसे आनन्द न होगा।

भगवानके उपदेशका गजकुमारके हृदयपर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। वह अपने किये पापकर्मोंपर पछताया। संसारसे उसे बड़ी घृणा

हुई। उसी समय भगवानसे दीक्षा लेकर वह मुनि हो गया। दीक्षा लेकर गजकुमार अनेक देशोंमें विहार करते और भव्य-जनोंको धर्मोपदेश द्वारा शान्ति लाभ कराते गिरनार पर्वतके जंगलमें आये। उन्हें अपनी आयु बहुत थोड़ी जान पड़ी, इसलिये प्रायोपगमन सन्यास लेकर वे आत्म-चिन्तन करने लगे। उस समय उनकी ध्यान-मुद्रा बड़ी निश्चल और देखने योग्य थी।

इनके सन्यासका हाल पांसुल सेठको जान पड़ा, जिसकी स्त्रीको गजकुमारने खराब किया था। सेठको बदला चुकानेका अच्छा मौका हाथ लगा। वह क्रोधसे भर्राता हुआ गजकुमार मुनिके पास पहुंचा और उनके सब सन्धि स्थानोंमें लोहेकी कीलें ठोंक कर चलता बना। गजकुमार मुनि जैन तत्वके अच्छे अभ्यासी थे, इसलिये इस दुःसह कष्टको एक तिनकेके चुभनेके बराबर भी न समझ उन्होंने बड़ी शान्ति और धीरताके साथ शरीर छोड़ा। स्वर्गमें जाकर उन्होंने चिरकालतक स्वर्गीय सुख भोगा। महापुरुषोंका चरित्र बड़ा ही आश्चर्यप्रद होता है। कहां गजकुमार मुनिका दुःसह कष्ट और कहां सुख देनेवाली पुण्य-समाधि! इसका कारण सच्चा तत्त्वज्ञान है। इस महत्ताको प्राप्त करनेके लिये तत्त्वज्ञानका अभ्यास करना सबके लिये आवश्यक है।

सर्वनियन्ता जिनेन्द्र भगवानके उपदेशको सुनकर जो गजकुमार मुनि कुमार्ग छोड़ सुमार्गके पथिक बन सहनशील योगी हुए, वे हमें सुबुद्धि और शान्ति प्रदान करें जिससे हम भी कर्त्तव्यके लिये कष्ट सहनेमें समर्थ हो सकें।

# ६० पणिक मुनिकी कथा
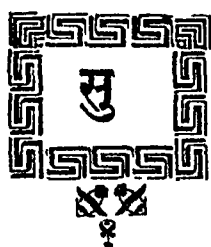
सुखके देनेवाले तथा सत्पुरुषों द्वारा पूजित जिनेंद्र भगवानको नमस्कार कर सर्व-हितकारी पणिक मुनिकी कथा लिखी जाती है।

पणीश्वर शहरके प्रजापात राजाके समय वहां सागरदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्राका नाम पणिका था। इसके एक लड़का था जिसका नाम पणिक था। पणिक पाप-रहित, सरल, शान्त और पवित्र हृदयका था। एक दिन वह भगवानके समवसरणमें गया, जहांकी शोभा सबके चित्तको आनन्दित करने-वाली थी। वहां उसने वर्द्धमान भगवानको गंधकुटीपर विराजमान देखा। भगवानकी इस समयकी शाभा अपूर्व और दर्शनीय थी। रत्न-जटित स्वर्ण सिंहासनपर वे विराज रहे थे, पूर्ण-चन्द्रको लज्जित करनेवाले तीन छत्र उनपर शोभा दे रहे थे। मुक्ताहारके समान उज्ज्वल और दिव्य चंवर उनपर ढुर रहे थे। नाना प्रकार की शङ्काओंको मिटानेवाली दिव्य ध्वनि द्वारा वे उपदेश कर रहे थे। देवोंके बजाये दुंदुभी बाजोंसे आकाश और पृथ्वीमण्डल गूंज रहा था। इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि आ-आकर उनकी पूजा करते थे, चौंतीस प्रकारके अतिषयोंसे वे सुशोभित थे, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य—ऐसे चार अनन्त चतुष्टयको वे धारण किये हुए थे और उनके लिये मुक्ति रमणी वरमाला हाथमें लिये उत्सुक हो रही थी।

पणिकने भगवानका ऐसा दिव्य स्वरूप देख उन्हें अपना

सिर नवाया। स्तुति-पूजा और प्रदक्षिणा करनेके बाद वह बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगा। अन्तमें अपनी आयुके सम्बन्धमें उसने भगवानसे प्रश्न किया। भगवानके उत्तरसे उसे अपनी आयु बहुत थोड़ी जान पड़ी। ऐसी दशामें आत्म-हितके लिये पणिक वहीं दीक्षा ले साधु हो गया। यहांसे विहार कर अनेक देशों और नगरोंमें धर्मोपदेश करते पणिक मुनि एक दिन गंगा किनारे आये। नदी पार करनेके लिये वे एक नावपर बैठे। मल्लाह नाव खेये जा रहा था कि अचानक एक प्रलयकीसी आंधीने आकर नाव डगमगा दिया। पानी भर जानेसे नाव डूबने लगी। नाव डूबने तक पणिक मुनिने अपने भावोंको खूब उन्नत किया, यहांतक कि उन्हें उसी समय केवल ज्ञान हो गया। वे घातिया कर्मोंका नाशकर मोक्ष चले गये। वे पणिक मुनि मुझे मोक्ष लक्ष्मी दें, जिन्होंने मेरुके समान स्थिर रहकर कर्म शत्रुओंका नाश किया।

---

## ६१ भद्रबाहु मुनिराजकी कथा !

संसारके कल्याण करनेवाले श्री जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार कर पंचम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु मुनिकी कथा लिखी जाती है।

पुण्ड्रवर्द्धन देशके कोटीपुर नगरके राजा पद्मरथके समय वहां सोम शर्मा पुरोहित रहता था। उसकी स्त्रीका नाम श्रीदेवी था। कथा-नायक भद्रबाहु इसीके लड़के थे। भद्रबाहु बचपनसे ही शान्त और गम्भीर प्रकृतिके थे। उनके भव्य चेहरेको देख झट

कल्पना होने लगती, कि ये आगे चलकर कोई प्रसिद्ध महापुरुष होंगे। यह कहावत बिलकुल सच्ची है कि "पूतके पग पालनेमें ही नजर आ जाते हैं।"

जब भद्रबाहु आठ वर्षके हुए और उनका यज्ञोपवीत और मौजीबन्धन हो चुका तब एक दिनकी बात है कि ये अपने साथी बालकोंके साथ गोलियोंका खेल खेल रहे थे। सभी अपने हाथकी सफाई दिखला रहे थे, किसीने दो, किसीने चार, किसीने छह और किसी किसीने आठ गोलियां तक ऊपर तले चढ़ा दीं। हमारे कथानायक भद्रबाहु इन सबसे बढ़कर निकले। इन्होंने एक साथ चौदह गोलियां तले ऊपर चढ़ा दीं। सब बालक देखकर तंग रह गये। इसी समय एक घटना हुई। वह यह कि श्री वर्द्धमान भगवानके निर्वाण लाभके बाद होनेवाले पांच श्रुतकेवलियोंमें चौदह पूर्वके जानने वाले चौथे श्रुतकेवली श्री गोवर्द्धनाचार्य गिरनारको जाते हुए इस ओर आ गये। उन्होंने भद्रबाहुके खेलकी चतुराईको देख निमित्तज्ञानसे समझ लिया कि पांचवें होने वाले श्रुतकेवली येही होंगे। नाम आदि जाननेपर उन्हें और भी दृढ़ निश्चय हो गया। वे भद्रबाहुको साथ लिये उसके घरपर गये। सोमशर्मासे उन्होंने भद्रबाहुको पढ़ानेके लिये मांगा। सोमशर्माने कुछ आनाकानी न कर लड़केको उनके सुपुर्द कर दिया। भद्रबाहुको अपने स्थानपर लाकर आचार्यने अच्छी तरह पढ़ाया और सब विषयोंमें उसे आदर्श विद्वान बना दिया। तब उन्होंने उसे वापस लौटा दिया जिससे सोमशर्मा यह न समझ ले कि मेरे लड़केको बहकाकर इन्होंने साधु बना लिया। भद्रबाहु घर गये सही, पर

उनका मन घरमें न लगता था। उन्होंने माता पितासे अपने साधु होनेकी प्रार्थना की। मां बापको उनकी इस इच्छासे बड़ा दुःख हुआ। भद्रबाहुने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और आप सब माया-मोह छोड़ गोवर्द्धनाचार्य द्वारा दीक्षा ले योगी हो गये। जिसने तत्वोंका स्वरूप समझ लिया, वह फिर गृहस्थ जंजाल अपने सिरपर क्यों उठायेगा? जिसने अमृत चख लिया वह फिर खारा जल क्यों पीयेगा? मुनि होनेके बाद भद्रबाहु अपने गुरु गोवर्द्धनाचार्यकी कृपासे चौदह पूर्वके भी विद्वान हो गये। जब संघाधीश गोवर्द्धनाचार्यका स्वर्ग वास हुआ तो उनके पट्टपर भद्रबाहु श्रुतकेवली हो बैठे। फिर भद्रबाहु आचार्य अपने संघको साथ लिए अनेक देशों और नगरोंमें अपने उपदेशामृत द्वारा लोगोंमें धर्म प्रेम बढ़ाते हुए उज्जैनकी ओर आये। सारे संघको एक पवित्र स्थानमें ठहराकर आप आहारके लिये शहरमें गये। जिस घरमें इन्होने पहले ही पांव रखा वहां एक अबोध बालक पालनेमें झूल रहा था। इन्हें घरमें पांव रखते देख वह सहसा बोल उठा "महाराज! जाइये! जाइये। एक अबोध बालकको बोलता देख भद्रबाहु बड़े चकित हुए। निमित्त ज्ञानसे बिचार करनेपर उन्हें जान पड़ा कि वहां बारह वर्षका भयानक दुर्भिक्ष पड़ेगा और वह इतना भीषण रूप धारण करेगा कि धर्म कर्मकी रक्षा तो दूर रहे, मनुष्यको अपनी जान बचाना भी कठिन हो जायगा। भद्रबाहु आचार्य उसी समय लौट आए। शामको अपने संघको इकट्ठाकर उन्होंने उससे कहा—साधुओ! यहां बारह वर्षका महाअकाल पड़नेवाला है। उस हालतमें धर्म-कर्मका निर्वाह होना कठिन ही

नहीं, असम्भव हो जायगा। इसलिए आप लोग दक्षिण दिशाकी ओर जांय। मेरी आयु बहुत थोड़ी रह गई है, इसलिए मैं इधर ही रहूंगा। यह कहकर उन्होंने दश पूर्वके जाननेवाले अपने प्रधान शिष्य श्री विशाखाचार्यको चरित्रकी रक्षाके लिए सारे संघ सहित दक्षिणकी ओर रवाना कर दिया। दक्षिणकी ओर जानेवाले मुनि उधर सुख शान्तिसे रहे। गुरुके वचनोंको माननेवाले शिष्य सदा सुखी रहते हैं।

सारे संघको चला गया देख उज्जैनके राजा चन्द्रगुप्तको उनके वियोगका बहुत दुःख हुआ। वे भी दीक्षा ले मुनि बन गये और भद्रबाहु आचार्यकी सेवा करने लगे। आयु कम रहनेके कारण आचार्यने उज्जैनमें ही एक वटवृक्षके नीचे समाधि ले ली और अन्तमें स्वर्ग लाभ किय ।

सोमशर्मा ब्राह्मण वंशके चमकते हुए रत्न, जिनधर्म रूप समुद्रके बढ़ानेको पूर्ण चन्द्रमा और योगियोंके शिरोमणि श्री भद्रबाहु पंचम श्रुतकेवली हमें वह लक्ष्मी दें जो सर्वोच्च सुखकी देनेवाली है।

# ६२ बत्तीस सेठपुत्रोंकी कथा।

क और पर लोकको प्रकाश करनेवाले श्री सर्वज्ञ भगवानको नमस्कार कर बत्तीस सेठ पुत्रोंकी कथा लिखी जाती है।

कौशाम्बीमें बत्तीस सेठ थे। उनके नाम थे इन्द्रदत्त, जिनदत्त, सागरदत्त आदि। इनके पुत्र भी बत्तीस ही थे। उनके नाम समुद्रदत्त, वसुमित्र, नागदत्त, जिनदास आदि थे। ये सभी धर्मात्मा, जिन भगवानके सच्चे भक्त, विद्वान, गुणवान और सम्यक्त्व रूपी रत्नसे भूषित थे। इन सब की परस्परमें बड़ी मित्रता थी। यह इनके पुण्यका उदय कहना चाहिये, जो सबके सब धनवान, गुणवान और धर्मात्मा एक साथ आ मिले।

एक दिन ये सब मिलकर एक केवल ज्ञानी योगिराजकी पूजा करने गये। भक्तिसे पूजाकर इन्होंने उनसे धर्मोपदेश सुना। भगवानसे पूछनेपर मालूम हुआ कि इनकी उम्र अब थोड़ी रह गयी है। आत्महितके लिए सभीने जिन दीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर तपस्या करते हुए ये यमुना नदीके किनारे आये। यहीं इन्होंने प्रायोपगमन सन्यास ले लिया। भाग्यसे इन्हीं दिनोंमें खूब जोरकी वर्षा हुई। नदी-नाले सब भर गये। यमुना भी खूब चढ़ी। एक जोरका ऐसा प्रवाह आया कि ये सब मुनि उसमें बह गये। अन्तमें

समाधिसे शरीर छोड़ ये स्वर्ग गये। स्वर्गमें दिव्य सुखको भोगते हुए वे जिनेन्द्र भगवानकी भक्तिमें सदा लीन रहने लगे।

वे कर्मोंके जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान सदा जय लाभ करें उनका पवित्र शासन संसारमें सदा रहकर जीवोंका हित साधन करे। संसारमें जो सर्वोत्तम आदर्श है, भव-भ्रमण मिटानेवाला है, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि आत्म शत्रुओं का नाश करने वाला है, भव्य जनो! तुम भी इस उच्च आदर्शको प्राप्त करनेका प्रयत्न करो जिससे मोक्षके पात्र बन सको। जिनेन्द्र भगवान इसके लिये तुम्हे शक्ति प्रदान करें, जिससे यह मनोभावना सफल हो।

प्रद्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञान भास्करा।
कुर्वन्तु जगतः शान्ति वृषभाद्या जिनेश्वराः॥

* दूसरा भाग समाप्तः *

---

मुद्रक—
दुलीचन्द परवार,
"जिनवाणी प्रेस"
८०, लोअर चितपुर रोड,
कलकत्ता।

## जैन व्रत कथा कोष

शील कथा, दान कथा, दर्शन कथा, निशि भोजन कथा, रविव्रत कथा, सुगंधदशमी कथा, रक्षाबंधन कथा, मौनव्रत कथा, भावना संग्रह, बारहमासा संग्रह, जिनेश्वर पद संग्रह आदि इसमें सम्मिलित किये हैं, पक्की जिल्द है। न्यो० २॥) रुपया मात्र।

## जैन भारती

वर्तमानमें पं० गुणभद्रजी "कविरत्न" को हम जैन समाजके मैथलीशरण कह सकते हैं, कारण उन्होंने जैन भारतीको भारत भारतीकी तरह समाजका भूत, वर्तमान और भविष्यका वह चित्र चित्रित किया है जिसे पढ़कर तमाम पत्रोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की थी, इसका प्रारंभिक चित्र श्री महावीर स्वामीका अवतार देखकर नेत्र तृप्त हो जायंगे। छपाई, सफाई पुष्ट कागज दर्शनीय है। न्यो० १।) मात्र।

## भक्तामर कथा कोष

( यंत्र मंत्र सहित )

४८ यंत्रोंसे विभूषित पुष्ट कागजपर भावपूर्ण ४८ कथाओं सहित ऋद्धि, यंत्र, मंत्र विधी आदि संस्कृत और भाषा टीका सहित यह स्तोत्र छपाया गया है। प्रतिदिन व्यवहारमें लानेके कारण जिल्द बंधा दी है, फिर भी न्यो० १।) मात्र, रेशमी जिल्द १॥) अन्य प्रकाशकोंने इसका दाम ज्यादा रखा है।

## वृन्दावन चौबीसी पाठ

काशी निवासी माननीय कविवर स्व० पं० वृन्दावनदासजीके नामसे सारा संसार परिचित है, नाना राग रागनियोंमें यह वर्तमान चौबीसी पाठ है। बड़े २ बम्बईया अक्षर तथा पुष्ट कागज होते हुए भी कव्हर पर पावापुरी, चंपापुरी, गिरनारजी, और कैलाशपर्वतका तीन रंगा चित्र तथा सजिल्द पुस्तकका मूल्य सिर्फ १) है।

---

# तृतीय भागकी कथा सूची

# आराधना-कथाकोष

## तीसरा भाग

### ६३ धर्मघोष मुनिकी कथा

सत्य एवं धर्मके सन्देश देनेवाले, समस्त संसारके विभु भगवान जिनेन्द्रके चरणोंमें नत मस्तक हो, श्री धर्मघोष मुनिकी कथा आरम्भ की जाती है

श्रीधर्मघोष मुनि एक मास तक उपवास करनेके पश्चात् चम्पापुरी नामक नगरीमें पारणा कर, तपोवनकी ओर लौट रहे थे। मार्ग भूल जानेके कारण उन्हें दूर तक हरी हरी घासपर चलना पड़ा। वे थक गये थे। उन्हें बेहद प्यास लगी थी। अतएव गंगा तट पर एक वृक्षके नीचे विश्राम करने लगे। उन्हें प्याससे व्याकुल देखकर गंगा देवी एक लोटेमें गंगाजल ले आईं। वह उनसे बोली— योगिराज मैं आपके लिये ठण्ढा जल लेकर आई हूं—आप इसे पीकर अपनी प्यास बुझाइये। मुनिने कहा—देवी तूने अपना कर्तव्यका पालन किया है। किन्तु देवों द्वारा दिया गया जल और आहार हमारे काम नहीं आता। देवीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वे उसी समय विदेह-क्षेत्रमें गयीं। वहां सर्वज्ञ भगवानको नमस्कार कर उन्होंने पूछा—भगवान एक प्यासे मुनिको मैं जल पिलाने गई

थो; किन्तु उन्होंने जल-ग्रहण करनेसे इन्कार किया है, इसका क्या कारण है ? उत्तर देते हुये भगवानने कहा—देवोंका दिया हुआ आहार-जल मुनि लोग नहीं ग्रहण करते। भगवानका उत्तर सुनकर गङ्गादेवी विस्मित हो गयीं। उन्होंने मुनिकी शान्तिके लिये सुगन्धित और ठण्डे जलकी वर्षा आरम्भ कर दी। इससे मुनिको शान्ति मिली। तत्पश्चात् मुनिने शुक्ल ध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर ज्ञान प्राप्त किया। स्वर्गके देवता उनकी पूजा करनेके लिये आए। फिर भव्य जनोंको आत्म-हितमें लगाकर अन्तमें उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

पदार्थोंकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्थितिको समझानेके लिये, केवल ज्ञान रूपी नेत्रोंके धारक तथा भव्य-जनोंके मोह रूपी विचार-अंधकारका नाश करनेके लिये सूर्यके समान श्रीधर्मघोष मुनि आपको तथा हमें सुखी करें।

# ६४ श्रीदत्त मुनिकी कथा

संसारको ज्ञान रूपी सर्वोच्च पदार्थ प्रदान करनेवाले लक्ष्मीके स्वामी भगवान जिनेन्द्रको नमस्कार कर श्रीदत्त मुनिकीकथा लिखी जाती है; जिन्होंने देवों द्वारा दिये गये कष्टोंको शान्ति पूर्वक सहे।

श्रीदत्त इलावर्द्धन पुरीके राजा जितशत्रुकी रानी इलाके पुत्र थे। इनका विवाह अयोध्याके महाराज अंशुमानकी राजकुमारी अंशुमतीसे हुआ था। अंशुमतीने एक तोता पाल रखा था। जब पति-पत्नी अपने विनोदके लिये चौपड़ आदि खेलने बैठते तो हारने-जीतनेका संकेत तोता नखसे रेखा खींचकर करता था। पर साथ

ही उसमें यह दुष्टता थी कि जब श्रीदत्त जीतता तो वह एक रेखा खींचता था, और जब उसकी मालकिन जीतती तो वह दो रेखायें खींच देता था। श्रीदत्तने तोतेकी इस चालाकीको कई बार सहन किया। किन्तु तोतेकी दुष्टता जारी रही। अन्तमें श्रीदत्तको क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने तोतेकी गर्दन मरोड़ दी। तोता उसी समय मर गया। मरनेपर वह व्यन्तर देव हुआ।

एक दिन सन्ध्या समय अपने महलपर बैठे हुये श्रीदत्त प्राकृतिक सौन्दर्य देख रहे थे कि, बादलका एक बडा भारी टुकड़ा आँखोंके सामनेसे गुजरा और देखते देखते छिन्न-भिन्न हो गया। यह दृश्य देखकर श्रीदत्तको बड़ा क्षोभ हुआ। संसारकी क्षण-भंगुरता उनके सामने नाचने लगी। उपयोगकी सभी वस्तुयें उन्हें बिजलीकी तरह नाशमान प्रतीत होने लगीं। सांप जैसे विषैले विषय-भोगोंसे उन्हें भय लगा। उन्हें ज्ञात हुआ कि जिस शरीरको हम बहुत प्यार करते हैं, वह अपवित्रताका स्थान है। वे समझ गये कि जो लोग इस नश्वर संसारसे प्रेम बढाते हैं, वे महान मूर्ख हैं। उन्हें संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने उसी समय जिन-दीक्षा ले ली।

पश्चात् श्रीदत्त मुनिने अनेक देशों और नगरोंका भ्रमण कर कितने ही भव्य-जनोंको आत्म-हित की ओर लगाया। एक बार वे घूमते हुये अपने नगरमें आ गये। जाड़ेका दिन था। श्रीदत्त मुनि नगरके बाहर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। उन्हें ध्यानमें देख उस तोतेके जीवको—जो गला मरोड़नेसे व्यन्तरदेव हुआ था, अपने शत्रुपर बडा क्रोध आया। प्रतिशोधके लिये उसने उपद्रव आरम्भ

किया। एक तो जाड़ेका दिन, उसपर उसने ठण्ढी हवा चलाई, पानी बरसाया और ओले गिराये। उसने मुनिको हर प्रकारसे कष्ट देनेकी कोशिश की। श्रीदत्त मुनिने इन आकस्मिक कष्टोंको शान्ति पूर्वक सहा। यद्यपि व्यन्तर इनका शत्रु था, फिर भी इन्होंनें उसके ऊपर जरा भी क्रोध नहीं किया। वे शत्रु मित्रको समान भावसे देखते थे। अन्तमें शुक्ल ध्यानसे केवल ज्ञान प्राप्त कर वे अविनाशी मोक्षस्थानको चले गये।

जितशत्रुके पुत्र श्रीदत्त मुनि देव—कृत कष्टोंको शान्ति पूर्वक सहन कर अन्तमें शुक्ल ध्यान द्वारा मोक्षको प्राप्त हुये। वे केवलज्ञानी भगवान अपनी भक्ति प्रदान करें जिससे हमें भी शान्ति मिले।

## ६५—वृषभसेनकी कथा।

जो समस्त संसारके पूजनीय हैं, उन जिन भगवानको प्रणाम कर वृषभसेनका चरित्र लिखते हैं।

एक दिन उज्जैनके महाराज प्रद्योत एक मत्त हाथीपर सवार होकर, हाथी पकड़नेके लिए जंगलमें गये। उन्हें लेकर हाथी ज़ोरसे भागा। उसे रोकनेके लिये उन्होंने बहुत प्रयत्न किये पर सफलता न मिली। संयोगसे हाथी एक पेड़के नीचेसे जा रहा था। ये पेड़की डाल पकड़कर लटक गये। जब हाथी आगे बढ़ गया तो ये नीचे उतरकर खेट नामके एक छोटेसे गाँवके समीप पहुंचे। प्यासके मारे व्याकुल थे। उसी समय जिनपालकी पुत्री जिनदत्ता पनघट पर पानी भरनेके लिये आई। उन्होंने उसे देखते ही पानी पिलानेको कहा। जिनदत्ताने इन्हें जल दिया और घर जाकर इन-

का हाल अपने पितासे कहा। पुत्रीकी बात सुनकर जिनपात इनके पास गया और परिचय प्राप्त कर अपने घर लिवा लाया। आदर पूर्वक जिनपातने स्नान भोजन कराया और ऐसे पवित्र अतिथि द्वारा घर पवित्र होनेसे अपनेको धन्य समझा। प्रद्योत भी इसके सत्कारसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे कुछ दिनोंतक वहां रहे। इतनेमें उज्जैनसे. प्रद्योतको बुलावा आ गया। प्रद्योतको जिनदत्तासे प्रेम हो गया था। जिनपातकी सम्मति लेकर इन्होंने उसके साथ व्याह भी कर लिया। प्रद्योत पत्नीको लेकर सुखके साथ उज्जैन आ गये। जिनदत्ता पटरानी बनी। समयपर किया गया थोड़ासा उपकार भी सुखदायक होता है। जिनदत्ताके उपकारने उसे राजरानी बनाया। प्रतिदिन नये नये आनन्दमें इनके दिन कट रहे थे।

कुछ दिनोंके बाद, इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रके उत्पन्न होनेके दिन जब राजा सोये हुए थे तो स्वप्नमें एक बैल देखा था। इसलिये इन्होंने अपने पुत्रका नाम वृषभसेन रखा। पुत्र उत्पन्न हो जानेके बाद इनकी प्रवृत्ति धर्मकी ओर बढ़ी। ये प्रतिदिन पूजा-प्रभावना अभिषेक दान आदि पवित्र कार्योंको भक्ति पूर्वक करने लगे। इस प्रकार सुखसे दिन बीतने लगे। जब वृषभसेन समझदार हुआ तो एक दिन राजाने कहा—बेटा, अब तुम इस राजका भार वहन करो मैं जिन भगवानके पवित्र तपमें लगूंगा। वृषभसेनने कहा—पिताजी क्या राज्य करते हुये मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती। राजाने कहा—बेटा, जिसे सप्त सिद्धि या वस्तुतः मोक्ष कहते हैं, वह बिना तपके सम्भव नहीं। जिन भगवानने मोक्षका साधन एक मात्र तपको बताया है। इसलिए आत्महित करने वालों

को उसे ग्रहण करना चाहिये। बृषभसेनने कहा—पिताजी, यदि यह बात है तो मैं इस दुःखका कारण राज्यको लेकर क्या करूंगा। कृपाकर आप यह भार मुझपर न दीजिये। राजाने बृषभसेनको बहुत समझाया, पर उसके ध्यानमें तपके अतिरिक्त दूसरी बात न आई। अन्तमें निरुपाय होकर अपने भतीजेको राज्यका भार देकर राजाने अपने पुत्र वृषभसेनके साथ जिन दीक्षा ले ली।

मुनि बृषभसेन घूमते हुए, देश विदेशोंमें धर्मोपदेश करने लगे। वे एक दिन कौशाम्बिकीमें आकर एक छोटीसी पहाड़ीपर ठहरे। गर्मीके दिन थे। धूप तेजीसे पड़ रही थी। मुनिराज इस कड़ी धूपमें पर्वत शिखरपर बैठकर योग साधना करते थे। अद्वितीय तपस्या और आत्मतेजसे उनका शरीर दैदीप्यमान हो उठा। उनके शारीरिक सौन्दर्यको देख कर लोगोंको अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई।

चरित्र चूणामणि श्री बृषभसेन मुनि एक दिन भिक्षा करनेके उद्देश्यसे शहरमें गये। पीछे किसी जैनधर्म विरोधी, बुद्धदास नामक एक बुद्धधर्मीने मुनिराजके ध्यान करने वाली शिलाको तपा कर लाल कर दिया। साधु महात्माओंका प्रभाव दुष्टोंको सहन नहीं होता, जैसे सूर्यका तेज उल्लू नहीं सह सकता। मुनिराज जब भिक्षा कर लौटे तो उन्होंने शिलाको आगसी तपती हुई पायी। यदि इस भौतिक शरीरका उन्हें मोह होता तो वे अपनी रक्षा कर सकते थे। किन्तु वे कर्तव्य परायण थे। अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करना उनका सर्वोच्च कार्य था। अतएव वे सन्यासकी शरण ले उस धधकती हुई शिलापर बैठ गये। उस समय उनके परिणाम इतने उच्च थे कि शिलापर पैर रखते ही उन्हें केवल ज्ञान

हो गया। मृत्युके पश्चात उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

जिनके चित्तरूपी पहाड़की तुलनामें हिमालय सरीखे पहाड़ परमाणुकी तरह दीखते हैं, वे गुणोंके सागर और कर्मोंके विनाशक वृषभसेन मुनि मुझे अपने गुण प्रदान करें, जो मनचाही सिद्धियोंको प्रदान करने वाले हैं।

# ६६ कार्तिकेय मुनिकी कथा।

संसारका जिन्हें वाह्य एवं आभ्यान्तरिक ज्ञान है। केवल ज्ञान जिनका सर्वोत्तम नेत्र है, जिससे वे सूक्ष्मसे सूक्ष्म वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। जो पवित्रताकी अन्यतम मूर्ति है, जो संसारको सुख प्रदान करते हैं, उन जिन भगवानको नमस्कार कर कार्तिकेय मुनिकी कथा आरम्भ की जाती है।

कार्तिकपुरके राजाका नाम अग्निदत्त था। उसकी स्त्री वीरवतीके कृतिका नामकी लड़की थी। एक बार उसने अठाईके दिनों में आठ दिनका व्रत धारण किया। अन्तिम दिन वह भगवानकी पूजामें लगी रही। पूजा जब समाप्त हो गयी तो उसने फूलकी माला लाकर अपने पिताको दिया। उसकी अनुपम सुन्दरता देखकर अग्निदत्त कामातुर हो गया। उस समय उसने कुछ अन्यधर्मी और कुछ जैन साधुओंको बुला कर पूछा कि मेरे घरमें उत्पन्न हुए रत्नका उपयोग मैं कर सकता हूं या अन्य कोई। सब लोगोंने एक स्वरमें कहा राजन! उस रत्नके मालिक तो आप ही हो सकते हैं। जैन साधुओंने विचार कर कहा कि, अपने घर उत्पन्न हुए रत्नके आप मालिक अवश्य हो सकते हैं, पर कन्या रत्नके

मालिक आप नहीं हो सकते। राजा तो कामी था ही। उसने क्रोधित हो जैन मुनियोंको देशसे बाहर निकाल दिया। पश्चात् उसने अपनी लड़कीसे स्वयं ब्याह कर लिया। सत्य है कामान्ध मनुष्योंमें धर्म, बुद्धि, नीति, सदाचारको स्थान कहां ?

कुछ वर्ष बीतनेपर कृत्तिकाके गर्भसे एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न हुई। लड़केका नाम कार्तिकेय रखा गया और लड़कीका वीरमती। वीरमती अत्यन्त सुन्दरी थी। उसका विवाह राजा क्रौंचके साथ हुआ। वे रोहड़ नगरके अधिपति थे। वीरमती वहां जाकर सुख पूर्वक रहने लगी।

कार्तिकेय बड़ा हो गया। उसकी आयु चौदह वर्षकी हो गयी थी। एक दिन वह अपने साथी अन्य राजकुमारोंके साथ शिकार खेल रहा था। वे कुमार अपने ननिहालसे आये हुए वस्त्र-आभूषण पहिने थे। कार्तिकेयने उनसे पूछा तो मालूम हुआ कि ये वस्त्राभरण उनके नाना के यहांसे आये हैं। कार्तिकेयको ग्लानि हुई। उसने जाकर अपनी मांसे पूछा कि, मेरे साथी राजकुमारोंके लिये तो उनके नाना, मामा अच्छे अच्छे कपड़े और आभूषण भेजते हैं, फिर मेरे नाना, मामा मेरे लिये क्यों नहीं भेजते ? अपने प्रिय पुत्रकी ऐसी बातें सुनकर कृतिकाका हृदय द्रवित हो गया। उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा वह चली। वह उस कोमल मति बालकको क्या कह कर सन्तुष्ट करे। उसकी समझमें नहीं आया। अतएव बाध्य होकर उसे सच्ची घटना ही बता देनी पड़ी। उसने रोते हुए कहा—बेटा ! इस घोर पापकी बात मैं तुमसे क्या कहूं ? कहते हुए हृदय टूक टूक हो जाता है। एक असम्भव घटना तेरे जन्मके सम्बन्धमें है। वह यह कि

जो मेरा पिता है, वही तेरा भी पिता है। मेरे पिताने कामातुर हो बलात् मेरे साथ ब्याह किया। उसने मेरे पवित्र जीवनपर कलंककी कालिख लगा दी। उसीका तू फल है। मांकी ऐसी बातें सुनकर कार्तिकेय सन्न हो गया। उसे काटो तो खून नहीं। लज्जा और ग्लानिसे उसका कोमल हृदय तिलमिला उठा। किन्तु यह तो बीती हुई बात थी, इसके लिये वह कर ही क्या सकता था? फिर उसने अपनी मांसे पूछा—मा क्या, ऐसा अनर्थ करते हुए मेरे पिताको किसीने रोका नहीं; क्या सब लोगोंकी आंखें बन्द थीं। माँने कहा—बेटा रोका क्यों नहीं, जैन मुनियोंने मना किया! पर उनकी बातोंकी सुनवाई नहीं हुई, और वे उलटे देशसे ही निकाल दिये गये।

कार्तिकेयने फिर पूछा,—मां वे गुणवान महामुनि कैसे होते हैं? कृतिका बोली—वे शान्त चित्त होते हैं। किसीसे लड़ाई झगड़ा नहीं करते और गालियां देनेपर भी उन्हें क्रोध नहीं होता। बेटा! वे महान पण्डित होते हैं। उनके पास धन-सम्पत्ति तो क्या एक कौड़ी भी नहीं रहती। वे वस्त्र तक नहीं पहनते। चाहे सर्दी हो या गर्मी; जाड़ा हो या बरसात, वे सदा एकसा रहते हैं। उनका वस्त्र केवल आकाश है। उनमें बड़ी दया होती है। वे स्वप्नमें भी किसी जीवको नहीं सताते। इसी दयाकी पूर्तिके लिये वे हमेशा अपने पास कोमल पाखोंकी एक पींछी रखते हैं, जिससे अपने बैठनेके पूर्व उस जमीनको झाड़ लेते हैं। उनके हाथमें एक लकड़ीका कमण्डल रहता है, जिसमें शौचादिके लिये प्रासुक जीव रहित जल रखते हैं। यद्यपि वे भिक्षाके लिये श्रावकोंके यहां अवश्य जाते

हैं पर माँगते नहीं। यदि किसीने आहार नहीं कराया तो वे तपोवन में लौट आते हैं। कभी-कभी वे १५-१५ दिनका लम्बा उपवासकर डालते हैं। बेटा! मैं उनके आचार और विचार सम्बन्धी बातें कहांतक कहूं, तू समझ ले कि संसारके समग्र साधुओंमें केवल वे ही सच्चे साधु हैं।

अपनी माता द्वारा जैन साधुओंकी प्रशंसा सुनकर कार्तिकेयको उनपर अपार श्रद्धा हुई। अपने पिताके दुष्कृत्यसे तो उसे पहले ही वैराग्य हुआ था। उसपर माताके उपदेशसे वह और भी अटल हो गया। समस्त मोह-ममताका परित्याग कर उसी समय वह घरसे निकल गया और मुनियोंके स्थान तपोवनमें जा पहुंचा। मुनियोंका संघ देखकर उसे प्रसन्नता हुई। प्रणाम कर उसने दीक्षाकी प्रार्थना की। संघके स्वामी आचार्यने उसे दीक्षा देकर मुनि बना लिया। थोड़े दिनोंके बाद ही कार्त्तिकेय मुनि विद्याभ्यास कर बड़े विद्वान हो गये।

यद्यपि कार्तिकेयकी माताने जैन मुनियोंकी प्रशंसा की, पर उसे यह पता नहीं था कि उसके पुत्रपर उसका गहरा असर पड़ेगा और वह भी दीक्षा ग्रहण कर लेगा। जब उसे यह मालूम हुआ कि कार्तिकेय योगी हो गया, तब उसे महान दुःख हुआ। वह कार्तिकेयके समीप जाकर रोई, गिड़गिड़ाई। पर उसे अपने निश्चयसे न डिगा सकी। पुत्रके वियोगसे कृतिकाका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और अन्तमें पुत्र शोकसे ही उसका शरीरान्त हो गया। वह पुत्रके आर्त्त-ध्यानसे मरकर व्यन्तर देवी हुई।

एक बार कार्तिकेय मुनि घूमते घूमते रोहेड़ नगरकी ओर आ

गये। यहां इनकी बहन ब्याही गई थी। जेठका महीना था। गर्मी जोरोंसे पड़ रही थी। अमावसके दिन कार्तिकेय मुनि भिक्षा करनेके उद्देश्यसे नगरमें गये। राजमहलके नीचेसे जा रहे थे कि महलमें बैठी हुई इनकी बहन वीरमतीकी नजर इनपर पड़ी। वह दौड़ी हुई भाईके पास आई और प्रेममें आकर उनके पैरों पर गिर पड़ी। क्रौंच राजाने जब यह देखा कि रानी एक नंगे भिखारीके पांव पड़ रही है, तो वह बड़ा ही क्रोधित हुआ। उसने आकर मुनिपर प्रहार करना आरम्भ कर दिया। मुनि मूर्छित होकर जमीनपर गिर पड़े। पापी मिथ्यावादी और जैनधर्मके विद्वेषी कौनसा नीच कर्म नहीं करते ?

कार्तिकेयको इस मूर्छित अवस्थामें देखकर उनकी पूर्वकी मां-जो इस जन्ममें व्यन्तर देवी हुई है. एक मोरनीका रूप धारण कर उनके पास आई। उसने कार्तिकेय मुनिको बड़े यत्नसे उठाकर शीतलनाथ भगवानके मन्दिरमें लाकर रख दिया। मुनिकी अवस्था खराब हो चुकी थी। सचेत होनेपर उन्होंने समाधि ले ली। जब वे शरीर छोड़कर स्वर्ग धाममें सिधारे तो देवोंने आकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। उसी दिनसे उस स्थानका नाम कार्तिकेय तीर्थ पड़ा। वे वीरमतीके भाई थे, अतएव "भैया दोज" नामसे दूसरा पर्व प्रचलित हुआ।

आप लोग भी जिन भगवानके आदेशके अनुसार ज्ञानका अभ्यास करें, जो समस्त संदेहको समूल नष्ट करनेवाला है और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवालाहै। देवताओं द्वार पूजित जिनेन्द्र भगवान हमें अविनश्वर सुख प्रदान कर अपना सा बनावें, यही हमारी प्रार्थना है।

# ६७ अभयघोष मुनिकी कथा

अपने विमल प्रकाश द्वारा सारे संसारका अन्धकार दूर करने वाले और देवों द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवानको प्रणाम कर हम अभयघोष मुनिके चरित्र लिखनेमें प्रवृत्त होते हैं।

काकन्दी एक प्रसिद्ध राज्य था। वहांके राजाका नाम अभयघोष था। उनकी रानी अभयमती थी, जिन्हें राजा अधिक प्यार करते थे।

एक बार अभय घोष घूमनेके लिये निकले। चलते चलते वे दूर जंगलमें चले गये। वहां एक मल्लाह जीवित कछुयेके हाथ पैर बांधकर उसे एक लकड़ीमें लटकाये लिये जा रहा था। अभयघोषने देखते ही उसपर अपनी तलवार चला दी। निर्दोष कछुआ उसी समय तड़फड़ा कर मर गया। मृत्युके पश्चात वही कछुआ अकाम निर्जराके फलसे अभय घोषके यहां पुत्रके रूपमें जन्म लिया, जिसका नाम चण्डवेग रखा गया।

एक दिन चन्द्रग्रहण देखकर राजाको महान खेद हुआ। उन्होंने सोचा कि, जब एक महान तेजस्वी ग्रहकी यह अवस्था है कि, उसे दूसरोंसे हार खानी पड़ती है तो मनुष्योंकी गणना ही क्या है? मनुष्यके सर पर तो सदा काल नाचा करता है। मैं महान मूर्ख हूं कि आज तक विषय वासनाओंमें ही लिप्त रहा और कभी सन्मार्गकी ओर जानेकी चेष्टा न की। मोहान्धकारमें मेरे नेत्र बन्द हो गये थे, जिससे मैं अपने कल्याण रूपी मार्गको प्रशस्त न कर सका। इसी पापमें लिप्त रहनेके कारण मैंने जैनधर्मके

विपरीत कार्य किये हैं। शोक, अब मैं इस संसार सागरको किस प्रकार पार कर सकूंगा ? भगवन्, मुझे शक्ति दीजिये जिससे मैं आत्म-सुखका सत्य अनुभव कर सकूं। इसके पश्चात उन्होंने निश्चित किया कि जिस प्रकार मैंने संसारके विषयोंका उपभोग किया है, उसी प्रकार कठोर तपस्या कर आत्म-शत्रु कर्मोंको विनाश कर प्रायश्चित कर लूं। इस प्रकारके विचार उदित होते ही अभय-घोषने अपने प्रिय पुत्र चण्डको राज्यका भार सौंपकर जिन दीक्षा ले ली। पश्चात् अभयघोष मुनि जरा-मृत्युके बन्धनसे मुक्त करने-वाले अपने गुरु महराजकी आज्ञा ले देश विदेशोंमें धर्मोपदेशके लिये निकल पड़े। कई वर्षोंके वाद एक वार घूमते फिरते राजधानी काकन्दीकी ओर आ गये। एक दिन अभयघोष मुनि वीरासनसे तपस्या कर रहे थे, कि उनका पुत्र चण्डवेग इस ओर आ निकला। पाठकोंको स्मरण होगा कि चण्डवेगसे अभयघोषकी शत्रुता है; क्योंकि जब चण्ड पूर्व जन्ममें कछुआ था तो अभयघोपने उसके पैर काट डाले थे। चण्डने उन्हें तप करते देखा तो उसे पूर्व जन्मकी बात याद आ गई। उसने क्रोधित हो अभयघोष मुनिके भी हाथ पैर काट डाले। सत्य है, धर्मसे विमुख व्यक्ति कौन सा पाप नहीं कर सकता ? इतना होनेपर भी अभयघोष मुनि तपस्यामें लीन रहे। वे अपनी ध्यानावस्थासे किंचित भी विचलित न हुये। इस ध्यान बलके प्रतापसे उन्होंने केवल ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। वस्तुतः आत्म शक्ति गहन है! इस महान कष्टके समय भी उनका दिव्य आत्म-ध्यान मोक्षका कारण बना।

संसारके मनुष्यों द्वारा सेवित अभयघोष मुनि मुझे भी मोक्षका

अनुभव करायें, जिन्होंने अनेक कष्ट झेले, आत्म-शत्रु राग, द्वेष माया, मोह, क्रोध, लोभ आदिको नष्ट किया और जन्मान्तरके कर्मों को क्षय कर मोक्षका सर्वोच्च सुख प्राप्त किया।

## ६८ विद्युच्चर मुनिकी कथा।

संसारको सुख प्रदान करने वाले सर्वश्रेष्ठ जिनेंद्र भगवानके पाद पद्मोंमें नत मस्तक होकर शास्त्रोंके अनुसार विद्युच्चर मुनिकी कथा लिखनेका प्रयत्न करते हैं।

मिथिलापुरमें जिस समय राजा वामरथ शासन करते थे, उस समय कोतवालके पदपर एक यमदण्ड नामका व्यक्ति नियुक्त था। वहीं एक विद्युच्चर नामका चोर रहता था जो अपनी चौर्य्य कलामें निपुण था। उसका नियम था कि वह दिनमें एक कोढ़ीका वेष धर कर किसी सुनसान मंदिरमें रहता था। किन्तु रातको मनुष्यके वेषमें चोरी करता था। एक दिन वह राजाके देखते २ उनका हार चुरा लाया, पर राजा उसका कुछ कर न सके। दूसरे दिन राजाने कोतवालको बुलाकर कहा कि देखो कोई चोर अपनी सुन्दर वेष-भूषा से मुझे मुग्ध कर मेरा हार उठा ले गया है। तुम उसे एक सप्ताहके भीतर उस हार या चोरको मेरे समक्ष उपस्थित करो अन्यथा तुम्हें दण्ड दिया जायगा। क्योंकि मालूम होता है कि तुम अपने कर्तव्योंका यथेष्ट पालन नहीं करते, नहीं तो राज्य-प्रासादसे चोरी हो जाना आश्चर्यकी बात है। 'महाराजकी आज्ञा' ऐसा कहकर कोतवाल चोरकी खोजमें निकला। उसने सारे शहरकी सड़कों और गलियोंको ढूंढ़ डाला, पर चोरका कहीं भी पता न लगा।

इस तरह ६ दिन बीत गये। सातवें दिन कोतवाल पुनः चोरको ढुंढ़ने निकला। अकस्मात उसकी दृष्टि एक सुनसान मन्दिरपर पड़ी। वह उस मन्दिरमें घुस गया। वहां एक कोढ़ी पड़ा था। उसे देखकर कोतवालको सन्देह हुआ। कोतवालने उससे इस ढङ्गसे बातें की कि कुछ पता मिले, पर पता न चला। कोतवालका सन्देह और भी दृढ़ हो गया। वह उसे पकड़कर राजाके पास ले गया और कहा कि महाराज यही आपका चोर है। राजाने जब उस कोढ़ीसे पूछा तो वह साफ मुकर गया। उसने कहा कि मैं चोर नहीं हूं, यह व्यर्थ ही मुझे घसीट लाये हैं। राजाने कोतवालकी ओर देखा। कोतवालने पुनः दृढ़ता पूर्वक कहा—महाराज यही चोर है। कोतवालको बिना सबूतके इस प्रकार कहते हुए कुछ लोगोंको संदेह हुआ कि यह अपनी जान बचानेके लिये ऐसा कहता है। और इस गरीब भिखारीको सजा दिलाना चाहता है। उन लोगोंने राजा से प्रार्थना की कि महाराज कहीं ऐसा न हो कि बिना अपराधके ही इस भिखारीको बेमौत मरना पड़े। राजाने उनकी प्रार्थनापर ध्यान दिया या नहीं, पर कोतवाल उसे घर ले गया और मारने पीटनेमें कोई कसर न रखी। इतना कष्ट दिये जानेपर भी वह कोढ़ी बराबर यही कहता रहा कि मैं चोर नहीं हूं। दूसरे दिन फिर उसे राजाके सामने लाकर कोतवालने कहा कि यही पक्का चोर है, पर कोढ़ीने स्पष्ट कहा कि मैं हर्गिज चोर नहीं हूं। वस्तुतः चोर विकट साहसी होते हैं।

पश्चात् राजाने उससे कहा कि यदि तू सच सच कह दे तो मैं तेरा सब अपराध क्षमा कर दूं। राजासे आश्वासन पाकर

उस कोढ़ी वेषधारी विद्युच्चरने कहा—यदि ऐसी बात है तो मैं सच्ची बात बता देता हूं। इतना कहकर उसने राजासे क्षमा याचनाकी और कहा कि वास्तवमें मैं ही चोर हूं। राजाको आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि जब तू चोर था तो इतनी मार कैसे सही? विद्युच्चरने कहा—महाराज! मैंने एक मुनिसे नरकोंका हाल सुन चुका था। मैं विचार किया इन कष्टों और नरकके दुःखोंमें तो तिल और ताड़का-सा अन्तर है और जब मुझे अनन्त वार नरकके दुःखोंको सहना पड़ा है तो इन तुच्छ दुखोंको सह लेना तो साधारण सी बात है।

विद्युच्चरसे सच्ची बातें सुनकर राजा प्रसन्न हो गये और कहा कि, तुझे जो वर मांगना हो मांग! तब विद्युच्चरने कहा कि मैं इस कृपाके लिये आपका आभारी हूं। पर मुझे जो कुछ आप देना चाहते हैं, वह मेरे मित्र इन कोतवाल साहबको दीजिये। राजा और भी आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने कहा—यह तेरा मित्र कैसे? विद्युच्चरने कहा महाराज, मैं आपको साफ साफ बताता हूं। यहांसे सुदूर दक्षिण वेना नदीके तटपर एक वेनातट नामका शहर वसा हुआ है। वहांके राजा जितशत्रु और रानी जयावती मेरे माता पिता हैं। मेरा नाम विद्युच्चर है। उस शहरमें भी एक यमपाश नामके कोतवाल थे। उनकी स्त्रीका नाम यमुना था। आपके कोतवाल साहब उन्हींको सन्तान हैं। हम दोनों एक ही गुरुके यहां पढ़े हैं, इसीसे हमारी और इनकी मित्रता है। अन्तर केवल इतना ही है कि उन्होंने कोतवाली सम्बन्धका शस्त्राभ्यास किया था और मैं चौर्य शास्त्र का। यद्यपि यह विद्या मैंने विनोदके लिये पढ़ी थी

किन्तु एक दिन हम दोनों आपसमें अपनी विद्याकी प्रसंशा कर रहे थे कि मैंने अभिमान पूर्वक कहा कि अच्छा जहां तुम कोतवाली के पदपर नियुक्त होगे वहीं मैं जाकर चोरी करूंगा। तब इन्होंने कहा कि मैं भी उसी स्थानपर रहूंगा जहां तुम चोरी करोगे और मैं उस शहरकी पूर्ण रक्षा करूंगा।

पश्चात् मेरे पिता जिनशत्रुने मुझे राज्य भार देकर जिन-दीक्षा ले ली। इनके पिता भी जिन-दीक्षा ले साधु बन गये। मैं राजा हुआ और इन्हें इनके पिताकी जगह मिली। किन्तु ये मेरे डरसे वहां न रहकर आपके कोतवाल नियुक्त हुए। मैं तो प्रतिज्ञा कर चुका था, इसलिए चोर बनकर मुझे यहां आना पड़ा। इतना कह-कर विधुच्चरने हार चुरानेकी सब बातें बता दी और यमदण्डको साथ लेकर अपने शहरमें चला आया।

इस घटनासे विधुच्चरको वैराग्य हो गया। राजमहलमें पहुंचते ही उसने अपने पुत्रको बुलाकर विधिवत जिनेन्द्र भगवानकी पूजा-अभिषेक किया, पश्चात् राज्यका भार पुत्रको सौंपकर अनेक राज कुमारोंके साथ जिन-दीक्षा ले मुनि हो गया।

अनेक दिनोंतक विद्युच्चर मुनि अपने संघके साथ देश विदेश-में भ्रमण करते रहे। बहुतसे मायामें फंसे हुए व्यक्तियोंको उन्होंने आत्म हितकी ओर लगाया और स्वयं भी काम क्रोध राग द्वेषादि आत्म शत्रुओंका प्रभुत्व नष्ट कर उनपर विजय प्राप्त की।

एक दिन घूमते हुए विद्युच्चर मुनि तामलिप्त पुरीकी ओर आये। जब ये लोग पुरीमें प्रवेशकर रहे थे तो वहांकी चामुण्डा देवीने आकर उन्हें भीतर जानेसे रोका, और यह भी कहा कि

योगीराज ! जरा ठहरिये अभी मेरी पूजा विधि हो रही है। अतएव जबतक वह पूरी नहीं हो जाती तबतक आप यहीं रहें। किन्तु देवीके मना करते रहनेपर भी वे भीतर चले गये और कोटकी ओर एक पवित्र जगह देखकर वहीं संघके साथ ध्यानावस्थित हो गये। इससे देवी क्रोधित हो गयीं। उन्होंने मायासे कबूतरके समान मच्छर डांस आदि रक्त चूसनेवाले जीवोंको उत्पन्न कर महाउपद्रव आरम्भ कर दिया। किन्तु विद्युच्चर मुनिने इस कष्टको बड़ी शान्तिके साथ सहकर बारह भावनाओंके चिन्तन आत्माको वैराग्यकी ओर दृढ़ किया और इस प्रकार शुद्ध ध्यानके बलसे कर्मोंका नाशकर अक्षय अनन्त सुखको प्राप्त किया।

देवों द्वारा, बड़ी भक्तिसे पूजित केवल-ज्ञान विराजमान श्री-विद्युच्चर मुनि हमें और भव्यजनोंको मंगल मोक्ष सुख दें जिससे संसारको शान्ति मिले।

---

# ६१ चिलात पुत्रकी कथा

केवल ज्ञान रूपी प्रकाशक नेत्रवाले जिन भगवानके पाद-पद्मों-में नत मस्तक हो चिलात पुत्रका चरित्र लिखते हैं।

राजगृहके तत्कालीन अधिपति उपश्रेणिक एक बार घोड़ेपर सवार होकर बाहर निकले। उनका घोड़ा अत्यन्त चंचल था। वह, उन्हें एक भयानक जंगलमें ले गया। उस वनका रक्षक यम-दण्ड नामक एक भील था। उसकी पुत्री तिलकवती अत्यन्त रूप-वती थी उसे देखते ही उपश्रेणिक मोहित हो गये। यह देखकर

यमदण्डने राजासे कहा—महाराज! यदि आप तिलकवतीसे उत्पन्न पुत्रको युवराज बनाना स्वीकार करें तो मैं सहर्ष आपके साथ उसका विवाह कर दूंगा। राजाने यह शर्त मंजूर कर ली और तिलकवतीके साथ उनका विवाह हो गया। वे प्रसन्नता पूर्वक राजगृहको लौटे। वर्षोंतक उपश्रेणिकने तिलकवतीके साथ आनन्द मनाया। फल स्वरुप एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम चिलात पुत्र रखा गया। पूर्वका रानियोंसे भी राजाके कई पुत्र थे। यद्यपि उपश्रेणिक चिलात पुत्रको युवराज बनानेके लिये वचन वद्ध थे, फिर भो उन्हें भय था कि कहीं इसके शासनमें राज्य विध्वस्त न हो जाय। अतः वे अपनी प्रतोज्ञा भङ्ग करनेके लिये वाध्य थे। इसी विचारसे प्रेरित हो उन्होंने एक दिन ज्योतिषीको बुलाकर पूछा—पण्डितजो, यह बताइये कि मेरे इन पुत्रोंमेंसे राज्य का मालिक कौन होगा। ज्योतिषीजोने विचार कर कहा—महा-राज! इस प्रश्नका निर्णय परीक्षा द्वारा होगा। आपके समस्त पुत्र खीर खानेके लिए बिठाये जांय। उसी समय उनपर कुत्तोंका एक झुण्ड छोड़ दिया जाय। जो निर्भय होकर सिंहासनपर बैठे-बैठे नगारा बजाता जाय और भोजन भी करता जाय वही राजा होनेकी योग्यता रखता है।

दूसरी परीक्षा यह होगी कि आग लगनेपर जो छत्र चंवर सिंहासन राजकीय वस्तुओंकी रक्षा कर सके वह राजा हो सकता है।

उपश्रेणिकने ज्योतिषीके बताए हुए मार्गोंसे पुत्रोंकी परीक्षा ली। सिंहासनके समोप ही एक नगारा रखवाकर राजपुत्रोंको खीर

खानेके लिये बिठाया गया। उनपर कुत्तोंका एक बड़ा झुंड लपका। सबके सब भाग खड़े हुए केवल एक श्रेणिक शीघ्रता पूर्वक सिंहासनपर जा बैठा और नगारा बजाते हुए खीर खाने लगा। वहींसे कुत्तोंके आगे पत्तलें भी फेंकता जाता था, जिससे वे उपद्रव न करने पायें। पश्चात् दूसरी परीक्षा भी हुई। उसमें भी श्रेणिक ही उत्तीर्ण हुआ। आग लगते ही वह सिंहासन चमर और छत्रोंके साथ बाहर निकल गया। यही श्रेणिक आगे तीर्थंकर होगा।

उपश्रेणिकको विश्वास हो गया कि श्रेणिक ही राजा होनेके योग्य है। अतः उन्हें उसकी रक्षाकी चिन्ता हुई, जबतक कि श्रेणिक स्वयं अपनी भुजाओं द्वारा अपना अधिकार न प्राप्त कर ले। कारण यह था कि उपश्रेणिक पूर्व ही चिलात पुत्रको युवराज बना चुके थे। यदि यह बात चिलात पुत्रके समर्थकोंको मालूम हो जाती तो वे श्रेणिक की हत्यातक कर डालते। इसलिए राजाकी यह चिन्ता दूरदर्शिता पूर्ण थी।

अकस्मात् उन्हें एक अच्छी युक्ति सूझी। उन्होंने श्रेणिकपर यह अपराध आरोपित किया कि वह कुत्तोंका जूठा खाकर भ्रष्ट हो चुका, न तो अब वह राज्य परिवारमें ही रहने लायक है और न देशमें ही। उपश्रेणिकने उसे निर्वासन की आज्ञा दे दी। वस्तुतः पुण्यात्माओंको सभी रक्षा करते हैं।

पिताकी आज्ञा मिलते ही श्रेणिक राजगृहसे निकल गया और द्राविड़ देशकी प्रधान नगरी काञ्चीमें जा पहुंचा। वह बुद्धिमान तो था ही उसके वहां उसने ऐसी व्यवस्था कर ली, जिससे फिर सुख पूर्वक दिन कटने लगे।

उधर श्रेणिक राज्य-कार्यसे उदासीन हो गये थे। उन्हें संसार रूखा प्रतीत होने लगा। अतः उन्होंने अपनी प्रतीज्ञाके अनुसार चिलात पुत्रको राज्यका भार देकर जीवोंका कल्याणकारी मुनि-पद ग्रहण कर लिया।

यद्यपि चिलातपुत्र राजा हुआ किन्तु उसके जातीय स्वभावमें परिवर्तन न हुआ। उसने प्रजाको कष्ट देना आरम्भ किया। इससे मगधकी प्रजामें घोर असन्तोष उत्पन्न हुआ। सारी प्रजा उससे घृणा करने लगी। साथ ही प्रकृतिको भी यह बात असह्य हो उठी। कुछ ही दिनोंमें चिलात पुत्रकी डुगडुगी देश-देशान्तरोंमें पिट गयी। श्रेणिकको जब यह मालूम हुआ कि चलात पुत्र प्रजाके साथ अन्याय करता है तो वह बड़ा दुखी हुआ। उसने उसी समय मगध की यात्रा की। श्रेणिकके राजगृह आनेपर सारी प्रजा उसके साथ हुई। उसने प्रजाकी सहायतासे श्रीचिलात पुत्रको सिंहासनसे च्युत-कर स्वयं मगधका सम्राट बना। सत्य है, प्रजा पालक ही राजा हो सकता है। अन्यथा जिसमें यह योग्यता नहीं वह कदापि राज्यका अधिकारी नहीं हो सकता, वरन् लोक-परलोककी कीर्तियोंको नष्ट करनेवाला होता है।

चिलातपुत्र मगधसे भागकर एक पहाड़ी स्थानमें छोटासा किला बना लिया और वहांके छोटे-मोटे गांवोंसे वह ज़बरदस्ती कर वसूल करने लगा। चिलात पुत्रका भतृपुत्र नामक एक मित्र था। उसके मामा रुद्रदत्तकी एक पुत्री थी। भतृपुत्रने उस लड़कीका विवाह चिलात पुत्रसे करनेके लिए अपने मातासे प्रार्थना की। किन्तु रुद्रदत्त ने साफ इन्कार किया। इससे चिलातपुत्र कुपित हुआ। वह छिपकर

राजगृह आया और स्नान करती हुई सुभद्राको उठाकर चलता बना। यह बात जब श्रेणिकको मालूम हुई तो उसने अपनी सेना को लेकर चिलात पुत्रका पीछा किया। चिलात पुत्रने देखा कि अब बचना कठिन है तो उसने सुभद्राकी हत्या कर डाली और स्वयं भाग गया। जब वह वैभार पर्वत पार कर रहा था कि उसे मुनियों का एक संघ देख पड़ा। वह संघाचार्य मुनिराज मुनिदत्तके पास पहुंचा। उन्हें सिर झुकाकर उसने प्रार्थना की कि मुझे दीक्षा दीजिये जिससे मैं आत्महित कर सकूं। मुनिराजने कहा—प्रिय, तूने अच्छा सोचा। अब तेरी अवस्थामें केवल आठ दिन बाकी हैं। मुनिराजसे अपने अल्प जीवनकी बात सुनकर चिलात पुत्रने उसी समय दीक्षा ले ली। इसके साथ ही प्रायोपगमन सन्यास ले आत्म-भावनामें लग गया। उसे पकड़नेके लिए आनेवाले श्रेणिकने जब यह देखा तो उसे उसकी धीरता पर चकित होना पड़ा और उसके साहसकी प्रशंसा करनी पड़ी। वह उसे नमस्कारकर राजगृह लौट आया।

इधर चिलातपुत्र द्वारा मारी गयी सुभद्रा व्यन्तर देवी हुई। वह अपना बदला लेनेके लिए चीलका रूप धारणकर चिलात मुनि-के सिरपर आकर बैठ गयी। उसने मुनिको कष्ट देना आरम्भ किया। पहले उसने अपनी चोंचसे उनकी दोनों आंखें निकाल ली। बादमें मधुमक्खी बनकर काटने लगी। लगातार आठ दिन तक उसने बेहद कष्ट पहुंचाया। चिलात मुनि विचलित न हुए और अन्तमें समाधि द्वारा मृत्युसे उन्होंने सर्वार्थ सिद्धि प्राप्त कर ली।

जिन चिलात मुनिने दुःसह उपसर्ग सहकर भी धैर्य्य-च्युत न

हुए और अन्ततक जिनेन्द्र भगवानके चरणोंका ध्यान करते रहे, वे मुझे मंगल प्रदान करें।

---

## ७० धन्य मुनिकी कथा

उत्कृष्ट धर्मोपदेशक जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर धन्य मुनिकी सुखदायिनी कथा लिखनेमें प्रवृत्त होता हूं।

जम्बू द्वीपके पूर्व प्रान्तीय विदेहकी प्रसिद्ध राजधानी वीतशोकपुरका राजा अशोक अत्यन्त लोलुप था। वह खेतपर जानेवाले बैलोंका मुंह बंधवा दिया करता और घरमें रसोई बनानेवाली स्त्रियोंके स्तन बंधवाकर बच्चोंको दूध पीनेसे वञ्चित कर देता था।

संयोगवश एक दिन अशोकके मुंहमें ऐसी बीमारी हुई कि उसका सारा मुंह पक गया। सिरमें हजारों फोड़े और फुन्सियां हो गयीं। इस महा कष्टसे मुक्ति पानेके लिए उसने औषधि तैयार कराई। वह पीने जा रहा था कि एक मुनि आहारके उद्देश्यसे आ निकले। मुनि भी राजाकी भांति इसी रोगसे पीड़ित थे। तपस्वी मुनिकी दशा देखकर अशोकने यह सोचा कि जिस रोगसे मैं पीड़ित हूं उसी रोगसे मुनिराज भी कष्ट पा रहे हैं। इस दयासे प्राप्त होकर उसने औषधि मुनिराजको पिला दी। मुनि थोड़े दिनोंमें ही आरोग्य हो गये।

मृत्युके पश्चात् अशोक इसी पुण्यबलसे अमलसेनके राजा निष्टसेनकी रानी नन्दमतीके धन्य नामका पुत्र हुआ। सौभाग्यसे एक दिन धन्यको श्रीनेमिनाथ भगवानसे धर्मोपदेश सुननेका मौका

मिला। भगवान द्वारा अपनी आयु अत्यन्त कम जानकर धन्यने संसारकी माया ममता त्याग दी और मुनि हो गया। एक दिन आहारके लिए वह नगरमें गया। पूर्व जन्मके पापोदयसे उसे आहार न मिला। वह वैसे ही तपोवनमें लौट आया। यहांसे धर्मोपदेश देता हुआ सौरीपुर पहुंचा और वहीं यमुना किनारे कठिन तप करने लगा। इधर एक राज़ा शिकारके लिए आया था, पर उस-दिन उसे शिकार न मिला। जब वह अपने महलको लौट रहा था तो मुनिको देखा। वह समझ गया कि आज शिकार न मिलने-का कारण यही नंगा मुनि है। इस पापी राजाने यह धारणा कर मुनिको वाणोंसे बेंध दिया। मुनिने शुक्ल ध्यानसे कर्मोंका नाशकर सिद्ध गति प्राप्त की।

देवों द्वारा पूजित धन्यमुनि हमे शाश्वत सुख दें। वे मोक्षके स्वामी और ज्ञानके समुद्र हैं।

---

## ७१ पांच सौ मुनियोंकी कथा

जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर उस कल्याणकारी घटनाका वर्णन करते हैं जो एक साथ ही पांच सौ मुनियोंपर बीती थी।

दक्षिणात्य भारत कुम्भ काटकर नगरके राजाका नाम दण्डक था। उनकी रानी सुव्रता रूपवती और विदुषी थी। वहांका राज-मन्त्री बाल जैन धर्मसे बड़ा द्वेष रखता था। एक दिन नगरमें पांच सौ मुनियोंका एक बड़ा संघ आ गया। अभिमानी मन्त्री शास्त्रार्थके लिये मुनियोंके पास पहुंचा। रास्तेमें उसे खण्डक नाम-

के मुनि मिले। उन्होंने बालक मन्त्रीके तर्कोंका यथार्थ उत्तर दिया और स्याद्वाद सिद्धान्तका ऐसा युक्तियुक्त प्रतिपादन किया कि उससे कुछ बोलते न बना। वह लज्जित होकर घर लौट आया। उसने इस अपमानका बदला चुकानेकी ठानी। उसके लिये मन्त्रीने यह युक्ति की कि एक भांड़को मुनि बनाकर रानीके महलमें भेजा वह भांड़ रानीके निकट जा हंसी मजाक करने लगा। इधर राजा का कान भर दिया कि जिनकी सेवामें आप ऐसे तत्पर हैं उनका कृत्य देखिये। उस भांड़की लीला देखकर मूर्ख राजाके क्रोधकी सीमा न रही। उसने आज्ञा दे दी कि समस्त मुनियोंको घानीमें पेल दो। मन्त्री तो खार खाये बैठा था। उसने पेले जानेकी सारी व्यवस्था कर दी। देखते देखते समस्त मुनि घानीमें पेल दिये गये। बदला लेकर पापी बाल मन्त्रीकी आत्मा सन्तुष्ट हुई। सत्य है मिथ्यात्वी लोग पापसे जरा भी नहीं डरते। किन्तु वे साहसी धन्य हैं जिन्होंने प्रतिवादमें एक शब्द भी नहीं कहा। वे जीवनकी अन्तिम कसौटीपर खरे उतरे। उन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी महान आत्म शक्ति द्वारा कर्मोंका क्षय कर मोक्ष लाभ किया।

आत्म प्रकाशक, सुमेरुके समान अचल विद्याधरों, चक्रवर्ती महाराजाओं द्वारा पूजित मुनियोंने सांसारिक कर्मोंका विनाश कर मोक्ष प्राप्त किया। वे मेरा भी भ्रम मिटावें।

---

# ७२ चाणक्यकी कथा

देवताओं द्वारा पूजित भगवान जिनेन्द्रके पद्मोंमें नत मस्तक हो चाणक्यका चरित्र लिखते हैं।

पाटलीपुत्र वर्तमान पटनाके महाराज नन्दके तीन मंत्री थे। उनके नाम थे क्रमसे कावी, सुवन्धु और शकराल। राजाके पुरोहित कपिलकी स्त्रीका नाम देविला था। चाणक्य उन्हींका पुत्र था। यह अत्यन्त बुद्धिमान तथा चतुर था। एक बार विभिन्न देशके राजाओंने मिलकर पटनेपर आक्रमण किया। महाराज नन्दने अपने मंत्री कावीको बुलाकर कहा कि जिस प्रकार हो आक्रमण कारियोंको शांत करो। यदि धन देना पड़े तो वह भी दो। राजाकी आज्ञा से मंत्रीने ऐसा ही किया।

एक दिन महाराज नन्दको स्वयं कुछ धनकी आवश्यकता हुई। उन्होंने खजांचीसे धन मांगा। खजांचीने उत्तर दिया—महाराज! खजानेका सारा धन मन्त्रीके दुश्मनोंको दे डाला है। यद्यपि धन राजाने स्वयं दिलवाया था किन्तु अपनी भूल उन्हें न दीख पड़ी। उन्होंने दूसरेके उसकानेसे निर्दोष मन्त्रीके सारे कुटुम्बको अन्धे कुंएमें डलवा दिया। मन्त्री एवं उनके कुटुम्बको महाकष्ट भोगना पड़ा। उनके भोजनके लिए थोड़ी सी सामग्री दी जाती थी। वह इतनी कम होती थी कि कठिनाईसे एक व्यक्तिका पेट भर सकता था। इस अन्यायसे कावीके मनमें प्रतिहिंसाके भाव जाग्रत हो उठे। कावीने अपने कुटुम्बियोंसे कहा—इस समय हमें जो भोजन मिलता है वह इतना अल्प है कि यदि हम लोग थोड़ा थोड़ा

खाया करेंगे तो एक दिन सबकी मृत्यु हो जायगी। अतः राजासे बदला लेने वाला कोई न रह जायगा। यह मुझे सह्य नहीं। मैं चाहता हूं कि मेरे कुटुम्बका एक व्यक्ति राजासे अवश्य बदला ले। जो राजासे बदला लेनेकी ताकत रखता हो, यह भोजन उसीको दिया जाय। उनके कुटुम्बियोंने कहा - बदला तो आप ही ले सकेंगे, अतः हम प्रसन्नता पूर्वक कहते हैं कि यह भार आप ही स्वीकार करें। उस दिनसे कावीका सारा कुटुम्ब उपवास करने लगा और अन्ततः सबके सब मर मिटे। इधर कावी कुएंमें एक गढ़ा बनाकर रहने लगा। इस प्रकार तीन वर्ष बीत गये।

जब यह सम्बाद अन्य दुश्मन राजाओंको मालूम हुआ तो उन्होंने पुनः चढ़ाई की। महाराज नन्द अकर्मण्य हो गये। उन्हें यह नहीं सूझता था कि क्या करें ? अन्तमें मन्त्री कावीकी याद आई। नन्दने उसे अन्धेरे कुंएसे निकलवाया। कावी पुनः मन्त्रीके पदपर आसीन हुआ। यद्यपि कावीने अबकी बार भी आक्रमण कारियोंसे राजकी रक्षा की फिर भी उसे राजासे बदला चुकाने वाली बात याद रही। वह एक ऐसे व्यक्तिकी खोजमें निकला, जिससे उसके काममें पूरी सहायता मिल सके। उसने जंगलमें एक ऐसे व्यक्तिको देखा जो कुशाको जड़ मूलसे उखाड़कर फेंक रहा था। उसे एक निकम्मा कार्य करते देख कर कावीने पूछा—ब्राह्मण देवता ! बेकार इतना कष्ट क्यों उठा रहे हो। यह चाणक्य था। उसने कहा वाह आपकी दृष्टिमें बेकार काम हो सकता है, किन्तु सुनिये। उसने मेरा पांव छेद दिया है अब मैं जड़ मूलसे ही इसका नाश कर दूंगा। कावीने परीक्षाके

लिये पुनः कहा कि अब क्षमा करें, बहुत हो चुका। उत्तरमें चाणक्य ने कहा—इसके खोदने हीसे क्या लाभ जबतक जड़े न नष्ट हो जांय। उस शत्रुके मारनेसे ही क्या लाभ जबतक उसका शिर न काट लिया जाय। चाणक्यका ऐसा प्रबल तेज देखकर कावीको विश्वास हो गया कि उसी व्यक्ति द्वारा नन्द कुलका नाश होगा। इससे हमें बहुत सहायता मिलेगी। अतएव राहु और सूर्यका संयोग मिला देना अपना काम है। अभी कावी विचार कर ही रहा था कि चाणक्यकी स्त्रीने आकर अपने पतिसे कहा—सुनती हूं राजा नन्द ब्राह्मणोंको गोदान किया करते हैं। आप भी जाकर गौ लाइये। चाणक्यने कहा—अच्छी बात है। चाणक्य पत्नीकी बातें सुनकर कावी वहांसे लौट गया और राजासे मंत्रणाकर गो दानकी व्यवस्था करने लगा। नन्दने कहा—अच्छा आप ब्राह्मणोंको बुलाइये मैं गो दान करूंगा। मंत्री तो चाहता ही था। वह झट चाणक्यको बुला लाया और सबसे आगेके आसनपर बिठा दिया। लोभी चाणक्यने सब आसनोंको उठाकर अपने पास रख लिये। यह देख कावीने कपटसे कहा—पुरोहितजी महाराज! राजा साहबका कहना है कि यहाँ अनेक विद्वान ब्राह्मण आये हैं, उनके लिये आप आसन दीजिए चाणक्यने एक आसन निकालकर दे दिया। इस प्रकार सब आसन निकलवाकर कावीने कहा—क्षमा कीजिये, इसमें मेरा अपराध नहीं मैं तो राजाका नौकर हूं। जैसा राजा कहते हैं, मुझे वैसाही करना पड़ता है। किन्तु मालूम होता है कि राजा अत्याचारी है। वह आप जैसे सात्विक ब्राह्मणका अपमान करना चाहता है। महाराज की आज्ञा है कि आप जिस आसनपर बैठे हैं, उसे छोड़कर चले

जाइए। यह आसन एक दूसरे विद्वानको दिया जा चुका है। इतना कहकर कावीने चाणक्यको गरदन पकड़कर वहांसे निकाल दिया। एक तो चाणक्य वैसे ही क्रोधी दूसरा राजसभामें अपमान। वह क्रोधसे जल उठा। उसने नन्द वंशको मूलसे उखाड़ फेकनेका निश्चय कर लिया। यह कहते हुए वह आगे बढ़ा कि जो नन्दका राज्य चाहता हो वह मेरे पीछे पीछे आ जाय। चाणक्यकी प्रतीक्षा के अनुसार एक मनुष्य उसके पीछे हो लिया। चाणक्य उसे लेकर भिन्न भिन्न राजाओंसे मिला। पुनः मौका देखकर वह पटना आया और नन्दको मरवा कर राज्यका मालिक बन बैठा। सत्य है मंत्रीके क्रोधसे अनेक राजाओंके आस्तित्व मिट गये हैं।

पश्चात चाणक्यने कितने वर्षोंतक राज्य किया। एक दिन उसे श्री महीधर मुनि द्वारा जैन धर्मके उपदेश सुननेका अवसर मिला उस उपदेशका इतना प्रभाव पड़ा कि चाणक्यने राज्य-कार्यको त्याग कर मुनि बन गया। वह बुद्धिमान और तेजस्वी तो था ही, अतः शीघ्र ही उसे आचार्य पद मिल गया। वहांसे करीब पांच सौ शिष्योंके साथ चाणक्यने बिहार किया। इस प्रकार सैकड़ों स्थानों पर धर्मोपदेश करता हुआ वह बनवास देशके क्रौंचपुरमें आया। यहां संघको ठहरा दिया। चाणक्यको यह मालूम हो गया कि उसकी आयुके अब थोडे दिन हैं। अतः उसने वहीं प्रायोपगमन सन्यास ले लिया।

महाराज नन्दका दूसरा मंत्री सुबन्धु था। उसने जब यह सुना कि चाणक्यने नन्दको मरवा डाला तो वह अत्यन्त कुपित हुआ। वह प्रतिहिंसाकी आगसे जलने लगा। किन्तु उस समय बदला लेने

का कोई साधन नहीं था, अतः उसे चुप ही रहना पड़ा। नन्दकी मृत्युके बाद वह इसी क्रौंचपुरके राजाके यहां मंत्री हो गया था। राजाने जब मुनि संघके आनेका समाचार सुना तो वह पूजाके लिये आया। बड़ी भक्तिके साथ पूजा कर अपने महलको लौट आया।

अब सुबन्धुको बदला लेनेका अच्छा अवसर मिला। उसने मुनि संधके चारों ओर घास इकट्ठी कर उसमें आग लगवा दी। इससे मुनिजनोंका दुःसह उपसर्ग हुआ, पर बड़ी सहनसीलताके साथ उन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी शक्ति द्वारा कर्मोंको नष्ट कर सिद्ध गति प्राप्त की।

चाणक्य आदि निर्मल चरित्र धारक मुनि गण सदा सिद्ध गति में रहेंगे। ज्ञानके समुद्र मुनि लोग मुझे भी सदगति प्रदान करें।

---

## ७३ वृषभसेनकी कथा

संसारको अपना ज्ञान रूपी किरणोंसे प्रकाशित करने वाले जिनेन्द्र भगवान तथा जिनवाणी ज्ञानके समुद्र साधुओंको नमस्कार कर श्री वृषभसेनकी कथा लिखते हैं।

दाक्षिणात्यमें बसे हुए कुण्डल नगरके राजाका नाम श्रीवैष्णव था। वे बड़े ही धर्मात्मा और समदर्शी पुरुष थे। किन्तु रिष्टमात्य नामक उनका मंत्री जैन धर्मका बड़ा द्वेषी था।

एक दिन वृषभसेन मुनि अपने संघके साथ कुण्डल नगरमें पधारे। यह संवाद सुनकर वैष्णव अपने कुछ सहचरोंके साथ

वन्दनाके लिये गया। बड़ी भक्तिके साथ उसने प्रदक्षिणा की तथा जैन धर्मका उपदेश सुना। सत्य है जैन धर्मका उपदेश सुनकर कौन सुखी न होगा ?

राजाका मंत्री भी संघके पास गया, किन्तु सद्भावनाके साथ नहीं दुर्भावनाको लेकर। मुनियों परसे लोगोंकी श्रद्धा हटा देनेके उद्देश्यसे उसने शास्त्रार्थ किया, पर अपमान उसीका हुआ। इस अपमानसे उसे गहरी चोट लगी। इसका बदला चुकानेकी गरजसे वह रातको मुनि संघके पास आया और वहां आग लगा दी। दुख है कि दुर्जनोंका हृदय बड़ा कलुषित होता है। वे बदला चुकानेके लिये निकृष्ट कार्योंतकका प्रयोग करते हैं। मंत्रीने दुष्टताकी हद करदी। मुनि संघपर उसने कठिन उपसर्ग किया। किन्तु ज्ञानी मुनिजनोंने कष्टकी कुछ भी परवा न की। शहनशीलताके साथ उन्होंने कष्टको बरदास्त किया और अन्तमें वे मोक्षको प्राप्त हुए।

ठीक ही है सतपुरुषोंको चाहे जितना कष्ट दिया जाय, वे अपनी प्रतिज्ञाओंपर दृढ़ रहते है। उन्हे अपने कर्तव्य पालनसे सर्वोच्च सुख प्राप्त होता है, जैसा कि उक्त मुनियोंको प्राप्त हुआ।

जिन्होंने ध्यानका आश्रय ले कठोर उपसर्गको जीता और संसार द्वारा पूजित हुए, वे मुनिराज हमें भी बल दें जिससे हम भी अपने कर्तव्यमें अग्रसर हों।

# ७४ शालि सिक्थ मच्छके भावोंकी कथा

स्वयंभू श्रीआदिनाथ भगवानको नमस्कार कर वह कथा लिखी जाती है, जिससे ज्ञात हो कि मनकी भावनासे कितना दोष अथवा कर्म बन्ध होता है।

अन्तिम समुद्र स्वयंभू रमणमें एक विशाल मच्छ है। उसकी लम्बाई एक हजार योजन, चौड़ाई पाँच सौ योजन तथा ऊंचाई ढाई सौ योजनकी है। उसके पास शालि सिक्थ नामक दूसरा मच्छ भी रहता है जो उनके कानोंकी मैल खाया करता है। जब यह बड़ा मच्छ सैकड़ों जल जन्तुओंको खाकर गहरी नींद लेता है तो घड़ियाल आदि बड़े बड़े जल जन्तु उसके विकराल मुंहमें घुसते निकलते रहते हैं। उस समय छोटा मच्छ यह सोचता हैं कि, यह बड़ा मूर्ख है जो अपने मुंहमें आये हुए जीवोंको व्यर्थमें छोड़ देता है। यदि कहीं मुझे यह शक्ति प्राप्त हो गयी तो मैं एक भी जीवको न छोड़ूं। पापी लोग ऐसी ही दुर्भावना वश दुर्गति सहते हैं। सिक्थ मच्छकी भी यही गति हुई। वह सांतवें नरकमें गया। क्योंकि मनके भाव ही पाप और पुण्यके कारण होते हैं। अतएव सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे जैन शास्त्रोंका अध्ययन न कर अपनेको पवित्र बनाये रहे। वे अपने हृदयमें कभी भी दुर्भावनाको स्थान न दें। शास्त्रोंके बिना भले बुरेका ज्ञान नहीं हो पाता, अतः शास्त्र भ्यासको पवित्रताका मूल कारण कहा गया है।

जिनवाणी मिथ्यान्धकारको नष्ट करनेके लिये प्रकाशका काम करती है। वह सांसारिक दुःखोंसे निवृत्त करती है। देव विद्याधर

महा पुरुष इसकी उपासना करते हैं। आप भी जिनवाणीका मनन करें।

## ७५ सुभौम चक्रवर्तीकी कथा

समग्र देवताओं द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवानको प्रणामकर आठवें सुभोम चक्रवर्तीकी कथा लिखते हैं।

ईर्ष्यावान नगरके राजाका नाम कीर्तवीर्य था। उनकी रानी रेवती थी। सुभौम उन्हींके पुत्र थे। चक्रवर्तीका जयसेन नामक रसोइया था। एक दिन भोजनके समय रसोइयेने चक्रवर्तीके आगे गरम गरम खीर परोस दी। गरम खीरसे चक्रवर्तीका मुंह जलने लगा। उन्होंने गुस्सेमें खीर रखे हुए वर्तनको रसोइयेके सिरपर पटक दिया। इससे रसोइयाका सिर जल गया। वह इस कष्टसे मरकर लवण समुद्रमें व्यन्तर देव हुआ। जब उसे कुअवधि ज्ञानसे अपने पूर्व भवका ज्ञान हुआ तो उसे चक्रवर्तीपर बड़ा क्रोध हुआ। प्रतिहिंसाकी भावनासे उसका शरीर जलने लगा। तब वह तापसी वेष बनाकर चक्रवर्तीके यहां पहुंचा। इसके हाथमें कुछ मधुर और सुन्दर फल थे। उसने उन फलोंको चक्रवर्तीको दिया। वे फल खाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस तापससे कहा—महाराज! ये फल तो बड़े मीठे हैं। आप इन्हें कहांसे लाये और ये कहां मिलेंगे। तापस रूपधारी व्यंतर देवने कहा कि समुद्रके बीचमें एक छोटा टापू है। वहीं मैं निवास करता हूं। यदि आप इस गरीबपर कृपाकर मेरे घरको पवित्र करें तो ऐसे अनेक फल भेंट करूंगा। चक्रवर्ती लोभ में फंसकर व्यंतरके झांसेमें आ गये और उसके साथ चल दिये।

जब व्यंतर समुद्रके बीचमें पहुंचा तब वह अपने प्रकृत रूपमें प्रकट होकर लाल २ आंखें कर कहा—दुष्ट जानता है मैं तुझे यहां क्यों लाया हूं। मैं तेरा रसोइयां था। तूने मुझे निर्दयताके साथ जलाया था। आज मैं उसीका बदला चुकानेके लिये तुझे यहां लाया हूं। बता अब तेरी गति कैसी होनी चाहिये। फिर भी एक उपाय है, जिससे तू बच सकता है। यदि तू पानीमें नमस्कार मंत्र लिखकर पैरसे उसे मिटा दे तो जीवित बच सकता है। अपनी प्राण रक्षाके लिए मनुष्य भला बुराका विचार नहीं करता। चक्रवर्तीकी यही दशा हुई। उन्होंने यह न सोचा कि इससे मेरी कौन गति होगी। व्यंतर देवके कथनानुसार उन्होंने नमस्कार मंत्र लिख कर मिटा दिया। उनका कहना था कि देवने उन्हें मारकर समुद्रको समर्पित किया। उस कृत्यके पूर्व देव जगत्पूज्य जिनेंद्र भगवानके भक्तको मारनेका साहस नहीं करता था। उस समय यह भी संभव था कि जिन शासनका अन्य देव यह अन्याय रोक सकता था किन्तु नमस्मार मंत्र मिटा देनेसे व्यंतर देवने समझ लिया कि यह जिन धर्मका द्वेषी हो गया तो उसने मार डाला। इस पापके फल स्वरूप मरनेपर चक्रवर्तीको सातवाँ नरक प्राप्त हुआ। धिक्कार है ऐसी लम्पटताको, जिससे संसारके सम्राटको दुर्गति सहती पडे। जो जिन धर्मपर विश्वास नहीं करते, यदि उन्हें चक्रवर्तीकी तरह नरकमें जाने पड़े तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। वे धन्य हैं जिनने वचन रूपी अमृतका झरना बहा करता है, उन्हीं बचनोंपर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन मोक्षका प्रधान कारण माना गया है। देव, विद्याधर आदि उसके धारण करनेवाले

की पूजा करते हैं सम्यगदर्शी शांति पूर्वक रहता है। अतः सुख चाहने वाले व्यक्ति आठ अंगों सहित सम्यग्दर्शनका विश्वास पूर्वक पालन करें।

---

# ७६ शुभ राजाकी कथा

विश्वहितैषी जिनेन्द्र भगवानको आदर पूर्वक नमस्कार कर शुभ नामक राजाकी कथा लिखते हैं।

मिथिलापति राजा शुभकी रानीका नाम मनोरमा था। देवरति उनका पुत्र था, जो बड़ा ही बुद्धिमान और गुणज्ञ था। व्यसन तो उनमें नाममात्रको नहीं थे।

एक बार मिथिलामें मुनियोंका संघ आया। संघके आचार्य देव गुरु थे। राजा शुभ अनेक भव्यजनोंको लेकर पूजाके लिये गया। उपदेश सुननेके बाद शुभने अपने भविष्यकी बात पूछी। उसने कहा कि—मुनि महाराज आप यह बतलाइये कि आगे मेरा जन्म कहां होगा? मुनिने कहा—पापोंके फलसे तुम्हें पाखानेमें कीड़ेकी देह प्राप्त होगी। मृत्युके पूर्व तुम्हारे मुंहमें विष्टा प्रवेश करेगा तुम्हारा छत्र भंग होगा और आजसे सातवें दिन बिजली गिरनेसे तुम्हारी मृत्यु होगी। मुनिराजने सारी बातें निडर होकर कहीं। योगीके मनमें सन्देह किस बातका।

मुनिकी भविष्यवाणी सत्य होने लगी। एक दिन राजा शुभ जब नगरमें घुसने लगे तो घोड़के टापसे उड़कर विष्टा उनके मुंहमें आ गया। आगे बढ़नेपर छत्र भंग हो गया। राजाने अपने बेटेको

बुलाकर कहा—देखो अब मेरे पाप कर्मोंका उदय हुआ है। मैं मरकर अपने पाखानेमें पांच रंगका कीड़ा होऊँगा। इसलिये तुम मुझे मार डालना जिससे मैं अच्छी गतिको प्राप्त कर सकूं। यद्यपि आकस्मिक घटनाओंसे राजाको मुनिकी बातोंपर विश्वास था, फिर भी अपनी रक्षाके लिये लोहेकी मजबूत सन्दूकमें बैठ गये और उसे गहरे जलमें रख आनेके लिये नौकरोंको आज्ञा दी। उन्हें विश्वास था कि जलपर बिजलीका असर नहीं होता, अतः मेरी रक्षा हो जायगी। किन्तु यह उनकी नासमझी थी। भला प्रत्यक्ष-ज्ञानियोंकी बात कभी झूठी हो सकती है। ठीक सातवें दिन आकाशमें बिजलियां चमकने लगीं। एक बड़े मच्छने राजाकी सन्दूक ऊपरको उछाल दी। वह जलसे दो हाथ आगे जमीनपर आ गयी। सन्दूकके बाहर आते ही उसपर बिजली गिरी और तत्काल राजाकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके पश्चात मुनिके कथनानुसार वे पाखानाके कीड़ा हुए। शुभके पुत्र देवरतिने जाकर देखा तो पाखानामें एक पाँच रंगका कीड़ा दीख पड़ा। उन्होंने उसी समय मारना चाहा। किन्तु तलवार उठाते ही वह कीड़ा विष्टाके ढेरमें घुस गया। देवरतिको बड़ा आश्चर्य हुआ। जिन्होंने यह घटना सुनी, उन्हें संसार बन्धन स्वरूप प्रतीत हुआ। इस बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये उनने जिनदीक्षा ग्रहण कर श्रावकोंके व्रत लिये।

एक दिन देवरतिने अपने पिताकी घटना मुनिराजसे सुनाई। मुनिने बतलाया कि इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। जीव स्वभावतः गति सुखी होता है। चाहे निकृष्ट स्थानमें ही वह उत्पन्न हो, वह मरना स्वीकार नहीं कर सकता। तुम्हारे पिता जबतक जीवित

थे, उन्हें मनुष्य-शरीरसे प्रेम था। मृत्युके पश्चात् कीड़ा होनेकी बातसे उन्हें मार्मिक वेदना हुई थी, इसलिये उन्होंने उस कीट जीवनसे मुक्त होनेके लिये मार डालनेके लिये तुमसे अनुरोध किया था। किन्तु अब वही पाखानेका स्थान ही उन्हें प्यारा है। संसार-की स्थिति ऐसी ही होती है। मुनिराजके मार्मिक उपदेशसे देवरति-को वैराग्य हो गया। वे क्षणभंगुर संसारसे विरक्त होकर साधक योगी बन गये।

सम्पूर्ण पापोंके विनाशक जिन भगवान हमें सुबुद्धि प्रदान करें जिससे अपने कर्मोंका नाश कर मुक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ हों।

## ७७ सुदृष्टि सुनारकी कथा

विद्याधरादि देवताओं द्वारा पूजित जिन भगवानकी आराधना कर सुदृष्टि नामक सुनारकी कथा लिखते हैं जो रत्नोंका चतुर पारखी था।

उज्जैनके धर्मात्मा राजाका नाम प्रजापाल था। वे जैसे ही प्रजापालक थे वैसे ही जिन भगवानके भक्त भी थे। उनकी रानी सुप्रभा अत्यन्त सुन्दरी और पतिपरायण थी। वस्तुत: वही सौन्दर्य प्रशंसनीय होता है जिसमें शील हो।

उसी नगरमें सुदृष्टि नामक एक रत्न-पारखी सदाचारी सुनार रहता था। उसकी स्त्री विमला दुराचारिणी थी। एक वक्र नामके विद्यार्थीसे विमलाका अनुचित सम्बन्ध था, जो उसीके घरमें रहता था और उसके पढ़ने लिखनेका सारा व्यय सुदृष्टि दिया करता था।

दुराचारिणी विमला अपने पतिसे नाखुश रहा करती थी। एक दिन उसने वक्रको उसकाकर अपने पतिकी हत्या करा डाली। यह हत्या उस समय हुई जिस समय सुदृष्टि विषयमें तल्लीन था। अतएव वह मृत्युके बाद विमलाके ही गर्भमें आ गया। कुछ समयके पश्चात विमलाने पुत्र प्रसव किया। आचार्योंका कथन है कि संसारकी स्थिति बड़ी विचित्र होती है, पलपलमें परिवर्तनका चक्र चलता रहता है।

वसन्तके दिन थे। पुष्पोंकी छटासे उपवन लहलहा रहा था। एक दिन महारानी अपने प्राणनाथके साथ उपवनमें पधारीं। विनोद-में उनका क्रीड़ाविलास नामक हार टूट पड़ा। सारे बहुमूल्य रत्न बिखर गये। हारको पुनः बनानेके लिये सैकड़ों जौहरी बुलाये गये, किन्तु पूर्वसा किसीसे नहीं बना। उस हारको विमलाके पुत्रने, अर्थात् पूर्वभवके उसके पति सुदृष्टिने देखा। उसके पूर्वजन्मका भान था, अतः उसने हारको पहलेकी भांति बना दिया। ठीक ही है; जीवको पूर्वजन्मके संस्कारसे ही सब कुछ प्राप्त होता है। उसकी चतुरता देखकर राजा प्रजापाल अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने पूछा—अच्छा यह तो बताओ कि इस हारको तुमने सुदृष्टि जैसा कैसे बना दिया। तब उस बालकने कहा—महाराज मैं अपनी बात आपसे क्या बताऊँ? मैं वास्तवमें सुदृष्टि ही हूं। उसने सारी घटना कह सुनाई। राजा संसारके घटना-वैचित्र्यसे बड़े दुखी हुए। विरक्त हो उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

इस ओर विमलाके पुत्रको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह स्वर्गीय सुखप्रदायिनी जिनदीक्षा ले योगी बन गया। यह तपस्वी

अनेक देशोंमें धर्मोपदेश करते हुए सोरीपुरके अन्दर यमुना तटपर आकर ठहरा। उसने शुक्ल ध्यान द्वारा कर्मों का विनाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया और अन्तमें उसकी मुक्ति हुई। विमला-सुत मुनि हमें भी ज्ञान प्रदान करें।

मोक्षरूपी सुख प्रदान करनेवाले जिन भगवान, जो निराधार जीवोंके सहायक हैं हमें भी मोक्षका सुख दें।

---

# ७८ धर्मसिंह मुनिकी कथा

स्वर्गसे देवों द्वारा स्तुति किये जानेवाले ज्ञानके समुद्र जिन भगवानके चरणोंमें मस्तक टेककर धर्मसिंह मुनिको कथा लिखते हैं।

दक्षिणमें कौवाल गिर नामक एक देश था। वहांके राजा वीरसेनकी दो सन्तान थीं एक पुत्र और एक कन्या। पुत्रका नाम चन्द्रभूति और कन्याका नाम चन्द्रश्री था। चन्द्रश्रीकी सुन्दरता अपूर्व थी।

चन्द्रश्रीका विवाह कौशलके राजा धर्मसिंहके साथ हुआ था। दम्पति सुखसे रहते थे। भोगकी वस्तुएं सदा प्रस्तुत रहती थीं। यह सब होते हुए भी राजा धार्मिक थे। उनकी धर्मपर श्रद्धा थी। वे सदा दान पूजादि धार्मिक कार्य किया करते थे।

एक दिन धर्मसिंह दिमधर मुनिके दर्शन करनेके लिये गये। उन्होंने मुनिकी भक्ति पूर्वक पूजा की। मुनिके उपदेश सुनकर धर्मसिंहके कोमल चित्तपर गहरा असर पड़ा। वे सांसारिक विषय-

भोगोंसे विरक्त हो गये। यह समाचार जब उनकी पत्नी चन्द्रश्रीको मालूम हुआ तो वह दुखी हुई, पर करे क्या मजबूर थी। उसकी दुःख-गाथा जब उसके भाई चन्द्रभूतिने सुनी तो उसे भी दुःख हुआ वह धर्मसिंहको अपनी बहिनके पास लिवा लाया, पर फिर भी धर्मसिंह सांसारिक-विषयोंमें अनुरक्त न हुए और जिन दीक्षा लेकर कठिन तप करने लगे।

एक दिनकी घटना है। धर्मसिंह मुनि तप कर रहे थे कि, उन्होंने चन्द्रभूतिको अपनी ओर आते हुए देखा। वे समझ गये अब यह मेरी तपस्यामें विघ्न डालेगा। अतः उन्होंने तपकी रक्षाके लिये एक मृत हाथीके शरीरमें प्रवेश कर समाधि ले ली और शरीर त्यागकर स्वर्गमें गये। इसी प्रकार भव्य जनोंको व्रतकी रक्षा करनी चाहिए जिससे स्वर्ग एवं मोक्षका सुख प्राप्त होता है।

पवित्र जैन धर्मके प्रेमी जिन धर्मसिंह मुनिने भगवानके उपदेश किये हुए स्वर्ग तथा मोक्ष दायिनी तपस्या द्वारा स्वर्ग सुख प्राप्त किया, वे महात्मा हमें सुबुद्धि प्रदान करें जिससे हम अपना मङ्गल कर सकें।

---

## ७६ वृषभसेनकी कथा

अपने निर्मल प्रकाशसे संसारको प्रकाशित करनेवाले तथा स्वर्ग मोक्षको प्रदान करनेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर वृषभसेनकी कथा लिखते हैं।

वृषभदत्त पाटलिपुत्र (पटना) का विख्यात सेठ था। पूर्व जन्मके

संस्कारोंसे उसके पास पर्याप्त सम्पत्ति थी। उसकी स्त्रीका नाम वृषभदत्ता था और पुत्रका नाम वृषभसेन। वृषभसेन बड़ा धर्मात्मा था। सदा दान पूजादिक किया करता था।

वृषभसेनके मामा धनपतिकी स्त्री श्रीकान्ताकी एक पुत्री थी। उसका नाम धनश्री था। वह अत्यन्त सुन्दरी और विदुषी थी। धनश्रीका विवाह वृषभसेनसे हुआ। विभिन्न प्रकारके विषय भोगों-की सामग्री प्रस्तुत थीं।

एक दिन वृषभसेन मुनिराज दमघटके दर्शन करने गये। उनको भक्ति पूर्वक पूजा कर पवित्र उपदेश सुना। उपदेशसे उनका चित्त विरक्त हो गया। वे सांसारिक विषय भोगोंसे उदासीन हो गये और उन्होंने आत्महित साधक जिन दीक्षा ले ली। युवावस्थामें ही दीक्षा ले लेनेके कारण धनश्रीको बड़ी चिन्ता हुई। वह उदास रहने लगी। उसे सिवा रोने-धोनेके और कुछ नहीं सूझता था। यह देख-कर धनश्रीके पितासे न रहा गया। वह वनमें जाकर वृषभसेनको उठा लाया। उसने दीक्षा खण्डित कराकर गृहस्थ बना दिया।

वृषभसेनको कुछ दिनोंतक घरमें रहना पड़ा। पर घर उन्हें कारागार-सा जान पड़ा। अतः वे पुनः मुनि हो गये। उसका पुनः मुनि हो जाना धनपतिको मालूम हुआ। उसने किसी बहानेसे बुला-कर उन्हें लोहेकी सांकलसे बांध दिया। मुनिने सोचा कि अब यह मेरा तप भंग करा देगा तो उन्होंने समाधि ले ली। मुनि उस अवस्थामें शरीर त्यागकर स्वर्गमें देव हुए। ठीक ही है दुर्जनों द्वारा कष्ट पाते हुए भी मुनि लोग पाप बन्धनमें नहीं लिप्त होते। वे भगवानकी चरण-सेवाकर ही पुण्य-सुख प्राप्त करते हैं।

---

# ८० जयसेन राजाकी कथा

सब प्रकारके देवों द्वारा पूजे जानेवाले मोक्षरूपी रमणीके पति जिन भगवानको नमस्कार कर जयसेन राजाकी अत्युत्तम कथा लिखते हैं।

सावस्तीके राजाका नाम जयसेन था। उनकी पत्नी वीरसेनके पुत्रका नाम वीरसेन था। वह बुद्धिमान और सात्विक था और कपटसे सर्वथा मुक्त था।

यहींपर एक शिव गुप्त नामका भिक्षुक रहता था। वह निर्दयी तथा मांसाहारी था। ईर्षा और द्वेषका मानों वह पुतला था। यह शिवगुप्त राज गुरु था। धिक्कार है मायावी भी गुरु हो जाते हैं।

एक दिन यति वृषभ मुनि देव अपने संघके साथ सावस्तीमें पधारे। उनका आगमन सुन राजा भी दर्शनोंके लिये गया। मुनि-राजके उपदेशका राजापर ऐसा प्रभाव पड़ा कि, उसने मुनिराजसे निवेदन कर श्रावकोंके व्रत ले लिये। जैन धर्मपर उसकी श्रद्धा दिनों दिन बढ़ने लगी। उसके राज्यमें एक भी स्थान न रहा, जहां जिन मन्दिर न हों। प्रत्येक नगर प्रत्येक गांवमें राजाने जिन मन्दिर बनवा दिये। जिन धर्मका प्रचार देखकर शिव गुप्त ईर्षासे जल रहा था। वह राजाकी हत्याके प्रयत्नमें लगा। एक दिन वह इसी उपदेशसे पृथवीपुरीमें गया। वहांके बौद्ध राजा सुमतिको उसने जयसेनके जैन धर्म ग्रहण करने तथा स्थान स्थानपर जिन मन्दिर बनवानेकी बात कह सुनाई। यह सुनकर सुमतिने जयसेनको एक पत्र लिखा कि—तुमने जैन धर्म ग्रहण कर बुरा किया अतः पुनः

बौद्ध धर्म स्वीकार करलो। उत्तरमें जयसेनने लिखा कि—मेरा विश्वास है कि जैन धर्म प्राणिमात्रका हित करनेवाला है। जिस धर्ममें हिंसा होती है वे धर्म नहीं हो सकते। संसारके दुखोंसे छुड़ाकर उत्तम सुखमें रखना सिवा जैन धर्मके अन्य धर्मोंमें नहीं है। इसलिये इसे छोड़कर सब अशुभ बन्धके कारण हैं। ठीक ही है, जिसने जैन धर्मकी महत्ता समझ ली, वह भला किस प्रकार डिग सकता है। जयसेनका ऐसा विश्वास देखकर सुमतिका बड़ा क्रोध हुआ। उसने दो व्यक्तियोंको सावस्तीमें भेजा कि वे जाकर राजाको हत्या कर दें। वे दोनों आकर सावस्तीमें ठहरे और इस प्रयत्नमें लगे कि किसी प्रकार जयसेनकी हत्या कर डालें। किन्तु इस प्रयत्नमें उन्हें सफलता न मिली और वे पृथ्वीपुर लौट आये। सुमति और भी क्रोधित हुआ। उसने अपने समग्र नौकरोंको एकत्रित कर कहा कि, कोई ऐसा हिम्मतवर है कि सावस्ती जाकर जयसेनको हत्या कर डाले। उनमेंसे एक हिमार नामक दुष्टने कहा—मैं इस कामको कर सकता हूं। वह राजाकी आज्ञा पाकर सावस्ती आया और यतिवृषभ मुनिके पास मायाचारसे दीक्षा ले मुनि हो गया।

एक दिन राजा जयसेन मुनिराजके दर्शनके लिये गया। वह अपने नौकरोंको बाहर ठहराकर स्वयं मन्दिरमें गया। कुछ देरतक मुनिसे धर्म-सम्बन्धी बातचीत होती रही। पश्चात् चलनेके पूर्व जब जयसेन मुनिराजको ढोक देनेके लिये झुका तो वह दुष्ट हिमारक जयसेनकी हत्या कर भाग गया। सच है स्वार्थी लोग बड़े ही दुष्ट हुआ करते हैं। यह देख मनिको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा,

शायद सारे संघपर विपत्ति न आये। इसलिये वे पासहीकी दीवाल-पर यह लिखकर कि, धर्मडाहसे ऐसा हुआ है स्वयं उन्होंने अपना पेट चीर लिया और सन्यास द्वारा मृत्यु प्राप्त कर वे स्वर्गको गये।

अपने पिताकी मृत्युका समाचार जब वीरसेनने सुना तो वह दौड़ा हुआ मन्दिरमें गया। उसे हत्याकारीका पता न चलनेसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब उसने अपने पिताके पास ही मुनिको मरा हुआ पाया तो वह और भी बिचारमें पड़ गया। ये हत्याएँ कैसे हुईं और किसने की। उसे यह भी सन्देह हुआ कि कहीं मुनिने तो हत्या न की हो, पर दूसरे ही क्षण उसके विचार बदल गये। पितासे तो इनका विरोध नहीं था, इसलिये ये क्यों हत्या करेंगे। एक शान्त निस्पृह योगीसे ऐसा घृणित कार्य नहीं हो सकता। बेचारा वीरसेन कठिन उलझनमें पड़ गया। इस प्रकार वह विचार कर ही रहा था कि उसकी दृष्टि सामनेकी दिवालपर पड़ी। उसपर लिखा था—'धर्म-डाहसे ऐसा हुआ है' इतना देखना था कि सारी बातें उसकी समझमें आ गयी। उसका रहासहा सन्देह भी दूर हो गया। उसको मुनिराजपर बड़ी श्रद्धा हुई और उनके धैर्यकी उसने बड़ी प्रशंसा की। जैनधर्म पर उसका अटल विश्वास हो गया। जो स्वाभाविक दुष्ट है, उन्हें इतर धर्मोंका अभ्युदय नहीं सहा जाता। ऐसे व्यक्ति चाहे जैनधर्म पर कितना ही कलङ्क लगावें, पर वह तो सूर्यके समान सदा निष्कलङ्क है।

जो संसारके दुखोंसे मुक्त कर स्वर्गसुख देनेवाला है। जिस धर्मको चक्रवर्ती विद्याधर मानते हैं जिसका उपदेश सर्वज्ञ भगवानने

किया है, वह धर्म हमें शक्तिप्रदान करे, जिससे मोक्षका सुख प्राप्त हो।

---

# ८१ शकटाल मुनिकी कथा

संसार-हितैषी जिनेन्द्र भगवानको प्रणाम कर शकटाल मुनिकी कथा लिखते हैं।

राजा नन्द पाटलिपुत्र (पटना) के शासक थे। उनके मन्त्रियोंके नाम शकटाल और वररुचि थे। शकटाल जैनी था, इसलिये उसकी जैनधर्म पर अटल श्रद्धा थी। वररुचि अजैनी था, इसलिये वह जैनधर्मसे चिढ़ता था। इन दोनों मन्त्रियोंका द्वेष बहुत दिनोंसे चला आ रहा था। एक दूसरेके विरोधी थे।

एक दिन जैनधर्मके परम विद्वान महापद्म मुनिराजका आगमन पटनामें हुआ। शाकटाल उनकी पूजाके लिये गया। मुनिके उपदेशसे शकटालके कोमल और धार्मिक हृदयपर गहरा असर पड़ा। वह संसारसे विरक्त होकर मुनि हो गया पश्चात् उसने अपने गुरु द्वारा सिद्धान्तशास्त्रका अच्छा अध्ययन किया। थोड़े ही समयमें शकटाल मुनिने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। गुरु इनकी प्रतिभा और अलौकिक शक्ति देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय शकटाल मुनिको आचार्य-पद दे दिया। यहांसे ये देश-देशान्तरोंमें धर्म प्रचार करने लगे। उन्होंने हजारों व्यक्तियोंको आत्महितकी ओर लगाया इस प्रकार प्रभावना करते हुए ये पुनः पटना लौट आये।

एक दिनकी बात है, शकटाल मुनि महाराजके अन्तपुरमें आहार कर तपोवनकी ओर लौट रहे थे। वररुचिने इन्हें देख लिया। उसने पुराने बैरका बदला लेना चाहा। वररुचिने अच्छा मौका देखकर राजासे कहा—महाराज, कुछ खबर है आपका पुराना मन्त्री शकटाल भिक्षाके बहाने अन्तपुरमें प्रवेश कर न जाने क्या अनर्थ कर गया है। मुझे तो जरा भी खबर मिली होती तो उसके पापका दण्ड दिलवा दिया होता। अस्तुः आपको भी ऐसे पाखण्डीके लिये उचित व्यवस्था करनी चाहिये। नन्दने मन्त्रीके बहकावेमें आकर एक भृत्यको आज्ञा दी कि वह जाकर शकटालकी हत्या कर आवे। ठीक ही है दुर्जन मनुष्य भला-बुरे कार्यपर विचार नहीं करते। शकटाल मुनिने जब यह देखा कि घातक मनुष्य उनकी ओर आ रहा है तो उन्हें विश्वास हो गया कि यह मुझे मारनेके लिये आ रहा है। यह सब कार्रवाई वररुचिकी है, अतएव उसके आनेके पूर्व ही शकटाल मुनिने संन्यास ले लिया। घातक अपना काम कर लौट गया।

किन्तु जब नन्दको सच्ची बातोंका पता चला तो उन्हें मालूम हो गया कि शकटाल मुनिका कोई दोष नहीं था। जैन मुनियोंके प्रति उनकी जो भ्रान्त धारणा हो गयी थी, वह दूर हो गयी। वे कुछ दिनों बाद महापद्म मुनिके निकट गये। वहां जैनधर्मका कल्याणकारी उपदेश सुनकर उनके चित्तपर स्थायी प्रभाव पड़ा। राजाने श्रावकव्रत धारण किये। जैनधर्मपर उनकी अटल भक्ति हो गयी।

बुरी संगतिका फल बुरा होता है और अच्छी संगतिका फल

अच्छा। अतएव भव्यजनोंको सदा महापुरुषोंकी संगति करनी चाहिये। उनकी सत्संगतिसे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

जिनप्रभाचन्द्र आदि पूर्वाचार्योंने सम्यग्ज्ञान, सम्यगचारित्र और सम्यग्दर्शनरूपी मालाको तैयार किया है, वे यह माला भव्य-जनोंको प्रदान करें।

---

## ८२ श्रद्धायुक्त मनुष्यकी कथा

अपने निर्मल केवल ज्ञान द्वारा सारे संसारको प्रकाशित करने वाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर विनय धर राजाकी कथा लिखते हैं, जो भव्य जनोंको अत्यन्त प्रिय हैं।

कुरु देशकी राजधानी हस्तिनापुरका राजा विजियांधर था। उसकी रानी विनयवती थी। यहीं एक सेठ रहता था, जिसका नाम वृषभसेन तथा उसकी स्त्रीका नाम वृषभसेना था। सेठके पुत्र का नाम जिनदास था जो अत्यन्त बुद्धिमान था।

विनयधर सदा कामाशक्त रहता था। एक बार उसे महारोग हो गया। ठीक ही है, 'अति सर्वत्र वर्जयेत'। राजाने बड़े-बड़े वैद्योंसे चिकित्सा कराई, किन्तु कोई फल नहीं हुआ। राजा इस रोगसे बड़ा दुखी हुआ।

राजाका सिद्धार्थ नामका एक मन्त्री था। यह शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक जैनी था। एक दिन इसने सर्वौषधि ऋद्धिके धारक मुनिराजके पाद प्रक्षालनका जल लाकर राजाको दिया। जिनेन्द्र भगवानके भक्त राजाने श्रद्धापूर्वक उस जलको ग्रहण किया। जल

पीते ही उनका रोग नष्ट हो गया। जिस प्रकार सिद्धार्थ मन्त्रीने मुनिके पाद प्रक्षालनका जल राजाको दिया, उसी प्रकार अन्य सत्पुरुषोंको भी उचित है कि वे धर्मरूपी जल सर्वसाधारणको देकर उनका ताप दूर करें।

जैन-धर्मके अनुसार किये जानेवाले दान, पूजा व्रत उपवासादि दुःख विनाशक होते हैं। इस श्रद्धाका आनुषंगिक फल—इन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि सम्पदा होते हैं। केवल ज्ञानसे अनन्त चतुष्टय आत्माकी शक्तियां प्रकट होती है। वही श्रद्धा संसारका कल्याण करे।

---

## ८३ आत्म निन्दा करनेवालीकी कथा

विभिन्न तरहके देवों द्वारा अराधित जिनेन्द्र भगवानके चरणोंकी श्रद्धा युक्त वन्दनाकर उस स्त्रीकी कथा लिखते हैं जिसने अपने पाप कर्मोंकी निन्दा कर उत्तम फल प्राप्त किया था।

काशीके राजाका नाम विशाल दत्त था। उनकी रानी कनक प्रभा थी। इनके यहां एक विचित्र नामक चितेरा रहता था। वह प्रसिद्ध चित्रकार था। चित्रकारकी स्त्री का नाम विचित्र पत्ता था। इसको बुद्धिमती नामकी एक पुत्री थी। वह बड़ी सुन्दरी और बुद्धिमती थी।

एक दिन विचित्र राजमहलमें चित्र बनाने गया। बुद्धिमती अपने पिताके लिये भोजन लेकर गयी। उसने विनोदमें राजमहलकी भीतपर एक चित्र खींच दिया। चित्र मोरकी पीछीका था। उसे

देखकर यह मालूम होता था, वास्तवमें मोरकी पीछी है। इसी समय राजा विशाख दत्त इधर आ निकले। वे चित्रको मोरकी पीछी समझ उसे उठाने लगे। बुद्धिमती समझ गयी कि राजाको भ्रम हुआ है।

दूसरे दिन भी बुद्धिमती भोजन लेकर राज महलमें गयी। उसने राजाको एक चित्र बतलाते हुए अपने पिताको पुकारा— पिताजी शीघ्र आइये अन्यथा भोजनकी जवानी नष्ट हो रही है। ऐसे व्यङ्ग शब्द सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे टकटकी लगाये बुद्धिमतीकी ओर देख रहे थे। राजाको अपना मनोभाव न समझते देखकर बुद्धिमती हंस रही थी।

अब बुद्धिमतीने दूसरी चाल चली। एक दिवालपर दो परदे लटका दिये। राजाको चित्र दिखलानेके बहाने एक परदा उठाया पर उसमें दूसरा चित्र न था। राजा चित्रकी आशासे देख रहा था। वह भीतपर चित्र न देखकर आश्चर्यमें पड़ गया। बुद्धिमतीका अभिप्राय उसकी समझमें न आया। उसने बुद्धिमतीसे कारण पूछा। उसने अपना प्रेम प्रकट किया। राजा तो पूर्वसे ही उसपर मुग्ध था।। बुद्धिमतीकी बातोंसे वह बड़ा प्रसन्न हुआ। कुछ समय बाद राजाने बुद्धिमतीके साथ विवाह कर लिया।

राजा विशाखदत्तका बुद्धिमतीपर इतना अधिक प्रेम बढ़ा कि, वे सदा अनुरक्त रहने लगे। सब रानियोंकी उपेक्षाकर उन्होंने बुद्धिमतीको पटरानी बनाया। ठीक ही है, प्राणियोंकी उन्नतिमें गुण ही सहायक होते हैं।

यद्यपि बुद्धिमती रनवासकी स्वामिनी बनी, किन्तु अन्य

रानियां उससे शत्रुता करने लगीं। वे ईर्षा डाहसे बुद्धिमतीको भला बुरा कहकर उसे वेहद कष्ट पहुंचाया करती थीं। वेचारी बुद्धिमती शान्त चित्त की थी। उसने महाराजसे कभी शिकायत न की। इस कष्टसे स्वयं सूखती जा रही थी और भगवानके समक्ष खड़ी होकर अपने पूर्व कर्मोंकी निन्दा किया करती थी, वह कहती-हे पूज्य दुख रूपी अग्निको शान्त करनेवाले हे दयासागर ! एक छोटे कुलमें जन्म होनेके कारण ही मुझे कष्ट हो रहे हैं। किन्तु दोष दूसरेका नहीं, यह मेरे पूर्वके पापोंका उदय है। प्रभो ! फिर भी सच्चे सेवक के कष्ट शीघ्र दूर हो जाते हैं। अतएव कामी, क्रोधी और मायावी देवोंको छोड़कर मैं आपके शरण आई हूं। आप मेरे कष्ट दूर करें। इस प्रकार बुद्धिमती केवल मन्दिरसे ही अपने महलमें भी पूर्व कर्मोंकी आलोचना किया करती। राजा उसके दुर्बल होने का कारण पूछते किन्तु बुद्धिमती बतानेसे मुकर जाती थी।

बुद्धिमतीके दुर्बल होनेका कारण जाननेके लिए राजा एक दिन जिन मन्दिरमें आ गया। बुद्धिमती भगवानके सामने खड़ी होकर आलोचना कर रही थी। राजाने सारी बातें सुन ली। वह सीधा राजमहल आया और दूसरी रानियोंको धिक्कारा। उसने समस्त रानियोंको बुद्धिमतीकी सेवाके लिये बाध्य किया।

बुद्धिमतीने जिस प्रकार अपनी आलोचना की, उसी प्रकार बुद्धिमान व्यक्तियोंको आत्म निन्दा कर आगेका मार्ग सुखद बनाना चाहिए।

जिनेन्द्र भगवान अपनी अनन्य भक्ति मुझे प्रदान करें, जो अनन्त सुखोंको देनेवाली है।

# ८४ आत्म निन्दाकी कथा

समस्त दोषोंके विनाशक, सुख प्रदान करनेवाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर बुरे कर्मोंकी निन्दा करनेवाली वीरा नामक ब्राह्मणीकी कथा लिखते हैं।

कथा बहुत पुरानी है। उस समय अयोध्याका राजा दुर्योधन था। यह राजा अत्यन्त न्यायी और चतुर था। इसकी रानी श्रीदेवी अत्यन्त सुन्दरी और पतिव्रता थी।

अयोध्यामें ही सर्वोपाध्याय नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी वीरा नामकी स्त्री थी। उसका चरित्र भ्रष्ट था। उपाध्याय के घर एक विद्यार्थी पढ़ा करता था। उसका नाम अग्निभूति था। वीरा इस विद्यार्थीपर बहुत प्रेम करती थी। अग्निभूतिसे उसका अनुचित सम्बन्ध था। किन्तु उपाध्यायसे इनके सुखमें बाधा पड़ती थी। वीराने एक दिन अपने पतिकी हत्या कर डाली। वह उपाध्यायकी मृत देहको छतरीमें छुपाकर श्मशानमें फेंक आनेके लिए अंधेरी रातमें घरसे बाहर निकली। यह देखकर एक व्यन्तर देवीको क्रोध आया और उसने छतरीको ब्राह्मणीके शरीरसे चिपका दिया। साथ ही यह भी कहा कि—प्रातःकाल जब तू नगरकी तमाम स्त्रियोंसे अपना नीच कर्म प्रकट कर देगी तो यह छतरी स्वयं तेरे शरीरसे अलग हो जायगी। देवीके कथनानुसार ब्राह्मणीने वैसा ही किया। छतरी सिरसे अलग हो गयी। इस प्रकार आत्म निन्दासे ब्राह्मणीका पापकर्म कम हो गया। अतएव भव्यजनोंको चाहिये कि वे अपने बुरे कर्मोंका गुरुओंके समीप प्रकट कर

दिया करें। इससे आत्म शुद्धि होगी और वे अपने पापसे छुटकारा पा सकेंगे।

यदि किसी मनुष्यके शरीरमें कांटा लग जाय तो जबतक वह कांटा नहीं निकलेगा तबतक कष्टसे निवृत्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार मनुष्य कांटेको निकाल कर ही सुखी होता है उसी तरह जैन सिद्धान्तके अनुसार आचरण करनेवाले वीतरागी साधुओंके समक्ष दुर्गुण रूपी कांटेको प्रकट कर आत्म सुख उपलब्ध करना चाहिए।

---

## ८५ सोम शर्मा मुनिकी कथा

विश्वमें ज्ञान प्रकाश फैलानेवाले जिनेन्द्र भगवानके चरणोंमें मस्तक टेककर सोमशर्मा मुनिकी कथा लिखते हैं।

इस पवित्र कथामें आलोचना, गर्हा. आत्मव्रत, उपवास आदिसे प्रमादादि विषको नष्ट करनेकी बात बतलायी गयी है।

पुण्डुक देशके प्रधान नगर देवीकोटपुरमें सोमशर्म नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री सोमिल्या थी। उसके दो पुत्र थे—अग्निभूति और वायुभूति।

यहीं एक विष्णुदत्त, नामका दूसरा ब्राह्मण भी रहता था। उसकी स्त्री विष्णुश्री थी। यद्यपि विष्णुदत्त धनवान था, किन्तु उसका स्वभाव बड़ा रूखा था। एक वार सोमशर्मने विष्णुदत्तसे कुछ रुपये उधारमें लिए। अभी कर्ज अदा न हो पाया था कि, शोमशर्म किसी जैन मुनिके उपदेशसे विरक्त हो मुनि हो गया।

सोमशर्म मुनि एकवार विचरण करते, विभिन्न नगरोंमें धर्मोपदेश करते हुए कोटपुर आ पहुंचे। विष्णुदत्तने इन्हें पकड़ लिया। उसने कहा—साधु जी! आपके पुत्र तो महा दरिद्र दशामें हैं। वे मेरा रुपया नहीं चुका सकते। अतएव या तो आप मेरा रुपया दीजिये अथवा अपना धर्म बेंचिये। सोमशर्म मुनि धर्म–संकटमें पड़े। उन्होंने समाधानके लिये गुरु वीरभद्राचार्यसे कहा—अच्छा तुम जाओ अपना धर्म बेच दो। आचार्यकी आज्ञा पाकर सोमशर्म मुनि श्मशानमें जाकर धर्म बेंचने लगे। उसी समय एक देवीने आकर पूछा अच्छा आप बतलाइये कि जिस धर्मको बेंच रहे हैं, वह कैसा है? मुनिने उत्तर दिया—मेरा धर्म अट्ठाइस मूल गुण, चौरासी लाख उत्तर गुणोंसे युक्त है एवं उत्तम, क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन और ब्रह्मचर्य ये दश भेद रूप हैं, जिनेन्द्र भगवानने ऐसा धर्मका स्वरूप बतलाया है। मुनि द्वारा इस प्रकार धर्मकी व्याख्या सुनकर देवी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने मुनिको नमस्कार कर कहा—महाराज आपका कथन ठीक है। यही धर्म संसारको वशमें करनेके लिये वशीकरण मंत्र है। हमें समझना चाहिये कि, संसारमें जो निधि दीख पड़ती है, वह धर्मका ही प्रभाव है। धर्म अमूल्य अमृत की धारा है, चिन्तामणि है। अतएव अर्थसे यह नहीं बेचा जा सकता। किन्तु मुनिराज, जब आपको कर्ज चुकाना है तो मैं आपके बालोंको कर्जके बदले दे देती हूं। इतना कहकर देवीने उन बालोंको बहुमूल्य रत्न बना दिया। वस्तुतः जैन धर्मका ऐसा ही प्रभाव है। वह सुख देनेवाला होता है।

विष्णुदत्त, सोमशर्म मुनिके तपका प्रभाव देखकर विस्मित हुवा। मुनिपर बड़ी श्रद्धा हुई। उसने नमस्कार करते हुये मुनिसे कहा— महाराज! मैंने आज तक आपसा विद्वान और धार किसीको नहीं देखा। यह आप सरीखे योगियोंका काम है कि संसारका मोह त्याग कर कठिन तपस्या कर रहे हैं। मैं किन शब्दोंमें आपकी प्रशंसा करूं। आपके चरणोंकी ही सेवा करूंगा। इस प्रकार विष्णुदत्त बड़ी देरतक मुनिकी स्तुति करता रहा और अन्तमें दीक्षा लेकर मुनि बन गया। जिसने एक दिन मुनिकी प्रतिष्ठा नष्ट करनेपर कमर बान्धी थी, वही गुरु भक्तिसे स्वर्ग और मोक्षपात्र बना। जैन धर्मका ऐसा प्रभाव देखकर विष्णुदत्तके अतिरिक्त और लोग भी जैन धर्मके प्रेमी बने। विष्णुदत्तने कर्जके बदले जिनरत्नरूपी वातोंको प्राप्त किया था, उन रत्नोंसे उसने कोई तीर्थ नामक विशाल जिन-मन्दिर बनवा दिया, जिसमें भव्यजन धर्म साधन कर सुख शान्ति उपलब्ध करते थे।

जो विचारशील, साधुजन जिन भगवान द्वारा उपदेश किये पवित्र धर्मको भक्ति पूर्वक ग्रहण करते हैं, वे अविनाशी मोक्षका सुख प्राप्त करते हैं। ऐसे योगीजन हमें आत्म-सुख दें।

---

## ८६ कालाध्ययनकी कथा

केवल ज्ञान द्वारा संसारको भवसागरसे पार उतारनेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर ऐसी कथा लिखते हैं, जिसने उचित समयमें शास्त्राध्ययन कर फल प्राप्त किया था।

एक दिनकी घटना है। जैन तत्वके अपूर्व विद्वान वीरभद्र मुनि सारी रात शास्त्राध्यन करते रहे। उन्हें इस अवस्थामें देखकर श्रुत देवी ग्वालिनके वेषमें उनके यहां पहुंची कि मुनिको ज्ञान हो जाय कि यह समय पठन-पाठनका नहीं है। देवीके सिरपर छाछकी मटकी थी। वह यह कहती हुई उधरसे निकली कि—लो मेरे पास मीठी छाछ है। मुनिने उसकी ओर देखकर कहा—क्या तू पगली हो गयी है। भला रातको एकान्त स्थानमें तुम्हारी छाछ कौन खरीदेगा? उत्तरमें देवीने कहा—महाराज मैं पगली हुई हूं कि आप पागल हुए हैं। जिस समय पठन-पाठन मना है, उस समयमें आप शास्त्राभ्यास करते हैं? मुनिको अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने आकाश की ओर देखा तो रात मालूम हुई। वे पढ़ना छोड़कर सो गये।

दूसरे दिन वे गुरुके पास गये और अपनी इस क्रियाकी आलोचना कर उन्होंने प्रायश्चित किया। देवी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने भक्ति पूर्वक मुनिकी पूजा की। ठीक ही है, गुणवानकी सभी पूजा करते हैं।

वीरभद्र मुनिराज अब उचित समयपर शास्त्राध्ययन करने लगे। इस प्रकार दर्शन, ज्ञान, चरित्र उचित रीतिसे पालन कर उन्होंने धर्म ध्यानसे मृत्यु प्राप्त किया। वे स्वर्ग धामके अधिकारी बने।

सत्पुरुषोंको चाहिए कि, जिनेन्द्र भगवानके उपदेशके अनुसार उचित कालमें शास्त्राध्यन कर और भक्ति द्वारा पवित्र ज्ञानको प्राप्त कर मोक्षके अधिकारी बनें।

# ८७ असमयमें शास्त्राभ्यास करनेवालेकी कथा

अपने केवल ज्ञानरूपी नेत्रसे समस्त विश्वको प्रकाशित करने वाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर वह कथा लिखी जाती है, जिसने असमयमें शास्त्राभ्यास किया था, जिसका फल बुरा हुआ।

यद्यपि शिवनन्दी मुनिको अपने गुरु द्वारा यह ज्ञात था कि स्वाध्यायका समय श्रवण नक्षत्रके उदय होनेके वाद माना गया है, फिर भी कर्मोंके तीव्र उदयसे वे अकालमें ही शास्त्राध्ययन किया करते थे। फल यह हुआ कि मिथ्या समाधि मरण द्वारा गंगामें उन्होंने मच्छकी पर्याय धारण की। सत्य ही है जिन भगवानकी आज्ञा भंग करनेसे जीवको दुःख भोगना पड़ता है।

संयोग वश एक दूसरे मुनि नदीके किनारे शास्त्राभ्यास कर रहे थे। मच्छने पाठ सुन लिया। उसे जाति-स्मरण हो आया। उसने विचार किया कि मैं विद्या पढ़कर भी मूर्ख बन गया। मैंने जैन धर्मके विमुख कार्य किया है। उसीका फल यह है कि मुझे मच्छ शरीर धारण करना पड़ा। ऐसे ही मच्छने अपने पाप कर्मोंकी आलोचना कर भक्ति सम्यकत्व ग्रहण किया। पश्चात् जिन भगवान की आराधना कर पुण्यके उदयसे स्वर्गमें महर्द्धिकदेव हुआ। वस्तुतः मनुष्य धर्मकी आराधनासे स्वर्ग प्राप्त करता है। अतएव बुद्धिमानों को उचित है कि वे धर्मकी भक्तिपूर्वक आराधना करें।

जिसने सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसे सारी सम्पदाएं प्राप्त होती हैं, वह पवित्रताकी साक्षात मूर्ति बन जाती है। सत्पुरुषों

को उचित है कि भगवानके पवित्र ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करें।

---

## ८८ विनयी पुरुषकी कथा।

स्वर्गके देवताओं तथा महापुरुषों द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार कर विनय धर्मके पालने वाले मनुष्यकी पवित्र कथा लिखते हैं।

वत्स देशमें सुप्रसिद्ध कौशाम्बो नामक एक नगर था। वहांके राजा धनसेन वैष्णव धर्मके मानने वाले थे। उनकी रानी धनश्री रूपवती और विदुषी थी। वह जिन धर्मका पालन करती थी। उसी नगरमें एक सुप्रतिष्ठित नामका वैष्णव साधु रहता था। राजा उसका बड़ा आदर करते थे और स्वयं सिंहासनपर बिठा कर भोजन कराते थे। साधु जल स्तम्भिनी विद्या जानता था। वह बोच यमुनामें खड़ा खडा ईश्वराधना किया करता था, पर डूबता न था। ऐसा प्रभाव देखकर मूर्ख लोग आश्चर्य करते थे। ठीक ही है मूर्ख लोग ऐसी ही क्रियाएं प्रसन्द करते हैं।

विजयार्धमें बसे हुए रथनूपूरके महाराज विद्युत्प्रभ एक वार कौशाम्बीकी ओर आ निकले। वे तो जैनी थे, पर उनकी रानी विद्युद्वेगा वैष्णव धर्म मानने वाली थी। जब ये लोग नदीके तीर-पर पहुंचे तो देखा कि, एक साधु यमुनाके बीचमें खड़ा होकर तपस्या कर रहा है। राजा तो समझ गये कि यह मिथ्या दृष्टि है पर रानी विद्युद्वेगाको बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई तब विद्युत्प्रभने कहा-

अच्छा आओ मैं तुम्हें इसकी मूर्खता बतलाता हूं। पश्चात दोनों चाण्डालका वेष धारण कर नदीमें ढोरोंका चमड़ा धोने लगे। साधुको बुरा मालूम हुआ। वह घबड़ाता हुआ ऊपर चला गया। ये लोग और आगे जाकर धोने लगे। तब वह और आगे बढ़ गया। इस प्रकार विद्युत्प्रभने साधुको बड़ा कष्ट दिया। साधु बिचारेने घबड़ाकर अपना जप-तप ही छोड़ दिया।

पश्चात् राजाने बनमें महल खड़ा कर देना, झूला झूलना अनेक आश्चर्य जनक बातें साधुको बतलायीं। साधु चकित हो गया। उसने सोचा जैसी विद्याय इस चाण्डालके पास हैं, वैसी तो बड़े-बड़े विद्याधरोंके पास भी न होंगी। यदि यह विद्या मुझे प्राप्त हो जाती तो मेरी और भी प्रतिष्ठा होती। थोड़ी देर बाद वह साधु इन लोगोंके पास आया और कहा कि—आप लोग कहांसे आ रहे हैं। आपके पास तो बड़ी करामातें हैं। आपकी शक्ति देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। विद्युत्प्रभ विद्याधरने कहा—योगीजी मैं चाण्डाल हूं। अपने गुरुको खोजमें आया था। उन्हींसे यह विद्या मुझे प्राप्त हुई है। अब तो साधु विद्याके लिये ललचा उठा। उसने नम्र होकर कहा—क्या कृपाकर यह विद्या मुझे दे सकते हैं? विद्याधरने उत्तर देते हुए कहा—देनेमें तो कोई आपत्ति नहीं, पर मैं चाण्डाल हूं और आप वेद वेदांग जानने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण। ऐसी अवस्थामें आपका और मेरा गुरु-शिष्य भाव नहीं बन सकता। आप मेरी प्रार्थना नहीं कर सकते और बिना निवेदनके विद्या फलवती नहीं हो सकती। फिर भी यदि आप यह स्वीकार करें कि जहां मैं आपसे मिलूं आप मेरी चरण धूलि अपने मस्तकपर लगा

कर भक्तिके साथ यह कहें कि आपकी ही कृपासे मैं जीवित हूं। तब तो मैं आपको विद्या प्रदान कर सकूंगा, और तभी वह आपको सिद्ध होगी। साधुने सब शर्तें स्वीकार कर लीं। राजा विद्युत्प्रभ उसे विद्या देकर अपने घर चले गये।

अब सुप्रतिष्ठ साधुको विद्या सिद्ध हो गयी थी। वह भोजन के लिये राजमहलमें आया। राजाने देरसे आनेका कारण पूछा। सुप्रतिष्ठने बात बनाकर कहा कि आज जब तपके प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव आये थे। वे बड़ी देरतक मेरी पूजा करते रहे। विशेष देरका यही कारण है। आज एक बात यह हुई थी कि मैं आकाश गामी हो गया। राजाने कौतुक देखनेकी इच्छा प्रकट की और कहा कि पहले भोजन कर लीजिये तब बादमें देखेंगे।

दूसरे दिन राजा तथा नगरके समस्त प्रतिष्ठित व्यक्ति सुप्रतिष्ठ साधुके मठमें उपस्थित हुए। सबके मनमें कौतुक देखनेकी उत्सुकता थी। सुप्रतिष्ठ अभी कार्यारम्भ करने ही वाला था कि राजा विद्युत्प्रभ तथा उनकी स्त्री उसी चाण्डालके भेषमें आ पहुंचे सुप्रतिष्ठको उनके आनेपर बड़ा क्रोध हुआ। उसने घृणाके साथ कहा—ये दुष्ट यहां कैसे चले आये ? इतना कहना था कि सुप्रतिष्ठकी सारी विद्या नष्ट हो गयी। कुछ भी चमत्कार न दिखला सकनेके कारण उसे लज्जित होना पड़ा। जब राजाने पूछा कि— 'ऐसा क्यों हुआ' तो बाध्य हो उसे सब बातें प्रकट कर देनी पड़ीं। इतना सुनते ही राजाने चाण्डालोंको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। विद्याधरने राजाकी ऐसी भक्ति देखकर सारी विद्या उन्हें दे दी। वे विद्याकी परीक्षा कर राज महलको लौट गये।

विद्युत्प्रभने राजाकी भी परीक्षा लेनेका विचार किया। एक दिन राजा दरबारमें बैठा हुआ था। राजसभा ठसाठस भरी हुई थी। उसी समय राजगुरु चाण्डाल आ गये। उन्हें देखते ही राजा ने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। साथ ही यह भी कहा कि—प्रभो! आपके चरणोंकी कृपासे ही मैं जीता हूं। राजाकी ऐसी भक्ति देख कर विद्युत्प्रभ बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपना सत्यरूप प्रकट किया और राजाको और कई विद्यायें प्रदान कर वापिस लौट गया। ठीक ही है,—गुरु विनयसे संसारकी सारी निधियां प्राप्त हो सकती हैं। ऐसा आश्चर्य जनक कृत्य देखकर धन सेन विद्युद्वेगा एवं और भी लोगोंने श्रावक व्रत लिये। सत्पुरुषोंको चाहिये कि गुरु-की प्रार्थना तथा भक्ति शुद्ध हृदयसे करें। गुरु भक्तिसे कठिनसे कठिन कार्य भी क्षण मात्रमें पूर्ण हो जाते हैं। हम उन गुरु जनोंको नमस्कार करते हैं जो संसार समुद्रसे पार उतारने वाले होते हैं।

जिन जिनेन्द्र भगवानके कमलवत चरणोंकी सेवा सारा विश्व देव विद्याधर आदि करते हैं। उनके बताये हुए पवित्र मार्गसे चलनेवाले मुनिराजोंका जो विनय करते हैं, संसारकी निधियां उनके पैरोंपर लोटती हैं। विनयसे दुर्लभ वस्तुएं सुलभ हो जाती हैं।

---

## ८६ गुरुदत्त मुनिकी कथा

समस्त संसारको केवल ज्ञान रूपी प्रकाशसे आलोकित करने वाले जिनेन्द्र भगवानको सादर नमस्कार कर गुरुदत्त मुनिका कल्याण साधक चरित्र लिखते हैं।

हस्तिनागपुरके धर्मात्मा राजाका नाम विजयदत्त था। उनकी रानी विजया थी। गुरुदत्त उन्हींके पुत्र थे। बचपनसे ही इनकी प्रकृति सरल गम्भीर और सौजन्य पूर्ण थी। सुन्दरतामें भी गुरुदत्त एक ही थे।

अपने पिता विजयदत्तके मुनि हो जानेपर राज्यका सारा भार गुरुदत्तके हाथमें आ गया। उन्होंने बड़ी सावधानता पूर्वक अपना राज्य कार्य करना आरम्भ किया। प्रजा प्रसन्न थी। वह अपने राजाके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती, साधुवाद देती थी। दुःख तो किसीको था ही नहीं। इसका भी एक कारण था। प्रजापर संकट आनेपर गुरुदत्त मुक्त हस्तसे सहायता किया करता था।

द्रोणी पर्वतके समीप चन्द्रपुरी नामकी एक दूसरी पुरी थी। वहांके राजाका नाम चन्द्रकीर्ति था और रानीका चन्द्रलेखा। उनकी अभयमती एक पुत्री थी। गुरुदत्तने अभयमतीसे अपने विवाहके लिये चन्द्रकीर्तिसे प्रार्थना की। किन्तु चन्द्रकीर्तिने प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसमें गुरुदत्तने अपना अपमान समझा और बिना किसी सूचनाके चन्द्रपुरीपर चढ़ाई कर दी। चन्द्रमती तो पूर्वसे ही गुरुदत्तपर मुग्ध थी, जब उसने सुना कि नगरपर हमला हुआ है तो उसने अपने पितासे जाकर कहा कि पिताजी! मेरा तो विचार नहीं था कि मैं अपने सम्बन्धमें आपसे कुछ निवेदन करूं। किन्तु अपने भावी जीवनको सुखमय बनानेके लिये आपसे प्रार्थना करना आवश्यक प्रतीत होता है। विश्वास है कि आप मुझे दुःखमें देखना स्वप्नमें भी नहीं चाहेंगे। अतएव आप मेरा विवाह गुरुदत्त के साथ कर दें। इसीमें मेरा कल्याण होगा। उदार हृदय चन्द्र-

कीर्तिने स्वीकार कर लिया और कुछ दिनों बाद उन्होंने अपनी कन्या अभयमतीका विवाह गुरुदत्तके साथ कर दिया। वैवाहिक सम्बन्धसे उभय दम्पति दोनों सुखी हुए। दोनोंकी पारस्परिक इच्छा पूरी हुई।

हम ऊपर जिस द्रोणी पर्वतका उल्लेख कर चुके हैं, वहां एक विकराल सिंह रहता था। उसके भयसे सारा नगर कांपता था और भय बना रहता था कि न जाने कब किस समय सिंह हमला कर दे। उससे बचनेके लिये सारे नगर वासियोंने गुरुदत्तसे प्रार्थनाकी कि महाराज, पर्वतके हिंसक सिंहसे हमलोग त्रसित हैं। आप ऐसा प्रयत्न कीजिये कि हमारा त्रास दूर हो जाय। उन लोगोंको आश्वासन देकर गुरुदत्त कुछ वीर अनुचरोंके साथ पर्वत पर गया और सिंहको चारों ओरसे घेर लिया किन्तु सिंह वहांसे निकल चुका था और एक अंधेरी गुफामें जाकर छिप गया। गुरुदत्तने मौका उपयुक्त समझा और उसने गुफाके चारों ओर लकड़ियोंका ढेर लगाकर उसमें आग लगवादी। सिंह उस गुफासे निकल न सका और वहीं जलकर राख होगया। मृत्युके समय सिंहको महान कष्ट हुआ था। मृत्युके पश्चात् उसका जन्म चन्द्रपुरी नामक नगरमें एक ब्राह्मणके घर हुआ। उस ब्राह्मणका नाम भरत था और उसकी स्त्रीका विश्वदेवी। पुत्र उत्पन्न होनेकी खुशीमें ब्राह्मणके घर उत्सव मनाया गया और उस बालकका नाम कपिल रखा गया। किन्तु यह बालक जन्मसे ही क्रूर हुआ। कारण संस्कारका प्रभाव तो नष्ट नहीं होता।

पश्चात् गुरुदत्त अपनी पत्नीके साथ राजधानीमें आ गया।

अभयमतीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुवर्णभद्र रखा गया। बचपनसे ही सुवर्णभद्रमें एक अपूर्व तेजस्विता देखी गयी। वह सरलता सुन्दरताकी साक्षात मूर्ति था। बुद्धिमत्ता भी कम नहीं थी। इसलिए सभी लोग उसे प्यारकी दृष्टिसे देखते थे। सुवर्णभद्रकी अवस्था जब इस योग्य हो गयी कि वह अपने राज्यको संभाल लेगा तो जिनेन्द्र भगवानके सच्चे भक्त राजा गुरुदत्त दीक्षा लेकर मुनि हो गये। वे अपनी वैराग्य अवस्थामें अनेक वर्षों तक अनेक देशोंमें धर्मोपदेश करते हुए एक बार चन्द्रपुरीकी ओर आये।

एक दिनकी बात है। गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मणके खेतपर कायोत्सर्ग कर रहे थे। उसी समय कपिल खेतपर पहुंचा। वह अपनी पत्नीसे कह आया था कि मैं खेतपर जाता हूं, तू भोजन लेकर शीघ्र ही आना। पर एक मुनिको ध्यान करते हुए देखकर कपिलने खेत जोतना उचित न समझा और दूसरे खेतपर जाने लगा। जाते समय मुनिसे यह कहता गया कि थोड़ी देर बाद मेरी पत्नी भोजन लेकर आयेगी। उससे आप कह दीजियेगा कि कपिल दूसरे खेतपर गया है। ठीक है मूर्ख मुनियोंके मार्गको न समझ अनर्थ कर बैठते हैं। पश्चात जब कपिलकी पत्नी भोजन लेकर खेत पर आई। वहां उसने अपने पतिको न देखकर मुनिसे पूछा। महाराज! मेरे पतिदेव यहांसे कहां गये? किन्तु मुनिने कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर न पाकर वह वापस लौट आई।

समय अधिक हो गया था। भूखसे ब्राह्मण देवता व्याकुल हो रहे थे। रह रहकर उनको पत्नीपर क्रोध आ रहा था। वह क्रोधित

हो घर पहुंचा और पत्नीको फटकार बताने लगा। मैं तो भूखसे मरा जाता हूं और तेरा ठिकाना ही नहीं। उस नंगेसे पूछकर ही आ सकती थी। ब्राह्मणी घबड़ायी। उसने कहा—इसमें मेरा अपराध क्या है ? मैंने तो उस साधुसे पूछा था। किन्तु उनके उत्तर न देनेपर मैं लौट आई थी। उस ब्राह्मणका क्रोध और भी बढ़ गया। उसने दांत पीसकर कहा—क्या उसने तुम्हें पता नहीं बताया। अच्छा अभी जाकर उसकी खबर लेता हूं। हमारे पाठकोंको स्मरण होगा कि कपिल पूर्व जन्ममें सिंह,था और उसकी मृत्यु गुरुदत्त मुनि द्वारा उस अवस्थामें हुई थी जब वे राजा थे। यदि कपिलको पूवसे ही मालूम होता कि ये मेरे शत्रु हैं तो उसने अबतक बदला चुका लिया होता। किन्तु उसे कोई जरिया नहीं मिला था। अब उस शत्रुताको जाग्रत करनेके लिये उक्त घटना सहायक हो गयी। कपिल क्रोधित हो मुनिके समीप आया। उसने मुनिको सेमल रुईमें लपेट कर उसमें आग लगा दी। मुनिपर कठिन उपसर्ग हुआ। उन्होंने धीरताके साथ सहन किया। अन्तमें शुक्लध्यानके प्रतापसे समस्त घातक कर्म नष्ट होकर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवोंने पुष्पोंकी वर्षा की, समारोह आनन्द मनाया। यह देखकर कपिलको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा बड़ी निर्दयताके साथ मैंने साधुको जलाया है। उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। उसने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर भगवानसे अपने अपराधकी क्षमा मांगी। भगवानके उपदेशको उसने आतुरतासे सुना। प्रभाव भी गहरा पड़ा। अपने पापोंके प्रायश्चित्त करनेके लिये कपिल मुनि हो गया। सत्पुरुषोंका संग सदा सुखदायी होता है। एक

महा क्रोधी ब्राह्मण क्षण भरमें सब कुछ त्याग कर योगी बन गया। अतएव भव्यजनोंको चाहिए कि वे सदा स्वयं और अपनी संतान को सत्संगतिसे पवित्र करते रहें।

जिनेन्द्र भगवानका सुखदायी शासन सदा संसारमें रहे। उनको कृपासे जिन्होंने आत्मत्व प्राप्त किया ऐसे गुरुदत्त मुनि एवं हमारे परम गुरुःश्री प्रभाचन्द्राचार्य हमें आत्म सुख प्रदान करें।

---

## ९० अवग्रह नियम लेनेवालेकी कथा

विश्वके सर्वान्तः करणमें आत्म ज्ञान उद्भासित करनेवाले जिनेन्द्र भगवानके चरणोंमें नमस्कार कर—उपाधान अवग्रह की पवित्र कथा लिखी जातो है, जिसने प्रतिज्ञा पूर्वक कार्य सम्पन्नकर सुखदायक फल प्राप्त किया था।

अहि छत्रपुर एक प्रसिद्ध नगरी थी। वहांके तत्कालीन महाराज वसुपालकी बुद्धिमत्ता सारे नगरमें प्रख्यात थी। वे जैन धर्मपर बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनको रानी बसुमनी भो उन्होंकी अनुगामिनी थी। उनका भी धर्मपर राजासे कम प्रेम नहीं था। एक बारकी बात है, सुपालने 'सहस्र कूट' नामका एक रमणीक विशाल जिन मंदिरका निर्माण कराया। उसमें भगवान पार्श्वनाथकी प्रतिमा स्थापित हुई। प्रतिमापर लेप चढ़ानेके लिये एक प्रसिद्ध चित्रकार बुलाया। उसने बड़ो सुन्दरतासे लेप चढ़ाया। किन्तु प्रातःकाल जब देखा गया तो लेप गिर चुका था। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। ऐसे कई दिन बीत गये। शामको लेप चढ़ता था और रातको गिर

जाता था। इससे वहांके नागरिक तथा राजा बड़े ही दुखी हुए। बात यह थी कि चित्रकार मांसाहारी था। उसकी अपवित्रतासे प्रतिमापरसे लेप गिर जाता था। चित्रकारको एक मुनि द्वारा यह बात मालूम हुई कि प्रतिमा अतिशय वाली है। कोई शासन देवी तथा देव उसकी रक्षाके लिये नियुक्त हैं। अतएव मुझे तबतकके लिये मांस न खानेका व्रत ले लेना चाहिए जबतक कार्य पूरा न हो जाय। पश्चात् दूसरे दिन उसने लेप किया अबकी बार वह ठहर गया। वस्तुतः व्रती पुरुष ही कार्यकी सिद्धि करते हैं। राजाने प्रसन्न होकर लेपकारका सत्कार किया। लेपकारके व्रतसे हमें शिक्षा मिलती है कि, और लोगोंको एवं मुनियोंको भी ज्ञान प्रचार प्रभावना आदिमें अवग्रह या प्रतीज्ञा करनी चाहिए।

जिनेन्द्र भगवानके प्रचारित ज्ञान द्वारा हमें आत्म उपलब्धि हो, हम सर्वज्ञ ( केवल ज्ञानी ) बनें। इसी आत्म सुखके लिए देव, विद्याधर चक्रवर्ती आदि महापुरुष भगवानकी आराधना करते हैं।

---

## ६१ अभिमान करनेवालीकी कथा

विशुद्ध, निर्मल केवल ज्ञानके धारक जिन भगवानको प्रणाम कर बुरा फल प्राप्त करनेवालीकी कथा लिखते हैं, जिससे आप अभिमान त्याग करनेका प्रयत्न करेंगे।

बनारसके राजा मोरध्वज प्रजा पालक थे। उनकी रानी बसुमती अत्यन्त रूपवती थी। उसे राजा बहुत प्यार करते थे।

गङ्गातटपर पलास नामक एक ग्राम बसा हुआ था। वहां

अशोक नामका एक ग्वाल रहता था। उस ग्वालका नियम था कि वार्षिक लगानमें वह राजाको एक हजार घड़े घी दिया करता था। उसकी स्त्री नन्दा निसन्तान थी। अशोकका प्रेम भी उसे प्राप्त न था। अपनी पहली पत्नीको निसन्तान देखकर अशोकने सुनन्दा नामकी एक दूसरी स्त्रीसे शादी कर ली। कुछ समय तक तो दोनों सौतोंमें सद्भाव रहा, पर बादमें झगड़ा होने लगा। इससे अब वह घबरा उठा और अपनी सारी सम्पतिको उसने दोनों पत्नियोंमें बांट दिया। नन्दा अलग रहने लगी और सुनन्दा पतिके पास ही रहती थी। किन्तु नन्दामें एक विशेष गुण था। वह दूध दहीके बर्तनोंको सदा साफ रखती थी और अपने नौकर ग्वालोंके साथ कुटुम्बकी तरह व्यवहार करती थी। उन्हें प्रत्येक पर्वोंके अवसरपर दान मानादिसे प्रसन्न रखती थी। ग्वाल लोग भी उसे बहुत चाहते थे और अपनी समझके अनुसार सदा काममें जुटे रहते थे। जब वर्ष पूरा होता तो नन्दा, राज करके रूपमें ५०० घड़े घीके अपने पतिको दे दिया करती थी। किन्तु सुनन्दामें यह बातें न थीं। उसे अपनी सुन्दरताका बड़ा अभिमान था। उसका सारा समय साज शृङ्गारमें ही व्यतीत हो जाता। उसे हाथसे काम करनेमें लज्जाका बोध होता था। सब काम नौकर ही करते थे। नौकरोंके साथ भी उसका सद्व्यवहार नहीं था। वह सदा उन्हें गालियोंसे अपमानित किया करती थी। नौकर भी उससे अप्रसन्न रहा करते थे। वे अपनी शक्तिके अनुसार सुनन्दाको हानि पहुंचानेका प्रयत्न करते थे। यहां तक कि जो ग्वाले गायोंको चरानेके लिये जंगलमें ले जाते वहां स्वयं दूध पी लिया करते थे। इससे सुनन्दाको पहले वर्षमें ही

भीकी कमी हुई। उसने राज्य करका आधा भाग भी नहीं चुकाया। जब अशोकको यह बात मालूम हुई तो उसने सुनन्दाको घरसे निकाल दिया। नन्दा पुनः अपने पतिकी प्रेम पात्रा हुई, उसका खोया हुआ अधिकार प्राप्त हुआ। जिस भांति नन्दा अपनी गृहस्थीको चलानेके लिये सदा दान-मानसे सबको सन्तुष्ट रखती थी, उसी प्रकार भव्यजनोंका पारमार्थिक कार्योंके लिये तथा जैन धर्मकी उन्नतिके लिये मुक्तहस्तसे दान करना चाहिये। इससे उनका कल्याण होगा और साथही लाभ की प्रगति भी।

जो महा पुरुष स्वर्ग-मोक्षके प्रदायक जिन भगवानकी पूजा-प्रभावना किया करते हैं, जो जैन धर्मपर नैष्ठिक श्रद्धा रखते हैं, वे संसारमें सर्वोच्च यश प्राप्त करते हैं। उन्हें केवल ज्ञानकी उपलब्धि होती है।

---

## ९२ निह्नव-असल बात छुपानेवालेकी कथा

जिनकी सर्वज्ञतामें यह सारा विश्व परमाणु रूप दीखता है, ऐसे जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर निह्नव जो बात जैसी हो उसे उसी प्रकार न प्रकट कर छुपाने, की कथा लिखते हैं।

चण्ड प्रद्योत, उज्जैनके राजा धृतिषेणका पुत्र था। उसकी माता मलयावती थी। वह गुणज्ञ भी था और रूपवान भी। पुण्योदयसे उसे सुखके सारे साधन उपलब्ध थे।

एक बारकी घटना है। दक्षिण देशके वेना तट निवासी सोमशर्माका काल संदीव नामक विद्वान पुत्र उज्जैनमें आया। वह कई

भाषाओंका जानकार था। इसलिये राजाने अपने पुत्र चण्डप्रद्योत-को पढ़ानेके लिये रख लिया। काल संदीवने चण्डप्रद्योतको कई भाषाओंके ज्ञान कराये। कुछ दिनों बाद वे म्लेच्छ-अनार्य भाषा पढ़ाने लगे। अब राजकुमारको कठिनाई पड़ने लगी। वे उस भाषाका शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते थे। काल संदीवने बड़ी चेष्टा की पर सफल न हो सका। एक दिन उसे बड़ा क्रोध आया और उसने चण्ड प्रद्योतको एक लात जमा दी। चण्ड प्रद्योत भी राज-कुमार ही था। वह भी विगड़ गया और कहा—गुरु महाराज मैंभी इसका बदला लूंगा। मैं राजा होनेपर आपका यह पैर कटवा लूंगा ठीक ही है, बालक तो स्वभावसे ही चंचल होते हैं। काल संदीव अब अधिक दिनोंतक यहां न रहा। वह दक्षिणकी ओर चला गया। संयोगसे काल संदीवको एक मुनिका उपदेश सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उपदेशका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह मुनि हो गया।

राजा घृतिषेण भी राज्यका भार चण्ड प्रद्योतको सौंपकर साधु हो गया था। सन्देह नहीं कि चण्डके शासनमें प्रजा सुखी थी वह शासनको बागडोर बड़ी नीतिसे चलाता था। प्रजा हितके लिये सदा तैयार रहता था।

एक बार चण्ड प्रद्योतके यहां यवन राजका पत्र आया। पत्र अनार्य भाषामें लिखा हुआ था। कर्मचारियोंसे वह नहीं पढा गया पर जब राजाने देखा तो उन्हें पढ़नेमें जरा भी कठिनाई न हुई। पत्र पढ़कर राजाको अपने गुरु काल संदीवपर बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे अपनी प्रतिज्ञा भूल गये। तत्पश्चात् राजाने काल संदीव-

का पता लगाकर नगरमें बुलवाया और भक्तिके साथ उनकी पूजा की। गुरुओंके वचन वैसे ही सुखदायी होते हैं जैसे रोगीको औषधिकी मात्राएं।

यहां काल संदीव मुनि श्वेत संदीव नामक एक भव्यको दीक्षा देकर स्वयं विहार कर गये। अनेक स्थानोंमें उपदेश देते हुए वे भगवान महावीरके समवसरणमें पहुंचे। भगवानके दर्शनसे उन्हें अपूर्व शान्ति मिली। वे भगवानके उपदेशके लिये वहीं रुक गये।

उनके साथ श्वेत संदीव मुनि भी थे। वे समवसरणके बाहर आतापन योग द्वारा तप कर रहे थे। भगवानका दर्शनकर जब महा मण्डलेश्वर श्रेणिक जाने लगे तो उन्होंने श्वेत संदीव मुनिको देख कर कहा—आपके गुरु कौन हैं? श्वेत संदीव मुनिने कहा कि राजन! मेरे गुरु श्री वद्ध मान भगवान हैं। इतना कहना था कि उनका शरीर कृष्ण वर्णका हो गया। श्रेणिक चकित हुए। उन्होंने गणधर भगवानसे इसका कारण पूछा। उन्होंने बतलाया—श्वेत संदीवके गुरु काल संदीव हैं जो इस समय यहीं उपस्थित हैं। उनका उन्होंने निह्नव किया सच्ची बात न बतलायी। अतएव ये कृष्ण वर्णके होगये। श्रेणिकने श्वेत संदीवको समझाया कि महाराज आप की अवस्थाके विपरीत यह हुआ है। ऐसी बातोंसे मनुष्यको पाप बन्धनमें बंधना पड़ता है। आपसे निवेदन है कि आगेके लिये ऐसी बात न कहनेकी प्रतिज्ञा कर लें। श्रेणिककी शिक्षाका श्वेत संदीव मुनिपर बड़ाही असर पड़ा। उन्होंने अपनी भूलपर पश्चाताप किया। इस आलोचनासे परिणाम समुन्नत हुआ। उन्होंने शुक्ल ध्यान द्वारा कर्मोंका विनाशक केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। संसारमें उनकी

पूजा होने लगी। अन्तमें विघातक कर्मोंका विनाशकर उन्होंने मोक्ष सुख प्राप्त किया। इस वृतान्तसे भव्य जनोंको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि, वे गुरु आदिका निह्नव न करें। गुरु मोक्ष देने वाला होता है, उसकी महिमा अपार है।

हम श्वेत संदीव मुनिसे निवेदन करते हैं कि वे संसारकी वाधा से छुड़ाकर हमें अनन्त मोक्ष सुख प्रदान करें। वे केवल ज्ञान रूपी नेत्र धारण करने वाले हैं, देव विद्याधर चक्रवर्ती द्वारा पूजित हैं। वे अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्यसे युक्त हैं, उनकी कृपासे भव रूपी समुद्रको हम सरलता पूर्वक पार कर सकेंगे।

---

## ६३ अक्षरहीन अर्थकी कथा

जिनेन्द्र भगवानके पाद-पद्मोंमें नमस्कारकर अक्षरहीन अर्थकी कथा लिखते हैं।

मगध देशमें राजगृह नामकी एक नगरी है। यह कथा उस समय की है, जब वहांके राजा वीरसेन थे। उनकी रानी वीरसेना थी। उनके पुत्रका नाम सिंह था। सिंहके पढ़ानेके लिये एक विद्वान ब्राह्मण नियुक्त हुए थे, जिनका नाम सोमशर्मा था।

एक अपर राज्य पोदनापुरके महाराज सिंहरथसे वीरसेनकी पुरानी शत्रुता थी। वीरसेनने उसपर हमला किया। वहांसे वीरसेनने अपनी राज्य व्यवस्था सम्बन्धी एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अन्य विषयोंके अतिरिक्त एक वाक्य यह भी लिखा था कि— "सिंहो ध्यापयि तव्य"। पत्र पहुंचते ही एक अर्धदग्धने उसे पढ़ा।

उसने सोचा 'ध्यै' धातुका अर्थ स्मृति या चिन्ता करना हुआ। अतः इस वाक्यका यह अर्थ है कि राज्य कुमारपर अब राज्य चिन्ताका भार सौंपा जाय। उसके पठन पाठनकी अब आवश्यकता नहीं। किन्तु उक्त पदका अर्थ यह नहीं था। वाक्यके पृथक पद करनेसे "सिंहः ध्यापयितव्यः" ऐसा पद बनता है, जिसका अर्थ सिंहका पढ़ाना होता है। किन्तु पत्र पढ़ने वालेने संदिग्ध अकारपर ध्यान न दिया और उसने 'ध्यै' का अर्थ चिन्ता करके, राजकुमार का पठन-पाठन छुड़ा दिया। यद्यपि व्याकरणकी रीतिसे दोनों तरहके वाक्य बनते हैं और दोनों ही शुद्ध हैं, किन्तु यहां केवल व्याकरणकी आवश्यकता न थी, अनुभव भी चाहिए था।

फल यह हुआ कि जब राजा आये तो उन्होंने सबसे पूर्व राज कुमारके पठन-पाठन छुड़ानेका कारण पूछा। जब उन्हें पूरी बात मालूम हुई तो उन्होंने अर्धदग्धको कड़ी सजा दी। इस कथासे सत्पुरुषोंको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि वे ऐसा प्रमाद न कर बैठें जिससे उन्हें क्षति उठानी पड़े।

जैसे गुण विहीन दवा रोगीको लाभ नहीं पहुंचा सकती, वैसेही व्यंजन रहित शस्त्र अथवा मंत्र, लाभ नहीं पहुंचा सकते। अतएव विद्वानोंको शुद्ध रीतिसे शास्त्राभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसे हानिकी सम्भावना न रहेगी।

---

## ६४ अर्थहीन वाक्यकी कथा

स्वर्गके देवों द्वारा पूजे जाने वाले जिनेन्द्र भगवानको नम-

स्कार कर अर्थहीन वाक्यकी कथा लिखते हैं।

अयोध्याके राजाका नाम वसुपाल था। उनकी रानी वसुमती थी। वसुपालका एक अत्यन्त चतुर पुत्र था जिसका नाम था वसुमित्र। वसुमित्रको पढ़ानेके लिये गर्ग नामक एक विद्वान नियुक्त हुआ।

एक वारकी घटना है। वसुमित्रने उज्जैनके राजा वीरदत्तपर चढ़ाई की। उस समय उन्होंने राज्य व्यवस्थाके लिये अयोध्या पत्र लिखा। अपने कुमारके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा था—

"पुत्रो ध्यापयितव्यो सौ वसुमित्रोति सादरम्।
शालि भक्तं मसिस्पृक्तं सर्पियुक्तं दिनं प्रति॥
गर्गोपाध्याय कस्योच्चै दीयते भोजनाय च।

भाव यह होता है कि वसुमित्रके पढ़नेकी पूरी व्यवस्था हो, किसी प्रकारकी त्रुटि न होने पाये। अध्यापक पण्डितजीके खाने पीनेकी तकलीफ न हो—उन्हें घी, चावल दूध आदि दिया करना। किन्तु उक्त श्लोकमें 'मसिस्पृक्त' एक शब्द ऐसा है, जिसके अर्थमें गल्ती हो गयी। जब पंडितजी भोजन करने बैठते तो चावलोंमें घी आदिके साथ थोड़ा कोयला भी मिला दिया जाता था।

कुछ दिनोंके पश्चात् जब राजा विजय प्राप्त कर लौटे तो उन्हों ने कुशलादि पूछा। पंडितजीने बतलाया कि आपके पुण्य प्रसादसे मैं कुशल हूं, पर आपकी परम्पराके अनुसार मुझे भोजनके साथ कोयला भी दिया जाता है जो मुझसे नहीं खाया जाता। अतः मुझे आज्ञा दे दें तो अच्छा हो। राजाको पंडितजीकी बातें सुनकर पड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने रानीसे छा ऐसा क्यों हुआ। रानी

ने कहा कि आपकी आज्ञानुसार ही तो ऐसा हुआ है। पत्र पढ़ने वालेने ऐसा ही अर्थ किया था। इतना कहकर उन्होंने राजाके हाथमें पत्र दे दिया। राजा बड़े ही क्रोधित हुए। उन्होंने पत्र पढ़ने वालेका निर्वासित कर दिया। अतएव बुद्धिमानोंको चाहिये कि वे ऐसा अनर्थ करनेसे सर्वथा वंचित रहें।

जो विचार पूर्वक भगवान जिनेन्द्रके आदेशके अनुसार आचरण करेंगे, वे अनन्त ज्ञानका सर्वोच्च लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

'मसिस्पृक्त' शब्दका भाव यह था कि पण्डितजीको भोजनादि के अतिरिक्त लिखनेके लिये स्याही दी जाय।

---

# ६५ व्यंजनहीन अर्थकी कथा

विश्वको केवल ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने वाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर व्यंजनहीन अर्थ करने वालेकी कथा लिखनेमें प्रवृत्त होते हैं।

हस्तिनापुर कुरु जाँगल देशकी राजधानी थी। वहांके राजाका नाम महापद्म था। वे स्वभावसे ही धर्मात्मा एवं जिनेन्द्र भगवानके भक्त थे। उनकी रानी पद्मावती अत्यन्त रूपवती थी। पतिकी तरह वह भी व्रत नियमादि किया करती थी। जिन धर्मपर उनकी अगाध श्रद्धा थी।

सुरम्य देशके अन्तरगत पोदनापुर नामक एक दूसरा नगर था। वहांके राजा सिंहनादसे महापद्मकी पुरानी शत्रुता थी। एक बार महापद्मने उसपर चढ़ाई की। पोदनापुरमें 'सहस्रकूट' नामक

एक प्रसिद्ध जिन मन्दिर था। हजार स्तम्भ वाले विशाल मन्दिर देखकर महापद्मके हर्षका ठिकाना न रहा। उनके हृदयमें धर्म-प्रेमका प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने अपने नगरमें तदनुरूप मन्दिर निर्माण करनेका निश्चय कर लिया। इसके लिये महापद्मने राजधानीमें एक पत्र लिखा—

"महास्तम्भ सहस्रस्य कर्तव्य संग्रहो ध्रुवम्।"

अर्थात शीघ्रता पूर्वक एक हजार खम्भे संग्रह किये जांय। किन्तु पत्र पढ़ने वालेने भूलसे 'स्तम्भ' के स्थानपर 'स्तभ' पढ़ा और तत्काल एक हजार बकरोंको इकट्ठा करनेकी उसने आज्ञा दी बकरे मंगाकर आदर पूर्वक लालन-पालन होने लगा।

जब महाराज यात्रासे लौटे तो उन्होंने अपने कर्मचारियोंसे पूछा कि मेरी आज्ञा तामील की गयी? उत्तरमें उन्हें बकरे दिखलाये गये। महाराजने कहा – मैंने तो हजार स्तम्भ संग्रह करनेके लिए लिखा था, तुम लोगोंने यह क्या किया? कर्मचारियोंने हाथ जोड़ कर कहा—इसमें हमारा अपराध नहीं, पत्र पढ़ने वालेने ऐसा ही कहा। महाराज तो क्रोधित थे ही, उन्होंने पत्र पढ़ने वालेको प्राण-दण्डकी आज्ञा दी। अतएव ज्ञान ध्यान आदि कार्योंमें किसी प्रकार प्रमाद न होना चाहिये। प्रमादका परिणाम सदा भयावह होता है।

जो महानुभाव जिनेन्द्र भगवानके आदेशके अनुसार आचरण करेंगे, उनमें प्रमादकी प्रवृत्ति स्वप्नमें भी उत्पन्न न होगी। वे व्रत उपवासादि धर्म कार्यों द्वारा केवल ज्ञानका आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

---

# ६६ श्रीधरसेनाचार्यकी कथा

केवल ज्ञान रूपी सर्वोच्चनेत्रके धारक जिनेन्द्र भगवानको कर बद्ध नमस्कार कर श्रीधरसेनाचार्यकी कथा लिखते हैं। यह कथा हीनाधिक अक्षरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली है।

जैनधर्म रूपी समुद्रके चन्द्र श्रीधर सेनाचार्य गिरनार पर्वतकी एक गुफामें निवास करते थे। उन्हें निमित्त ज्ञान द्वारा ज्ञात हुआ कि अब उनको अवस्था बहुत कम रह गयी है। उन्हें दो ऐसे विद्यार्थियोंकी आवश्यकता हुई, जिन्हें वे शास्त्र ज्ञान करा दें। इसी विचारसे तीर्थयात्रा करते हुए आंध्रसे वेनातट आये। उन्होंने संघके अधिपति महासेनाचार्यको इस आशयका एक पत्र लिखा—महावीर भगवानका शासन स्थाई हो। लिखनेका तात्पर्य यह कि कलियुगमें अङ्गादिका ज्ञान न रहेगा फिर भी शास्त्र ज्ञानकी रक्षा, महासेना चार्य पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने संघके पुष्पदन्त और भूत बलि नामक दो मुनियोंको धर सेना चार्यके पास भेजा। जिस दिन ये मुनि आचार्यके पास पहुंचने वाले थे उसी दिन रात-को उन्होंने एक स्वप्नमें दो बैलोंको भक्ति पूर्वक अपने पैरोंमें पड़ते देखा। उन्हें अपूर्व प्रसन्नता हुई। वे यह कहते हुए उठ बैठे कि श्रुति देवि तू संसारमें विजयी हो। स्वप्नका तत्काल फल हुआ। दोनों मुनि प्रातःकाल पहुंचे। उन्होंने आचार्यको भक्ति पूर्वक सिर झुकाया उनको स्तुतिकी। आचार्यने आशीर्वाद देते हुए कहा तुम सदा महावीर भगवानके शासनकी सेवा करो। अज्ञानी और विषयी जोवोंको कर्तव्यको ओर प्रेरित करो। उन्हें सुझाओ कि, वे अपने पतं कर्तव्यको फिरें।

पश्चात् आचार्यने दो दिनोंतक मुनियोंकी बुद्धि शक्ति और सहन शीलताका परिचय प्राप्त कर उन्हें दो विद्यायें सिद्ध करनेको दीं। आचार्यने परीक्षाके लिये मंत्रोंके अक्षर न्यूनाधिक कर दिये थे। दोनों मुनि आचार्यकी आज्ञाके अनुसार गिरनार पर्वतके एकान्त भागमें भगवान नेमिनाथकी निर्वाण शिलापर विद्या सिद्ध करने लगे। जब मन्त्र साधनकी अवधि पूरी होने लगी तो इनके समक्ष दो देवियां उपस्थित हुईं—एक अंधी थी और दूसरीके दांत बाहर निकले हुये थ। कुरूप देवियोंको देखकर इन्हें आश्चर्य हुआ। सोचने लगे कि देवोंका रूप तो ऐसा नहीं होता। उन्होंने मन्त्रोंकी जांच की। अबकी बार दोनों देवियां सुन्दर वेषमें दीख पड़ीं। मुनि लोग गुरुके पास लौट आये। धरसेना चार्य उनकी तीक्ष्ण बुद्धिसे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने योग्य समझ काफी शास्त्रा भ्यास कराया। गुरु सेवाके फल स्वरुप यही मुनि जैन सिद्धान्तके उद्धारकर्ता हुए।

जैन सिद्धान्तके अचार्य श्रीधर सेनाचार्य एवं श्री-पुष्पदन्त और भूत बलि आचार्यके आशीर्वादसे हमारी बुद्धि पवित्र जैन धर्ममें प्रवृत्त हो और हम जीव मात्रके हितैषी बनें।

— —

## ९७ सुब्रत मुनिराजकी कथा

अनन्त ज्ञान स्वरुप एवं देवों द्वारा रचित जिन भगवानके चरणोंमें नत होकर सुब्रत मुनिराजकी कथा लिखते हैं।

अन्तिम नारायण श्रीकृष्णका जन्म द्वारिका पुरीमें हुआ।

उनकी कई पत्नियां थीं। पर सत्यभामापर उनका अधिक प्रेम रहता था। श्रीकृष्ण तीन खण्डके अधिपति थे। उनकी सेवाके लिये राजा महाराजाओंका जमघट लगा रहा करता था।

एक दिनकी बात है। श्रीकृष्ण नेमिनाथके दर्शनके लिये समवशरणमें जा रहे थे। उन्होंने रास्तेमें सुव्रत मुनिराजको देखा। वे रुग्णावस्थामें पड़े हुये थे। उन्हें देखते ही श्रीकृष्ण अधीर हो उठे। उन्होंने शीघ्र ही जीवक नामक वैद्यको बुलाकर औषधिकी व्यवस्था करा दी। वैद्यके कथनानुसार श्रावकोंके घरोंमें औषधि मिश्रित लड्डू तैयार करनेकी आज्ञा दी। इस व्यवस्थासे मुनिका रोग दूर हो गया। वे स्वस्थ हो गये। इस औषधिदानसे श्रीकृष्णके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध हुआ।

एक दिन श्रीकृष्णने मुनिराजको स्वस्थ अवस्थामें देखा। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पूछा—भगवन ! अच्छे तो हैं ? उत्तरमें मुनिराजने कहा—शरीर तो क्षण भंगुर है. इसमें अच्छा और बुरा क्या ? न तो मुझे रोग होनेका खेद है न निरोगकी प्रसन्नता। मैं तो आत्म उपलब्धिमें लगा हूं जो मेरा प्रधान कर्तव्य है। मुनिकी ऐसी निस्पृहता देखकर श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुये। मुनिको नमस्कार कर बड़ी प्रसंशा की।

किन्तु मुनिकी इस प्रकारकी बातें सुनकर जीवक वैद्यको बड़ा दुख हुआ। यहां तक कि वह मुनिसे घृणा करने लगा। उसने सोचा—मैंने मुनिका इतना उपकार किया, पर उन्होंने मेरे उपकार का ज़रा भी जिक्र नहीं किया। मुनिको कृतघ्न समझ जीवकने बुराई की। इस पापबन्धसे जीवकको बन्दर योनिमें जाना पड़ा। सत्य

है अज्ञानी साधुओंके आचार विचार व्रत नियमादिसे अनभिज्ञ होते हैं और उनकी निन्दा कर पाप कर्ममें बंध जाते हैं।

एक बारकी घटना है। जोवक वैद्य बन्दरके रूपमें जिस वृक्षपर बैठा हुआ था, उसीके नीचे सुव्रत मुनिराज ध्यान कर रहे थे। इसी समय वृक्षकी एक डाली टूटकर मुनिपर गिर पड़ी। उसकी तेज नोक मुनि महाराजके पेटमें घुस गयी, जिससे खून बहने लगा। जब उस बन्दरने मुनिको इस हालतमें देखा तो उसे जाति स्मरण हो आया। वह पूर्व जन्मकी शत्रुता भूलकर कई बन्दरोंको बुला लाया। सबने मिलकर बड़ी सावधानीसे उस टहनीको खींचा। पूर्व जन्मका संस्कार तो था ही। उसने जङ्गलसे जड़ी बूटी लाकर मुनि-के घावपर निचोड़ दिया। इससे मुनिराजको शान्ति मिली।

एक पशुमें ऐसा भाव देखकर मुनिने अवधि ज्ञान द्वारा विचार किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि यह जीवक वैद्य हैं। मुनिने उसे धर्म का उपदेश दिया। मुनिपर उसको बड़ी श्रद्धा हुई। उसने भक्ति पूर्वक अणु व्रतोंको ग्रहण किया और अन्तमें सात दिनका सन्यास लेकर मरा। इस धर्म-प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें वह देव हुआ। वस्तुतः धर्म प्रेम करनेवालोंके लिये असम्भव वस्तु भी सम्भव हो जाती है। धर्मका ही प्रभाव था कि एक पशु—बन्दर देव हो गया। अत-एव संसारमें धर्म और गुरुसे बढ़कर कोई पदार्थ नहीं।

जैन धर्म अनन्त कालतक संसारको प्रकाशित करता रहे। उसके विमल प्रकाशमें प्राणिमात्रको मोक्ष सुखके लिये जैन सिद्धान्त का पालन करें।

# ९८ हरिषेण चक्रवर्तीकी कथा

अपने केवल ज्ञान रुपी प्रकाशक नेत्रसे विश्वके अन्धकारको दूर करनेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर हरिषेण चक्रवर्तीकी कथा लिखनेमें प्रवृत्त होते हैं।

अंग देशमें प्रख्यात कांपिल्य नगर था। वहांके राजा सिंहध्वज थे। इनकी रानी विप्रा थी। विप्राके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम हरिषेग रखा गया। हरिषेण सुन्दर बुद्धिमान और तेजस्वी था। उसे सब लोग सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे।

हरिषेणकी माताकी धर्मके प्रति अगाध श्रद्धा थी। वह अठाईके पर्वमें सदा उत्सव मनाती तथा रथ निकलवाया करती थी। किन्तु सिंहध्वजकी दूसरो रानो लक्ष्मीवती जैन धर्मकी निन्दा किया करती थी और उनकी जैन धर्मपर श्रद्धा न थी। एकबार लक्ष्मीवतीने अपने पतिसे कहा—पतिदेव! आप ऐसो आज्ञा दीजिये कि प्रथम ब्रह्माजीका रथ ही शहरमें घूमे। राजाने इससे होनेवाले परिणामपर विचार किये बिना ही लक्ष्मोवतोका कहना मान लिया। इससे विप्राको अत्यन्त दुःख हुआ। उसने प्रतीज्ञा की कि मैं भोजन तभी करूंगी, जब मेरा रथ पहले निकलेगा। ठीक है जिसकी धर्म पर श्रद्धा होती है, उसको प्रतीज्ञा भी धर्मके अनुसार ही हुआ करती है।

जब हरिषेण भोजनके लिये आया तो माताको उदास देखकर उसे बड़ा खेद हुआ। कारण मालूम होनेपर वह एक क्षणके लिये भी वहां न रुका। वह चलकर चोरोंके एक गांवमें पहुंचा। उस गांवमें

एक तोता रहता था, जो चोरोंका सिखाया पढ़ाया था। उसने राजाको देखते ही अपने मालिकोंसे कहा—यह राजकुमार है, इसे पकड़ लो। तोताके कहनेपर चोरोंने ध्यान न दिया, अतएव हरिषेणपर कोई विपत्ति न घटी। वह वहाँसे आगे निकल गया।

पश्चात् हरिषेण शतमन्यु नामक एक तपस्वीके आश्रममें पहुंचा वहाँ भी एक तोता रहता था। किन्तु यह पहले तोतेकी तरह दुष्ट न था। हरिषेणका मुखमण्डल देखकर ही वह समझ गया कि यह कोई राजकुमार है। उसने अपने मालिक तपस्वियोंसे कहा—देखिये यह कोई राजकुमार जा रहा है, आप लोग इसका आदर करें। राजकुमारको आश्चर्य हुआ। उन्होंने तोतेसे पूछा—तेरे एक भाईने तो मुझे पकड़नेके लिये कहा तू आदरके लिये कह रहा है। तोतेने कारण बतलाते हुए कहा—राजकुमार, हम दोनों भाई भाई हैं। किन्तु मुझमें विशेषताका कारण यह हुआ कि मैं तपस्वियोंके हाथमें पड़ा और वह चोरोंके। मैं महात्माओंको अच्छी बातें सुना करता हूं और वह चोरोंकी मारकाटकी बातें। संगतिके असरसे ऐसा हुआ।

उक्त आश्रमके स्वामी शतमन्यु पूर्वमें चम्पापुरीके राजा थे। उनकी रानी नागवती थी। उनके एक पुत्र था जनमेजय और कन्या मदनावली थी। शतमन्यु जनमेजयको राज्य देकर स्वयं तपस्वी हो गये। एक बार जनमेजयसे किसी ज्यौतिषीने बतलाया कि मदनावली चक्रवर्ती राजाकी पत्नी होगी। जब मदनावलीकी भविष्यवाणी की खबर चारों ओर फैली तब देश देशके महाराजाओंने विवाहका

प्रस्ताव किया। इनमेंसे वड़ देशका राजा कलकल भी था। किन्तु जनमेजयने अस्वीकार कर दिया। वह कलकलसे नाराज हुआ और उसने जनमेजयपर हमला किया। इधर जनमेजय भी डरपोक न था। उसने अपनी सेनाके साथ आक्रमणकारियोंका मुकाबला किया। दोनों ओरसे गहरी मुठभेड़ हुई। एक तरफ तो युद्ध छिड़ा था, दूसरी ओर मदनावलीकी माता नागवती अपनी पुत्रीको लेकर सुरङ्गके रास्तेसे निकल भागी। पाठकोंको स्मरण होगा कि यह नागवती शतमन्युकी पत्नी है। युद्धका समाचार सुनते ही शतमन्युने नागवती और मदनावलीको आश्रममें ही रख लिया।

राजकुमार हरिषेणका ऊपर जिक्र आ चुका है। मदनावली उसे चाहने लगी थी। तपस्वियोंको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने हरिषेणको आश्रमसे निकाल दिया। यद्यपि हरिषेणको बड़ा दुःख हुआ, पर वाध्य होकर निकल जाना पड़ा। राजकुमारने चलते हुए यह प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा इस राजकुमारीसे विवाह होगा तो मैं अपने समस्त देशमें चार चार कोसकी दूरीपर विशाल जिन मंदिर बनाऊंगा।

सिन्धु देशके विशालनगर सिन्धुतटके राजा सिन्धुनदकी कई सौ पुत्रियाँ थीं। वे अत्यन्त सुन्दरी थीं। इनके सम्बन्धमें नैमित्तिक ने कहा था कि ये समस्त राजकुमारियां चक्रवर्ती हरिषेणकी स्त्रियां होगीं। हरिषेण भी अकस्मात् यहां आ जायगा।

हरिषेण दूसरे राजाओंपर विजय प्राप्त करता हुआ सिन्धु नदी के किनारे पहुंचा। वहां सिन्धुनदकी कुमारियां स्नानके लिये आयीं। पहलीवारके दर्शनमें ही परस्पर प्रेम प्रस्फुठित हो उठा।

सिन्धुनदको जब हरिषेणके आनेको बात मालूम हुई तो, बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी पुत्रियोंकी शादी उनसे कर दी।

एक दिनकी घटना है। हरिषेण अपनी चित्रशालामें सोया हुआ था। उसे वेगवती नामकी एक विद्याधरी उठा ले गयी। जब रास्तेमें हरिषेणकी नींद खुली तो वह बड़ा क्रोधित हुआ। उसने विद्याधरीको मारनेके लिये हाथ उठाया। पर विद्याधरीने क्षमा मांगते हुए कहा कि विजयार्ध पर्वतपर बसे हुए सूर्योदर नगरके राजा इन्द्रधनको एक कन्या है। उसका नाम जयचन्द्रा है। यद्यपि वह बुद्धिमती और सुन्दर है किन्तु उसे पुरुष जातिसे द्वेष है। एक नैमित्तिकने उसके सम्बन्धमें कहा है कि जो सिन्धुनदकी राजकुमारियोंका पति होगा वही इसका भी होगा। मैंने आपका चित्र उसे दिखाया था। उसकी चेष्टाओंसे जान पड़ा कि वह आपसे प्रेम करती है। उसकी आज्ञासे ही मैं आपको ले जा रही हूं। हरिषेणको प्रसन्नता ही हुई। वह विद्याधरीके साथ चला गया।

हरिषेणको देखते ही सबको प्रसन्नता हुई। जयचन्द्राके पिता ने विवाहका दिन निश्चित् कर दिया। जिस दिन विवाह होनेवाला था, उसदिन जयचन्द्राके मामाके पुत्रोंने हरिषेणपर चढ़ाईकी। वे स्वयं जयचन्द्रासे विवाह करना चाहते थे। इस युद्धमें हरिषेण की विजय हुई। वह चक्रवर्ती होकर घर लौटा। रास्तेमें अपनी प्रेमिका मदनावलीसे भी विवाह किया। घर आकर उसने अपनी माताकी इच्छा पूरी की। पहले वप्राका रथ चला। हरिषेणने अपने देशभरमें जिनमन्दिर बनवा दिया।

स्वर्ग के देवादिकों द्वारा सदा पूर्ज जानेवाले जिनेन्द्र भगवानको आराधनाकर सत्पुरुष सुख प्राप्त करते हैं।

---

## ६६ दूसरोंके गुण ग्रहण करनेकी कथा

स्वर्गीय देवों द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवानके चरणोंमें नमस्कारकर अवगुणोंकी ओर न लक्ष्यकर दूसरोंके गुण ग्रहण करनेवालेको कथा लिखते हैं।

एक बार सौधर्म स्वर्गके अधिपति इन्द्र अपनी सभामें गुणवान पुरुषोंकी प्रशंसा कर रहे थे। उन्होंने कहा—संसारमें उसीका जन्म सफल है, जो दूसरोंके अवगुणोंको न लक्ष्यकर केवल गुण ग्रहण करनेका प्रयत्न करता है। वह संसारमें सर्व श्रेष्ठ है, उसी का जन्म सार्थक होता है। इन्द्रको इस प्रकार कहते सुनकर एक देवने तत्काल प्रश्न किया, क्या ऐसा महापुरुष पृथ्वीपर है? उत्तरमें इन्द्रने बतलाया कि द्वारिकाके अन्तिम वासुदेव श्रीकृष्ण ऐसे ही महापुरुष हैं। वह देव श्रीकृष्णकी परीक्षाके लिये पृथ्वीपर आया। उस समय श्रीकृष्ण भगवान नेमिनाथके दर्शनके लिये जा रहे थे। वह देव कुत्तेका रूप धारणकर पृथ्वीपर पड़ रहा। उसके शरीरसे सड़ी-सी दुर्गन्ध निकल रही थी। आने जानेवालोंके लिये उसकी दुर्गन्ध असहनीय हो गयी। श्रीकृष्णके सब साथी भाग खड़े हुए, परीक्षाका उपयुक्त अवसर जान कर वह देव दूसरे ब्राह्मणका रूप धारणकर श्रीकृष्णके समीप आया। उसने कुत्तेकी बुराई, उसके दोष दिखाने लगा। उसकी बातें सुन चुकनेके बाद

श्रीकृष्णने कहा—देखिये, इस कुत्तेकी दांतोंको पंक्ति कितनी निर्मल है, कितनी सुन्दर है। उन्होंने कुत्तेसे निकलनेवाली दुर्गन्धकी ओर जरा भी ध्यान न दिया, अपितु दांतोंकी, उसके किञ्चित गुणकी प्रशंसा की। एक पशुके प्रति श्रीकृष्णकी ऐसी उदारता देखकर देव बड़ा प्रसन्न हुआ और आदर पूर्वक सब बातें प्रकट कर दीं।

अतएव जिनेन्द्र भगवानके भक्तोंको भी चाहिए कि वे दूसरोंके अवगुणोंको उपेक्षा कर गुणोंको ग्रहण करनेका यत्न करें। यदि वे प्रेम और सद्भाव पूर्वक ऐसा करेंगे तो उनका भी सुखी होगा, वे प्रशंसाके पात्र हो सकेंगे।

---

## १०० मनुष्य जन्मकी दुर्लभताके दश दृष्टान्त

अपने निर्मल केवल ज्ञान रूपी प्रकाशसे संसारके अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कारकर मानव जीवनको दुर्लभता दश दृष्टान्तों द्वारा समझानेका प्रयत्न करते हैं।

उन दृष्टान्तोंके नाम ये हैं; १-चोल्लक, २—पासा, ३-धान्य, ४-जुआ, ५-रत्न, ६-स्वप्न ७-चक्र, ८-कछुआ, ९-युग और १०-परमाणु।

सर्व प्रथम चोल्लकका दृष्टान्त लिखते हैं।

विश्व हितैषी भगवान नेमिनाथके निर्वाण प्राप्त कर लेनेके पश्चात् अयोध्यामें ब्रह्मदत्त बारहवें चक्रवर्ती हुए उनके वीर सामन्त का नाम सहस्रभट था। उसका पुत्र वासुदेव निरक्षर था। उसमें इतनी भी योग्यता न थी कि राज्य-सेवा भी कर सके। सहस्रभट

की मृत्युके पश्चात् उनकी जगह वासुदेवको न मिल सकी। इससे उसकी माता सुमित्राको बड़ा दुख हुआ। पर कर ही क्या सकती थी ? वह अपनी गरीबीके कारण एक झोपड़ीमें रहने लगी। उसने भावी आशासे वासुदेवसे कुछ काम लेना आरम्भ किया। वह लड्डू पेड़ा पान आदि वस्तुएं एक खोमचेमें रखकर उसे आस पासके गांवोंमें भेजने लगी, जिससे परिश्रम करनेसे वासुदेवकी हिचक मिट जाय। इससे सुमित्राको पूरी सफलता मिली। वासुदेव अब निकम्मा रहना नहीं चाहता था। संयोगसे राजाका अंग रक्षक नियुक्त हुआ।

एक वारकी घटना है। चक्रवर्ती हवा खोरीके लिये वाहर निकले। उनका घोड़ा बड़ा दुष्ट था। जरा सी एड़ लगते ही वह हवा हो गया और बड़ी दूर एक जंगलमें उन्हें गिरा दिया। चक्रवर्ती बड़ी कठिनाईमें पड़े। भूखके मारे तिलमिला उठे। पाठकोंको स्मरण होगा कि चक्रवर्तीके अंग रक्षक वासुदेवको उसकी मांने चलने फिरनेका काफी अभ्यास करा दिया था। वासुदेव कुछ खाने पीनेकी वस्तुएं लेकर घोड़ेके पीछे-पीछे दौड़ा गया। चक्रवर्तीके गिरनेके आध घंटा वाद ही वासुदेव वहाँ पहुंच गया। सबसे पहले उसने खानेकी वस्तुएं भेंटकी। चक्रवर्ती बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पूछा तू कौन है। बासुदेवने कहा—मैं सहस्रभटका पुत्र हूं। इसके बाद राजाने पूछताछ न की। वे चलते समय बासुदेवको रत्न कंकण देते गये। अयोध्यामें पहुंचते ही चक्रवर्तीने कोतवालसे कहा—मेरा रत्न कंकण खो गया है, उसका पता लगाओ। कोतवाल कंकणका पता लगाने निकला। एक स्थानपर वासुदेव उसी कंकणकी चर्चा

कर रहा था। कोतवाल उसे पकड़ ले गया। चक्रवर्ती बासुदेवको देखकर बोले— मैं तुमपर प्रसन्न हूं, जो चाहे मांग ले। बासुदेव ने कहा—महाराज मैं क्या मांगूं। यदि आप आज्ञा दे तो मां से पूछ आऊं। चक्रवर्तीकी आज्ञासे वह अपनी मातासे पूछ आया। उसने कहा—महाराज! आप मुझे चोल्लक भोजन कराइये। चक्रवर्तीने पूछा—चोल्लक भोजन किसे कहते हैं? हमने तो कभी नाम भी नहीं सुना। वासुदेवने उत्तरमें कहा—महाराज! प्रथम आदरके साथ महलमें मुझे भोजन कराया जाय, और मुझे सुन्दर कपड़े और गहने दिये जांय। इसी प्रकार आपकी रानियोंके महलमें भी मेरा सत्कार हो। पश्चात् आपके परिवार तथा मंडश्लेश्वर राजाओंके यहां मेरा भोजन हो। पुनः क्रमसे आपके महलमें मेरा अन्तिम भोजन हो। मुझे विश्वास है कि आपकी आज्ञासे ऐसा हो सकेगा।

उपरोक्त उदाहरणसे शिक्षा ग्रहण की जा सकती है कि वासुदेव सरीखे कंगालको ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ। सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे बुरे मार्गका परित्यागकर जैन धर्मकी शरण प्राप्त करें। वह मानव जन्मकी प्राप्ति और मोक्षका प्रधान कारण है।

## २—पापोंका दृष्टान्त

मगध देशके शतद्वार नामक नगरके राजाका नाम शतद्वार था राजाने अपने नगरमें एक ऐसा दरवाजा तैयार कराया जिसमें ग्यारह सहस्र खम्भे लगे थे। प्रत्येक खम्भेमें ऐसे स्थानका निर्माण कराया गया था जिसमें जुआरी लोग पासे द्वारा जूआ खेला करते थे। एक दिन सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मणने उस जुआरियोंसे

प्रार्थना की कि मैं अत्यन्त गरीब हूं। यदि आप सबका दाव किसी समय एक ही सा पड जाय और वह धन आप लोग मुझे दे दें तो मेरा बड़ा उपकार हो। सब जुआरियोंने ब्राह्मणकी मांग मंजूर कर ली; क्योंकि उन्हें तो विश्वास था कि ऐसा होना असम्भव है। पर संयोगसे एक बार सबका दाव एक होसा पड़ गया। उन्हें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सारा धन सोमशर्माको दे देना पड़ा। इससे सोम शर्माको बड़ो प्रसन्नता हुई। इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सोम शर्मा जैसा योग मिलकर इतना धन भी मिल जाय तो आश्चर्य नहीं। किन्तु प्रमाद वश मानव-जन्म एक बार नष्ट कर दिया जाय तो वह पुनः प्राप्त होनेको नहीं। अतएव भव्य जनोंको सदा पवित्र कार्य करते रहना चाहिए। जिनेन्द्र भगवानकी पूजा दान परोपकार, व्रत उपवास आदि ऐसे कार्य हैं जिनसे स्वर्ग एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है।

## ३—धान्यका दृष्टान्त

जम्बूद्वीपके बराबर चौड़े एवं एक हजार योजन गहरा एक गड्ढा खोदकर उसमें सरसों भर दिया जाय। पुनः उसमेंसे एक एक कर निकाला जाय। ऐसा निरन्तर करते रहनेसे एक दिन ऐसा भी आ जायगा जिस दिन वह कुण्ड सरसोंसे खाली हो जायगा। किन्तु प्रमादवश यदि जन्म नष्ट हो जाय तो पुनः प्राप्त कर लेना कठिन है। अतएवं सत्पुरुषोंको उचित है कि वे मानव जन्मको दुर्लभ समझकर सदा जिन पूजा, दान, व्रत परोपकारमें लगे रहें। यही परम्परा मोक्षका साधन होता है।

## ४-धान्यका दूसरा दृष्टान्त

एक बारकी बात है। अयोध्याके राजा प्रजापालपर एक राजगृहके राजा जितपालने हमला किया। चारों ओरसे अयोध्या घेर ली गयी। तब प्रजापालने अपनी प्रजासे कहा,—जिसके यहां जितने धानके बोरे हों वे लाकर मेरे कोपोंमें सुरक्षित रख दें। मैं चाहता हूं कि दुश्मनोंके खानेके लिये यहांसे एक मुट्ठी अन्न भी न प्राप्त हो, उन्हें भूखों मरना पड़े। प्रजाने ऐसा ही किया। दुश्मनोंकी सेना भूखों मरने लगी। अन्तमें जितशत्रुको वापस जाना पड़ा। प्रजा अपने अपने बोरे वापस ले गयी। कर्म योगसे कभी ऐसा भी हो जाना सम्भव है। पर मानव जन्म नष्ट हो जानेपर उसका प्राप्त होना दुर्लभ है। अतएव उसे व्यर्थ नष्ट करनेकी अपेक्षा शुभ कार्यों में लगाना श्रेयस्कर है।

## ४—जुआका दृष्टान्त

शतद्वारमें ऐसे पांच सौ दरवाजे हैं, जिनमें जुआ खेलनेके पांच पांच सौ अड्डे हैं। एक बार सब जुआरी अपनी अपनी कौड़ियां जीतकर चले गये, केवल चयी नामका एक जुआरी रह गया। सम्भव है कि चयी और अन्य जुआरियोंका परस्पर मुकाबला हो जाय; पर पुण्यहीन मनुष्योंको पुनः मानव शरीर प्राप्त होना कठिन है।

## जुआका दूसरा दृष्टान्त

शतद्वार पुरमें ही निर्लक्षण नामका दूसरा जुआरी था। वह पाप कर्मोंके उदयसे कभी नहीं जीत पाता था। एक दिन कर्म योग

से अधिक धन जीत लिया। उसने प्रसन्नतामें सारा धन याचकोंको बाँट दिया। वे धन लेकर जहां-तहां चले गये। संयोगसे उनका परस्पर मिलना सम्भव है, पर गया जन्म पुनः नहीं मिलता। अतएव मोक्ष प्राप्त होनेतक मानव जन्म प्राप्त करनेके लिये धर्मकी शरणमें जाना चाहिये।

## ५—रत्न दृष्टान्त

द्वादश चक्रवर्ती—भरत, सगर, मघवा सनत्कुमार, शान्तिनाथ कुन्थुनाथ अरह नाथ, सुभौम महापद्म; हरिषेण जयसेन और ब्रह्मदत्त इनके मुकुटोंमें खचित मणि, चौदह रत्न एवं नौनिधि जिन्हें स्वर्गके देव ले गये हैं, इनका प्राप्त होना सम्भव नहीं है। वे देव भी एकत्रित नहीं हो सकते, इसी प्रकार पुण्य हीन पुरुष मानव-जीवन नहीं प्राप्त कर सकते। सत्पुरुषोंको चाहिये कि मानव जीवन प्राप्त करनेके उद्देश्यसे जैन-धर्मका पालन करें।

## ६—स्वप्न दृष्टान्त

उज्जैनमें एक लकड़हारा रहता था। वह लकड़ियां बेंचकर अपनी जीविका चला लेता था। एक दिन वह लकड़ीका गठ्ठर सिरपर रखे हुए चला आ रहा था। भीषण गर्मी पड़ती थी। एक वृक्षके नीचे गट्ठर उतारकर वह बैठ गया। थका तो था ही उसे नींद आ गयी। उसने स्वप्नमें देखा कि वह चक्रवर्ती हो गया। हजारों भृत्य उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। इतनेमें उसकी स्त्रीने आकर उसे जगा दिया। उसे पुनः गठ्ठर लादना पड़ा। जिस प्रकार लकड़हारेका चक्रवर्ती होना असम्भव है, उसी प्रकार पुण्य हीन मनुष्यके लिये मानव जन्म दुष्कर है।

## ७—चक्र दृष्टान्त

बाईस बड़े मजबूत खम्भे हैं। प्रत्येक खम्भेपर एक चक्र लगा है। चक्रमें हजार आरे हैं। उन आरोंमें एक-एक छिद्र हैं। चक्र उलटे घूम रहे हैं। जो वीर हैं वे उन खम्भोंपरकी राधाको वेध देते हैं।

काकन्दीके राजाका नाम द्रुपद था। उनकी कुमारी द्रौपदी बड़ी ही सुन्दरी थी। स्वयम्बरमें अर्जुनने ऐसा ही राधा वेधकर द्रौपदीसे विवाह किया था। वस्तुतः पुण्यके उदयसे असम्भव बात-भी सम्भव हो जाती है। पर यदि प्रमाद वश मानव-जन्म नष्ट हुआ तो वह फिर नहीं मिलता। अतएव पुण्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये।

## ८—कछवेका दृष्टान्त

स्वम्भू रमण जैसे महान सागरको एक बड़े चमड़ेसे छोटासा छिद्र कर ढक दीजिये। सम्भव है हजारों वर्ष बाद कछुआ उस छिद्रसे सूर्यका दर्शन कर ले, पर प्रमादसे नष्ट हुआ मानव-जन्म प्राप्त होना कठिन है।

## ९—युगका दृष्टान्त

दो लाख योजनतक विस्तृत लवण समुद्रमें धुंएके छिद्रसे गिरी हुई समिला पश्चिम समुद्रमें प्रवाहित धुंएके छिद्रमें प्रवेश कर सकती है। पर विषयों द्वारा नष्ट किया हुआ मानव जीवन प्राप्त होना असम्भव है। अतएव मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिये पुण्य करते रहना चाहिये, ताकि मोक्षतक मानव-जन्म प्राप्त होता रहे।

## १००—परमाणुका दृष्टान्त

चक्रवर्तीके दण्ड रत्नके परमाणु बिखर कर दूसरी अवस्था प्राप्त करले। उनका पुनः सम्मिलित हो जाना सम्भव है, किन्तु दुष्कर्मों द्वारा खोया हुआ जीवन पुनः प्राप्त कर लेना असम्भव है। इसलिये सत्पुरुष सदा पुण्य कर्मों द्वारा मानव पर्यायकी प्राप्ति कर लेते हैं।

सर्व श्रेष्ठ मानव जन्मको अत्यन्त दुष्कर समझकर सदा पवित्र जैन धर्मका आश्रय लेना चाहिये। यह मानव मात्रका हितैषी और कल्याणकर है।

## १०१—भावानुरागकी कथा

संसारको शान्ति और अहिंसाका सन्देश देनेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर धर्म प्रेमी नागदत्तकी कथा लिखते हैं।

धर्मपाल उज्जैनके अधिपति थे। उनकी रानी धर्मश्री धर्मात्मा और उदार थीं। वहीं सागरदत्त नामक एक सेठ रहता था। उनकी पत्नीका नाम सुभद्रा तथा पुत्रका नाम नागदत्त था। नागदत्तकी अपनी माताकी तरह धर्मपर अटल श्रद्धा थी। नागदत्तका विवाह समुद्रदत्त सेठकी रूपवती कन्या प्रियंगुश्रीसे हुआ। विवाहमें पूजा उत्सव सम्पन्न हुआ। दीन दुखियोंकी पर्याप्त सहायता की गयी।

यद्यपि प्रियंगुश्रीसे उसके मामाका पुत्र नागसेन विवाह करना चाहता था, पर विवाह हुआ नागदत्तके साथ। इससे नागसेन बड़ा नाराज हुआ और किसी प्रकार बदला लेनेके लिये वह मार्ग ढूंढ़ने लगा।

एक वार नागदत्त जिन मन्दिरमें कायोंत्सर्ग कर रहा था। नागसेनने शत्रुता वश षडयन्त्र रचा। उसने अपने गलेका हार उतार कर नागसेनके पैरोंपर रख दिया और चिल्लाने लगा कि यह मेरा हार चुराये लिये जा रहा था। अब ढोंग बनाकर ध्यान करने लगा। वहां वहुतसे लोग इकट्ठे हो गये। पुलिस भी आ गई। नागदत्त गिरफ्तार कर दरवारमें उपस्थित किया गया। किन्तु नागदत्तकी कोई संफाई न मिलनेपर राजाने प्राण दण्डकी आज्ञा दे दी।

नागदत्तको उसी समय वध्य-भूमिमें ले जाया गया। जब उस पर तलवारका वार किया गया तो उसे जान पड़ा कि फूलकी माला फेंकी गयी हो। आकाशसे पुष्पोंको वर्षा हुई, जयकारसे आकाश गूंज उठा। यह आश्चर्य जनक घटना देखकर सब लोग चकित रह गये। ठीक ही है, धर्मात्मा और सत्पुरुषोंका कौन उपाकार नहीं करता। जैन धर्मका ऐसा प्रभाव देखकर राजा धर्मपाल और नागदत्तको वड़ी प्रसन्नता हुई। वे दीक्षा लेकर साधु हो गये, और भी अनेक अजैनों सज्जनोंने जैन धर्म ग्रहण किया।

संसारके महापुरुषों द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवानका उपदेश किया हुआ धर्म, स्वर्ग-मोक्षका दायक है। वह हमें आत्म सुख प्रदान करे।

---

## १०२—प्रेमानुरागकी कथा

जिन-धर्मके प्रवर्तक जिनेन्द्र भगवानको सादर अभिवादन कर सुमित्र सेठकी कथा लिखते हैं।

अयोध्याके महाराज सुवर्ण वर्मा और उनकी रानी सुवर्णश्री के शासन कालमें सुमित्र नामका एक सेठ वहां रहता था। वह धर्म प्रेमी था। एक दिन रातके समय सुमित्र सेठ कार्योत्सर्ग कर रहा था कि एक देवने उसकी परीक्षा करनी चाही। देवने सेठका सारा धन तथा स्त्री पुत्रको अपना लिया। सेठके पास खबर पहुंची। किन्तु सेठने जरा भी परवा न की और वे ध्यानमें निरत रहे। उसकी स्थिरता देखकर देव अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह अपना स्वरूप प्रकट कर सेठको सांकरी नामकी आकाश गामिनी विद्या दे स्वर्ग चला गया। सेठके कार्योंसे प्रभावित अन्य लोगोंने भी जैन धर्म ग्रहण किया।

जिन भगवानके कमलवत चरण सुख दायक होते हैं। अतएव सत्पुरुषोंको चाहिये कि सदा उनकी पूजा स्तुति करते हुए संसार सागरसे पार उतरें।

---

## १०३–जिनाभिषेकसे प्रेम करनेवालेकी कथा

सौधर्म स्वर्गके अधिपति इन्द्र जिनकी पूजा करते हैं, जिनके उपदेशसे विश्वका कल्याण होता है, ऐसे जिन भगवानको नमस्कार कर जिनाभिषेकके अनुरागी जिनदत्त एवं वसुमित्रकी कथा लिखनेमें प्रवृत्त होते हैं।

उज्जैनके राजाका नाम सागरदत्त था। उनकी राजधानीमें जिनदत्त और वसुमित्र दो सेठ रहते थे। जिनाभिषेकपर उनका बड़ा ही अनुराग था। वर्षमें ऐसा एक दिन भी नहीं जाता, जिस दिन वे दोनों सेठ भगवानका अभिषेक न करते हों।

एक बार दोनों व्यापारके लिये उज्जैनके उत्तर प्रान्तकी ओर चले। कई मंजिल तय कर ये एक ऐसी नगरीमें पहुंचे जो चारो ओर पर्वत मालाओंसे घिरी थी। वहां डाकुओंका अड्डा था। डाकुओंने इनका सारा माल असबाब छीन लिया। ये वहीं भटकने लगे। उन्हें निकल जानेके लिये भी कोई मार्ग नहीं मिला और न कोई रास्ता बताने वाला ही। दोनों सेठ बड़े दुखी हुये। उन्होंने कोई उपाय न देख अन्तमें सन्यास ले लिया और भगवानका स्मरण करने लगे।

एक सोम शर्मा नामक ब्राह्मण भी उसी नगरीमें आ फंसा। वह भटकता हुआ उनके पास आ पहुंचा। उसे दुखी देखकर सेठों ने सान्त्वना दी। साथ ही यह भी कहा कि निकलनेका कोई मार्ग न देख हम लोगोंने धर्मकी शरण ली है। धर्मका मार्ग सुखदायी होता है। अतएव तुम भी धर्मका आश्रय लो। उन्होंने धर्मका तत्व समझाते हुए सोमशर्मासे कहा—अठारह दोषोंसे रहित और सबको देखने वाले सर्वज्ञ हैं, ऐसे सर्वज्ञ भगवान द्वारा बताये हुये मार्गको धर्म कहते हैं। ऐसे धर्मको हमारे आचार्योंने दस भागोंमें विभक्त किया है। वे दस मार्ग ये हैं—उत्तम क्षमा, मार्दव-हृदयका कोमल होना, आर्दव-हृदयका सरल होना सत्य भाषण, शोच, निर्लोभी अथवा सन्तोषी होना, संयम, इन्द्रियोंको वशमें करना तप-व्रत उपवासादि करना, त्याग-परिचय पूर्वक प्राप्त धनका सदुपयोग करना, आकिंचन परिग्रह अर्थात् धन-धान्य चाँदी-सोना, दास-दासी आदि दस प्रकारके परिग्रहकी लालसा कम करके आत्मशक्ति की ओर प्रवृत्त होना और ब्रह्मचर्यका पालन करना।

गुरु वे हैं जो वासनासे मुक्त हों, ब्रह्मचारी हों, तपस्वो हों, और जोवोंको आत्म सुखको ओर प्रवृत्त करते हों। उन तीनों अर्थात देव, धर्म गुरुपर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यग्दर्शन ही मानव जोवनको सुख स्थानपर पहुंचानेका प्रथम सोपान है। इस विवरणको जैन धर्म कहते हैं। अतएव तुम इसे ग्रहण करो। जैन धर्म जीवको (आत्माको) अनादि मानता है और वह है भी। नास्तिकोंकी भांति वह पंच भूतोंसे नहीं निर्मित है। ये पदार्थ जड़ हैं, इनमें चेतना नहीं। किन्तु जीव इनसे सर्वथा भिन्न है, वह चेतन है। उसी गुणसे उसका अस्तित्व सिद्ध होता है।

जैन धर्मके सिद्धान्तके अनुसार जीव दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम ज्ञान वरणादि आठ कर्मोंका, जिसने आत्माके वास्तविक स्वरूपको अनादि से ढक रखा है। दूसरा है—अभव्य जिसमें कर्म नाशकी शक्ति न हो। इन कर्मोंमें युक्त जोवको संसारी कहते है और कर्म रहितको मुक्त। जीवके अतिरिक्त संसारमें एक और भी द्रव्य है। उसे अजोव अर्थात पुद्गल कहते हैं। इनमें अनुभव करनेकी शक्ति नहीं होती। जैन धर्म अजीवको पांच भागोंमें बांटता है पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। इनमें भी दो श्रेणियां है। प्रथम मूर्तिक और द्वितीय अमूर्तिक। मूर्तिक उसको कहते हैं, जिसका स्पर्श हो, कुछ स्वाद हो गंध हो, वर्ण हो। जिसमें उपरोक्त बातें न हों, वह अमूर्तिक है। इनके अतिरिक्त धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अमूर्तिक हैं। इन सब विपयोंका विशेष वर्णन जैनग्रन्थोमें है। यहां तो सामान्य स्वरूप वताये हैं। आशा है तुम अपने हितके लिये इसे ग्रहण करोगे।

सोमशर्मा इस उपदेशसे बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने भी वसुमित्र और जिनदत्तकी तरह सन्यास ले लिया। ध्यानके समय सोम शर्माको भूख-प्यास और मच्छरोंकी वाधा सहन करनी पड़ी। समाधि द्वारा मृत्यु प्राप्तकर वे सौ धर्म स्वर्गके देव हुए। वहाँसे सोम शर्मा श्रेणिक महाराजके अगम कुमार नामक पुत्र हुए। अन्त में कर्मोंका क्षय कर मोक्ष गये।

इधर सोम शर्माके मृत्युके कुछ हो दिन वाद जिन दत्त और वसुमित्रकी भी समाधि द्वारा मृत्यु हुई। वे भी स्वर्गके देव हुए।

पुन्यके कारण कष्टमें भी भव्य जन धर्मका आश्रय नहीं त्यागते। वे सर्वज्ञ भगवान पूजा सत्कारमें ही लीन रहते हैं। निर्मल सुख प्रदान करनेवाले जिनेन्द्र भगवान हमें सुबुद्धि दें।

---

# १०४ धर्मानुराग की कथा

अपने केवल ज्ञान द्वारा लोकालोक को प्रकाशित करने वाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर धर्मानुरागी लकुचकी कथा लिखते हैं।

उज्जैनके राजाका नाम धनवर्मा था। उनकी रानी धनश्री थी और पुत्रका नाम लकुच। लकुच वीर था और स्वभाव से स्वाभिमानी था। लोग उसे मेघकी उपमा से विभुषित करते थे। शत्रुओं पर विजय प्राप्तकर लेना सामान्य वात थी। एकवार कालमेघ नामक राजाने उज्जैन पर आक्रमण किया। प्रजाको काफी हानि उठानी पड़ी लकुचने बड़ी वीरतासे कालमेघका सामना किया। कई दिनों तक घोर युद्ध हुआ, पर विजय प्राप्त की लकुचने ही। कालमेघ वन्दीदशा

में राजा धनवर्माके सामने लाया गया। अपने पुत्रकी वीरता से राजाको जो प्रसन्नता हुई वह वर्णनातीत थी। इस प्रसन्नता में राजाने अपने पुत्रको कुछ वर देनेकी इच्छा की। किन्तु राजाने वर को प्रयोगमें लाने का भार लकुच पर ही छोड़ दिया। यहीं से लकुच के जीवनमें परिवर्तन आरम्भ हुआ। वह वरका दुरुपयोग करने लगा उसकी प्रवृत्ति व्यभिचारकी ओर बढ़ी। लकुच प्रसिद्ध घराने की स्त्रियोंका धर्म भ्रष्ट करने लगा। अनेक स्त्रियोंने अपना धर्म बचाने के लिए आत्म हत्याएं तक कर डालीं। प्रजा बेचैन हो उठी। वे राजासे शिकायत भी नहीं कर सकते; कारण, लकुचके जासूस उज्जैनके कोने कोने में फैले थे यदि किसी ने लकुचके विरुद्ध आवाज उठाई कि उसे प्राण दण्डका आदेश मिलता था।

उज्जैनमें ही एक पुंगल नामका सेठ रहता था। उसकी स्त्री नागदत्ता अपूर्व रूपवती थी। लकुचने उसे भी धर्मभ्रष्ट किया। इस से पुंगलके शरीरमें आग सी लग गयी। वह बदला चुकाने का मार्ग ढूढ़ने लगा।

एकदिन लकुच वनक्रीड़ाके लिए गया। वहां सौभाग्य वश मुनिराजके दर्शन हुए। मुनिराजके उपदेश से प्रभावित हो लकुच दीक्षा लेकर मुनि हो गया। पुंगल भी ताकमें था। जब उसने लकुच के मुनि होनेकी बात सुनी तो वह बड़े बड़े लोहेकी कील लेकर आ-पहुंचा। लकुच मुनि ध्यान कर रहे थे। वह उनके शरीरमें कील ठोक कर चलता बना। मुनिने दुःसह उपसर्गको शान्ति पूर्वक सह कर स्वर्ग प्राप्त किया। महात्माओंकी विचित्र दशा होती है, वे क्षण-भरमें ही अपने जीवन को बदल डालते हैं।

लकुच मुनिको असहनीय कष्ट सहन कर जिनेन्द्र भगवानकी कारजगिति हो स्वर्गीय सुख प्राप्त किया। वे भगवानकी कृपासे ज्ञान के समुद्र कहलाये।

## १०५-सम्यग्दर्शन पर दृढ़ रहने वाले की कथा

विषय-दोषों से सर्वथा मुक्त, विश्व का अज्ञानांधकार दूर करने वाले जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार कर जिनदास सेठकी पवित्र कथा लिखते हैं।

पुराने समय की बात है। पाटलिपुत्रमें एक जिनदत्त नामका प्रसिद्ध सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम जिनदासी था और पुत्रका नाम जिनदास था। बचपन से ही जिनदासकी प्रवृति धार्मिक थी। एकवार जिनदास सुवर्ण द्वीपसे धन उपार्जित कर अपने नगरमें लौट रहा था। काल नामक एक देव से उसकी पूर्वजन्मकी शत्रुता थी। उसने सौ योजन के जहाज पर बैठे-बैठे जिनदाससे कहा—जिनदास! यदि तू अपने मुंह से स्वीकार करले कि जिनेन्द्र भगवान तथा जैनधर्म कोई चीज नहीं तो मैं तुझे जीता छोड़ सकता हूं, अन्यथा मार डालूंगा। जिनदासने निडर होकर कहा कि यह मैं कदापि नहीं कह सकता, पर यह कहूंगा कि, केवल ज्ञानी, सूर्य से अधिक तेजस्वी जिनेन्द्र भगवान तथा जैनधर्म सर्व श्रेष्ठ है। इतना कहकर जिनदासने ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीकी कथा कह सुनाई कथा सुनकर सबका विश्वास और भी दृढ़ हो गया।

धर्मात्माओंपर इस प्रकारकी विपत्ति आनेसे उत्तर कुरु निवासी अकाव्रत पक्षने चक्रसे मारकर काल देवको अग्निमें डाल.

दिया। पश्चात जिनदास वगैरह कुशल पूर्वक घर आगये। एकदिन जिनदासने अवधि ज्ञानीसे देवकी शत्रुताका कारण पूछा। मुनिराज-ने वैरका कारण बतला दिया, जिसे सुनकर जिनदासको सन्तोष हुआ।

जो सत्पुरुष हैं; ज्ञानी हैं, उन्हें चाहिए कि मोक्षका कारण पवित्र सम्यग्दर्शन ग्रहण करें। इसके अतिरिक्त अन्यमार्ग से मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती।

---

# सम्यकत्वको न छोड़ने वालीकी कथा

स्वर्ग के देवों द्वारा पूजे जाने वाले जिन भगवानको नमस्कार कर जिनमतीकी पवित्र कथा लिखते हैं।

लारदेव में डाल गोद्रह नामका प्रसिद्ध नगर था। वहां जिनदत्त नामक एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री जिनदत्ता थी। इन्हें जिनमती नामकी एक पुत्री थी जिसकी सुन्दरता देखकर अप्सरायें तक लज्जित हो जाती थीं।

यहींपर नागदत्त नामका दूसरा सेठ रहता था। उसकी पुत्री नागदत्ताका रुद्रदत्त नामक एक पुत्र था। नागदत्तने अनेक प्रयत्न किये कि जिनमतीका विवाह रुद्रदत्तसे हो जाय। पर विधर्मी होने-के कारण जिनदत्तने अपनी पुत्री देना स्वीकार न किया। यह हठसे नागदत्तको बुरा मालूम हुआ। उसने दूसरी ही युक्ति सोची। नागदत्त और रुद्रदत्त, समाधि गुप्त मुनिसे व्रत-नियम ले-कर श्रावक बन गये। जिनदत्तको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने प्रस-न्नता पूर्वक जिनमतीका विवाह रुद्रदत्तसे कर दिया। इधर जहां

विवाह हुआ कि पिता-पुत्रने जैन धर्म परित्याग कर दिया।

अब रुद्रदत्त, जिनमतीसे आग्रह करने लगा कि, प्रिये ! तुम भी मेरा धर्म ग्रहण कर लो। किन्तु जिनमती जिनेन्द्र भगवानकी सच्ची सेविका थी। उसने अपने पतिसे प्रार्थना की कि मेरे विश्वासके अनुसार संसारमें जैन धर्म ही सर्वोच्च धर्म है। उसमें जीवमात्रके उपकारकी क्षमता है, अतः स्वर्गके देव विद्याधर, राजा महाराजा, चक्रवर्ती उसकी पूजा करते हैं। मैं तो आपको भी सलाह दूंगी कि आप जैन धर्म ग्रहण कर लें। पति-पत्नीमें बराबर वाद-विवाद हुआ करते थे।

इसी प्रकार कई वर्ष बीत गये। एक बार दुष्ट भीलोंने नगरके किसी भागमें आग लगा दी। चारों ओर हाहाकार मचा। आग बुझानेके बदले लोग अपने प्राण बचानेका प्रयत्न करने लगे। उचित अवसर समझकर जिनमतीने अपने पति रुद्रदत्तसे कहा—प्राणनाथ! रोज रोजका वाद-विवाद उचित नहीं। मेरी इच्छा है कि यह झगड़ा आज ही मिट जाय। नगरकी आगको जिसका देव बुझा दे, वही देव सच्चा और हमें परस्पर उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। रुद्र-दत्तने स्वीकार कर लिया। उसने उसी क्षण ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी पूजा की और आग बुझानेके लिये निवेदन किया। पर प्रार्थनाका कुछ भी फल न हुआ। आग वैसी ही जलती रही।

अब जिनमतीकी बारी आई। उसने भक्ति पूर्वक पंच परमे-ष्ठियोंको अर्घ प्रदान किया। पश्चात अपने कुटुम्बको पास बिठाकर कार्योत्सर्ग ध्यान द्वारा पंच नमस्कार मन्त्रका ध्यान करने लगी। ऐसी अचल भक्तिसे शासन देवता प्रसन्न हुए। उसी समय आग

बुझ गयी। रुद्रदत्त आदि अत्यन्त चकित हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि जैन धर्म ही वस्तुत: धर्म है। वे सच्चे मनसे जैन धर्मकी दीक्षा ले श्रावक-व्रत ग्रहण किये। ठीक ही है जैन धर्मकी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है। जिस प्रकार जिनमतीने सम्यकत्व-की रक्षा की, उसी प्रकार सत्पुरुषोंको सम्यकत्वकी रक्षा करते रहना चाहिये।

जिनमतीकी अपूर्व धर्मनिष्ठा देखकर स्वर्गके देवोंने पुष्पवृष्टि की आदर सम्मान किया। सच्चे जिनभक्तका सब जगह आदर होता है।

---

## १०७—सम्यग्दर्शनके प्रभावकी कथा

विश्वके देवाधिदेव जिन भगवानको नमस्कार कर महारानी चेलिनी और श्रेणिक द्वारा होने वाले सम्यकत्वका पवित्र चरित्र लिखते हैं।

मगधकी राजधानी राजगृहके शासक उपश्रेणिक थे। उनकी स्त्रीका नाम था सुप्रभा और पुत्रका श्रेणिक। श्रेणिक सुन्दर और सरल प्रकृतिके थे। उनकी बुद्धिमत्ता सर्वत्र प्रसिद्ध थी।

मगधकी सीमापर एक दूसरा राज्य था। वहांके महाराज नाग धर्म थे। नागधर्मसे उपश्रेणिककी पुरानी शत्रुता थी। वह सदा ताक-में रहता था कि उपश्रेणिकसे बदला चुकायें। एक बार नागदत्तने एक दुष्ट घोड़ा उपश्रेणिकको भेटमें दिया। उपश्रेणिक उसपर सवार हो हवा खानेके लिये निकले। वह उन्हें लेकर हवासे बातें करने लगा। थोड़ी देरमें एक नगरमें जा पहुंचा। वह नगर यम-

दण्ड नामक नगर एक भीलके अधिकारमें था। उसकी लड़की तिलकवती अत्यन्त रूपवती थी। उसकी भुवनमोहिनी सुन्दरता देखकर उपश्रेणिक मोहित हो गये। उन्होंने उसके पिता यमदण्डसे विवाह का प्रस्ताव किया। यमदण्डने भी सोचा—मैं बड़ा भाग्यवान हूं। पृथ्वीके सम्राट मेरे दामाद बनते हैं। उसने महाराजसे प्राथना की—नाथ! मै अपनी पुत्रीका विवाह आपसे कर दूं, किन्तु आप यह स्वीकार करें कि राज्याधिकारी तिलकवतीकी सन्तान ही हो। उपश्रेणिकने यमदण्डकी शर्त मंजूर कर ली। वे तिलकवतीसे विवाहकर राजगृह लौट आये।

तिलकवतीसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम चिलात पुत्र रखा गया। एक दिन राजाने एक निमित्तज्ञानीको बुलाकर पूछा, पण्डितजी! यह बतलाइये कि मेरे इन पुत्रोंमें राजयोग किसको है? निमित्तज्ञानीने बिचारकर बतलाया कि महाराज! जो सिंहासनपर बैठकर नगारा बजाता रहे और विना स्पर्श किये कुत्तोंको खिलाता रहे तथा स्वयं भी भोजन करता रहे। आग लगनेपर जो सिंहासन छत्र चमर आदिकी रक्षा कर सके,वही राज-लक्ष्मीका अधिकारी होनेकी योग्यता रखता है। उपश्रेणिकने एक दिन पुत्रोंकी परीक्षा ली। उक्त परीक्षामें श्रेणिक विजयी हुआ। अब उपश्रेणिकको निश्चय होगया कि श्रेणिक ही राज्याधिकारी होनेके योग्य है। पर उन्हें भय था कि इसकी काय क्षमता और तेजस्विता देखकर किसीको डाह उत्पन्न हो जाय तो उस हालतमें अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। वे चिलात पुत्रको युवराज बना चुके थे, इसलिये उसका श्रेणिकके प्रति डाह होना स्वाभाविक था। राजाने निश्चय

किया कि तबतक श्रेणिकका बाहर रहना ही अच्छा है, जबतक वह स्वयं राज्य हस्तगत न कर ले। यह विचार कर उन्होंने कुत्तेका जूठा खानेका कलंक लगाकर श्रेणिकको राज्यसे निकल जानेकी आज्ञा दी। निरपराध श्रेणिक उसी समय घरसे बाहर निकल गया

यहांसे चलकर श्रेणिक नन्द नामक गांवमें पहुंचा। वहांके लोगोंने राजद्रोहके भयसे श्रेणिकको अपने गांवमें न रहने दिया। श्रेणिक आगेकी ओर बढ़ा। रास्तेमें सन्यासियोंका एक आश्रम मिला। श्रेणिक इसी आश्रममें रहने लगा। मठका प्रधान सन्यासी पर्याप्त विद्वान था। उसके उपदेशका श्रेणिकपर गहरा असर पड़ा। उसने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया। श्रेणिक और कुछ दिनों-तक यहाँ ठहरनेके बाद दक्षिणकी ओर चला।

दक्षिणकी राजधानी कांचीके राजाका नाम वसुपाल था। उनकी रानी वसुमतीसे वसुमित्रा नामकी एक गुणवती पुत्री थी। कांचीमें ही सोमशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री सोमश्री थी। सोमशर्माकी पुत्रीका नाम अभयमती था। वह बड़ी बुद्धिमती थी।

एक बारकी बात है। सोमशर्मा तीर्थयात्रासे लौट रहा था। रास्तेमें श्रेणिकसे भेट हो गयी। कुछ दूर साथ-साथ चलनेपर श्रेणिकने सोमशर्मासे कहा– आप भी वड़ी दूरसे आते हैं और मैं भी। दोनों थक चुके हैं। अतः आप मेरे कन्धेपर बैठ लें और मैं आपके कंधेपर बैठ जाऊं तो अच्छा हो। उसने श्रेणिकके बातोंका कोई उत्तर न दिया। कुछ दूर और चलनेपर श्रेणिकने दो गाँव देखे। उसने छोटे गाँवको बड़ा बतलाया और बड़ेको छोटा। रास्ते

में कड़ी धूप होती तो छाता उतार लेता था और जहां वृक्षोंकी छाया होती; वहां चढ़ा लेता था। इसी प्रकार नदी-नालेमें जुता पहन लेता था और रास्तेमें नंगे पैर चलता था। रास्तेमें एक स्त्री पति द्वारा पीटी जा रही थी। उसे देखकर श्रेणिकने कहा—यह स्त्री बंधी है या खुली। आगे चलकर एक मृत व्यक्तिको देखकर कहा—यह जीवित है या मर गया। ऐसे ही एक पके हुए धानके खेतको देख कर श्रेणिकने कहा—इस खेतके मालिकोंने इसे खा लिया है, या अब खायेंगे। श्रेणिककी ऐसी उटपटांग बातें सुनकर सोमशर्मा ऊब गया। उसने समझा कि यह पागल हो गया है। सोमशर्मा गांवमें पहुंच गया। उसने श्रेणिकको बाहर ही बैठा कर घर आया। अपने पिताके आगमनसे अभयमती बड़ी प्रसन्न हुई। उसने पितासे कुशल समाचार पूछा। सोमशर्माने कहा– बेटी मेरे साथ एक सुन्दर युवक आया है। किन्तु दुःख है कि वह पागल हो गया है। मुझे तो उसकी अपूर्व सुन्दरता और पागलपनपर बड़ी दया आती है।

अपने पिताकी बातें सुनकर अभयमतीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, पिताजी! किस प्रकारका वह पागलपन करता है? सोम शर्माने रास्तेकी सब बातें कहीं। अभयमतीने कहा—पिताजी! आप ने उसकी रहस्यमयी बातोंपर ध्यान न दिया। मैं क्रमसे बतलाती हूं। उसने यह कहा था कि मेरे कन्धेपर चढ़ जाइये और मैं आपके कंधेपर चढ़ूं। इसका अर्थ यह होता है कि हम दोनों एक ही रास्तेसे चलें। दो व्यक्तियोंके साथ साथ रहनेसे बड़ी सहूलियत होती है। दो गांवोंको देखकर बड़ेको छोटा और छोटेको बड़ा बतलानेका मतलब है कि, छोटे गांवमें सज्जन रहते हैं, और बड़े गांव-

में दुर्जन। बड़प्पनसे ही बड़े छोटेका मान होता है केवल विस्तारसे नहीं।

वृक्षके नीचे छाता चढ़ा लेनेकी यह मंशा है कि, रास्तेमें यदि छाता न भी लगाया जाय तो कोई हानि नहीं। पर वृक्षके नीचे सायामें छाता न लगानेसे पक्षियोंके बीट करनेकी आशंका रहती है। पानीमें जुता पहनेमें भी रहस्य है। वहां जुता न पहननेसे कांटा लगनेका डर रहता है, पर रास्तेमें नहीं। स्त्रीको मार खाते देखकर खुली और बंधी पूछनेका अभिप्राय था कि स्त्री विवाहित है या अ-विवाहित। इसी प्रकार मुर्देके पूछनेका भाव था कि क्या संसारमें इसने कोई कीर्ति की है। यदि की होगी तो मरा कैसे ?

सातवां प्रश्न उसका और भी महत्वका है। उसके पूछनेका मतलब यह था कि यदि खेतके मालिकोंने कर्ज लिया होगा तो वे खेतको खा चुके हैं। यदि नहीं, तो आगे वे अपने उपयोगमें लायेंगे।

अभयमतीकी बातें सुनकर सोमशर्मा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपनी पुत्रीसे कहा ऐसे बुद्धिमान पुरुषको जरूर घर लाना चाहिये। अभयमतीने कहा—पिताजी ! आपको कष्ट उठानेकी जरूरत नहीं। मैं दासीसे बुलावा लेती हूं। अभी मैं उसकी परीक्षा करूंगी। अभयमतीने निपुणमतीको उबटन और चूर्ण देकर भेजा और कहा कि आगन्तुकसे जाकर कहना कि, मेरी मालकिनने आपकी मालिश के लिये यह तेल और चूर्ण भेजा है। इसे आप अच्छी तरह मालिश कर लें और स्नान कर अमुक रास्तेसे घर आवें।

निपुणमतीने जाकर श्रेणिकसे ऐसा ही कहा ! श्रेणिक समझ

गया कि सोमशर्माकी पुत्रीने मेरी परीक्षाके लिये ऐसा काण्ड रचा है। उसने निपुणमतीसे एक गड्ढेका इशारा करके कहा कि चूर्ण और उबटन यही रख दो मैं स्नान करके तुम्हारी मालकिनकी आज्ञा पालन करूंगा। निपुणमती तेल और चूर्ण रखकर चली गई

अभयमतीने श्रेणिकको जिस रास्तेसे बुलाया था, उसमें घुटने तक कीचड़ भरवा दिया था। कीचड़के पास बाँसकी एक कमची थी वहीं थोड़ासा पानी रखवा दिया था कि श्रेणिक पैर धोकर घरमें प्रवेश करे।

श्रेणिकने देखा चारों ओर कीचड़ भरा है। वह कीचड़में ही होकर गया। पहले उसने कमचीसे कीचड़ साफ कर लिया और बादमें पैर धोकर घरमें प्रवेश किया। ऐसे ही अभयमतीने कई परीक्षायें लीं। श्रेणिक सबमें उत्तीर्ण हुआ। सोमशर्माकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उन्होंने श्रेणिकके साथ अभयमतीका विवाह कर दिया। श्रेणिक अपनी प्रियाके साथ दिन व्यतीत करने लगा।

सोमशर्मा नामक एक दूसरा ब्राह्मण जिनदत्त मुनिसे दीक्षा लेकर सन्याससे मरा था। उसका उल्लेख १०१ कथामें आ चुका है। सोमशर्मा सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। जब स्वर्गायु पूरी हुई तो वह कांची नगरीमें श्रेणिकका अभयकुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह वीर और बुद्धिमान था।

कांचीके महाराज वसुपाल एक बार दिग्विजयके लिये निकले। एक स्थानपर उन्होंने भव्य जिन मन्दिर देखा। उस मन्दिरमें विशेषता थी कि वह एक ही खम्भेके आधारपर निर्मित था। उसे देखकर वसुमित्रकी इच्छा हुई कि एक ऐसा ही मन्दिर कांचीमें

निर्मित हो। वसुपालने उसी समय अपने पुरोहित सोमशर्माको एक पत्र लिखा कि नगरमें भव्य जिन मन्दिर तैयार कराना जिसकी इमारत एक ही खम्भेपर निर्मित हो। सोमशर्माको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने श्रेणिकको पत्र दिखाया। श्रेणिकने कहा—आप इसकी रत्ती भर भी चिन्ता न करें। मै स्वयं भार लेता हूं। सोमशर्माने मन्दिर बनवानेका भार श्रेणिकको दे दिया। श्रेणिकने हजारों कारीगरोंको लगाकर अल्प समयमेंहो विशाल मन्दिर बनवा दिया।

दिग्विजयसे लौटनेपर जब वसुपालने भव्य मन्दिर देखा तो बड़े प्रसन्न हुए। श्रेणिकपर उनकी बड़ी श्रद्धा हुई। उन्होंने वसुमित्रको शादी श्रेणिके साथ कर दो।

इधर राजगृहके अधिपति उपश्रेणिक, श्रेणिककी रक्षाके लिये उसे देशसे निकाल कर कुछ दिनोंतक शासन किया। उन्हें विषय भोगादिसे वैराग्य हो गया। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार चिलात पुत्रको राज्य भार दे उन्होंने दीक्षा ले ली।

यद्यपि चिलात पुत्र एक विशाल राज्यका स्वामी बन गया था, पर उसकी प्रवृत्ति नीच थी। उसने प्रजाको कष्ट देना आरम्भ किया। प्रजा ऊब गयी थी, किन्तु प्रतिकार करनेका साहस नहीं होता था। प्रजा द्वारा श्रेणिकको भी यह हाल मालूम हुआ। उसने वसुपालकी सहायता लेकर चिलातपर चढ़ाई की। श्रेणिकको प्रजाकी काफी सहायता मिली, जिससे उसने चिलातको सिंहासन च्युत कर देशसे बाहर निकाल दिया और स्वयं सिंहासनपर बैठा। ठीक ही है राज्यकी शासन वही कर सकता है जिसमें क्षमता हो साहस हो। कायर, दुराचारी, अकर्मण्य शासनके योग्य नहीं।

उधर एक दिन अभय कुमारने अपनी मातासे पूछा कि, कई दिनोंसे पिताजी नहीं देख पड़ते। वे कहां हैं ? अभयमतीने कहा बेटा ! वे राज्य गृहमें 'पाण्डुकुटी' नामक महलमें निवास करते हैं। जान पड़ता है राज्यके कामोंसे हम लोगोंका उन्हें स्मरण न रहा। माता द्वारा पिताका पता पाकर अभय कुमार अकेला ही राजगृहकी ओर चल पड़ा। कुछ दिनों बाद वह नन्दगांवमें पहुंचा।

हमारे पाठकोंको स्मरण होगा कि निर्वासनके बाद श्रेणिक पहले नन्द गांवमें ही आया था, पर यहांके निवासियोंने राजद्रोह के भयसे रहने नहीं दिया था। इससे श्रेणिकको बड़ा क्रोध हुआ था। अब उन्हें सजा देनेके लिये श्रेणिकने एक आज्ञा पत्र भेजा था कि—'तुम्हारे गांवमें मीठे पानीका एक कूआं है; उसे शीघ्र मेरे यहां भेजो !' वहांके निवासी बे-तरह घबराये। भला कूआं कैसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाया जायगा। उन्हें राजाके पास जाकर कहनेका भी साहस न हुआ कि, महाराज यह असंभव बात कैसे सम्भव हो सकती है। सारे गांवमें यही चर्चा थी। अभय कुमारने भी सुना। उसने गांववालोंसे कहा– आपलोग एक सामान्य बातके लिये इतने चिन्न्वित क्यों हैं। मेरे कहनेके अनुसार चलें। उनलोगोंने अभयकुमारकी रायसे राजाको एक पत्र लिखा—राज राजेश्वर ! हमलोगोंने कूएंसे निवेदन किया कि महाराज तुम्हें अपने नगरमें बुलाते हैं। किन्तु कुएंने एक न सुनी और वह रूठकर गांवसे बाहर चला गया। फिर भी उसे ले जाने का एक उपाय है और उससे सम्भव है वह आपके नगरमें चला जाय। स्वभावतः पुरुष स्त्रियोंका गुलाम होता है। यदि आप

अपने नगरके कुदुंवर नामक कुईंको भेज दें तो वह उसे ले जा सकता है। श्रेणिक पढ़कर चुप रह गये। वे कुछ भी उत्तर न दे सके।

कुछ दिन वीत जानेपर श्रेणिकने नन्द गांवमें एक हाथी भेज दिया और लिखा कि इस हाथीका वजन कितना है। अभयकुमार वहां था ही। उसने युक्ति वताई। गांववालोंने नावके एक ओर हाथीको चढ़ा दिया और दूसरी ओर पत्थरके वड़े-वड़े ढोंके रख दिये। जव दोनों ओरका वजन समतोल हो गया तो पत्थरों को तोलकर श्रेणिकको लिख दिया कि हाथीका वजन इतना है। श्रेणिक पुनः चुप हो गया।

तीसरी वार श्रेणिकने लिखा कि गांवमें जो पूर्व ओर कूआं है उसे पश्चिमकी ओर कर देना। अभयकुमारने गांवको ही पूर्व की ओर वसा दिया। श्रेणिकने कई प्रश्नकर गांववालोंको दण्ड देना चाहा, पर उसे अपने प्रयत्नमें सफलता न मिली। अन्तमें श्रेणिकने लिखा कि—'मुझे वालूकी रस्सी चाहिये, तुमलोग शीघ्र बनाकर भेजो। अभयकुमारने इसके उत्तरमें लिखवाया कि महाराज! जैसी रस्सी आप चाहते हैं, उसका नमूना भेज दें। हमलोग तैयारकर आपकी सेवामें भेजदेंगे। अव श्रेणिकने चुप रहना ही उचित समझा। पर जव उन्हें मालूम हुआ कि नन्द गांवमें एक विदेशी आया है तो उसे देखनेकी उत्कंठा वढ़ी। श्रेणिकने एक पत्र लिखा · आपके यहाँ जो विदेशी ठहरा है, उसे मेरे पास भेजिये। किन्तु उसे समझा दीजिये कि वह न रातमें आये न दिन में, न सीधे रास्तेसे आये न टेढ़े रास्तेसे।

पहले तो अभयकुमार विचार करने लगा। एकाएक उसे युक्ति सूझी। वह संध्याके समय गाड़ीके एक कोनेमें बैठ कर गया। किन्तु देखता है कि सिंहासनपर एक साधारण पुरुष बैठा है। अभयकुमारको वहां भी चाल मालूम हुई। उसने राज सभापर दृष्टि डाली। राजसभामें बैठे हुए लोगोंकी दृष्टि एक व्यक्तिकी ओर थी और वह अन्य लोगोंसे सुन्दर और तेजस्वी मालूम पड़ता था उसने पिताको पहचान लिया और जाकर श्रेणिकके पैरोंपर गिर पड़ा। श्रेणिकने तत्काल छातीसे लगा लिया। वर्षों बाद पिता-पुत्र के मिलनसे बड़ा आनन्द मनाया गया, पूजा-प्रभावनाकी गयी। पश्चात् श्रेणिकने अपने आदमियोंको भेजकर दोनों पत्नियोंको भी बुलवा लिया। पिता पुत्र सहित श्रेणिकके दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत होने लगे। अब इसके आगेकी कथा लिखते हैं।

महाराज चेटक सिन्धुकी विशाला नगरीके राजा थे। वे धर्मात्मा और बुद्धिमान थे। उनकी श्रद्धा जिन धर्मपर अधिक थी। उनकी स्त्री सुभद्रा थी। वह भी सुन्दर और पतिव्रता थी। राजा चेटककी सात पुत्रियां थीं, जिनमें प्रथम पुत्री प्रिय कारिणी धर्मात्मा थी। उसे संसारके वेत्ता तीर्थंकरकी माता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अन्य पुत्रियोंके नाम क्रमसे मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना थे। सातवीं पुत्री चन्दनाको महान कष्ट सहनकर सतीत्वकी रक्षा करनी पड़ी थी।

महाराज चेटक अपनी पुत्रियोंपर बड़ा प्रेम रखते थे। उन्होंने एक साथ ही सबकी तस्वीर तैयार कराई। चित्रकारने बड़ी चतुरतासे मनोहर चित्र बनवाया। एकदिन चेटकने चित्रको देखा तो

उनकी दृष्टि चेलिनीकी जांघपर जा पड़ी। उसकी जांघपर तिलका निशान था। चित्रकारने भी चित्रमें तिल बना दिया था। चित्रमें तिलको देखकर महाराजके क्रोधका ठिकाना न रहा। उन्होंने उसी समय चित्रकारको बुलाकर पूछा—तुम्हें जांघमें तिलका हाल कैसे मालूम हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा—महाराज इस तिलको मैंने कईवार मिटाया, किन्तु जैसे ही मैं चित्रमें रंग भरनेके लिये जाता कि एक बूंद इसी जगह पड़ जाता। वारबार ऐसा होनेसे मैंने पुनः मिटाना उचित न समझा। इतना सुनकर महाराजको प्रसन्नता हुई। उन्होंने चित्रकारको पारितोषिक देकर विदा किया।

अव चेटक महाराज जिन भगवानकी पूजा करते समय उस चित्रपटको सामने रख लेते थे और भक्ति पूर्वक जिन पूजामें लीन हो जाते थे। एकवार महाराज चेटकको किसी आवश्यक कार्य-वश राजगृह आना पड़ा। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर उन्होंने स्नान किया और जिनपूजा आरम्भकी। पूजाके समय चित्रपट उनके सामने था और उसपर भी फूल आदि पड़े हुए थे।

महाराज श्रेणिक भी उसी समय भगवानकी पूजाके लिये पधारे। चित्रपट देखकर उन्होंने दूसरे लोगोंसे पूछा कि—यह चित्र-पट किसका है। लोगोंने उत्तरमें कहा—राज राजेश्वर यह विशालाके महाराज चेटककी पुत्रियोंका चित्रपट है। इनमें चार पुत्रियां तो विवाहित है; किन्तु चेलिनी और ज्येष्ठा विवाहके योग्य हैं। सातवीं पुत्री चन्दना तो अभी वालिका है। यह सुनकर श्रेणिक महाराज चेलिनी और ज्येष्ठाके प्रति आकर्षित हो गये।

लगेगी ? कंसको इस विचारसे धीरज बंधा।

कुश्तीके दिन नियत स्थानपर सारी मथुरा उस वीरको देखने उमड़ पड़ी, जो इन पहलवानोंके साथ लड़नेवाला था। आंखें उस वीर पुरुषकी बाट जोहने लगीं। आनेमें देरी देख कंस भी निराश होने लगा। कुश्तीका समय निकट आ गया, पर तबतक कोई लड़नेको अखाड़ेमें न उतरा। लोग जाने ही की तैयारीमें थे कि इतनेमें चौबीस पच्चीस वर्षका एक जवान भीड़को चीरता हुआ आया और गर्ज कर बोला—जिसे कुश्ती लड़नी हो वह, अखाड़ेमें उतर कर अपना बल दिखावे। उपस्थित मंडली आगत युवाकी देव-दुर्लभ सुन्दरता देख दङ्ग रह गयी। बहुतोंको उसकी छोटी उम्र तथा उन भीमकाय पहलवानोंको देख कुशङ्का होने लगी। आगन्तुक युवाकी हृदय हिलानेवाली गर्जना सुन एक भीमकाय पहलवान अखाड़ेमें उतरा और ताल ठोककर वीरको आनेके लिये ललकारा। युवक बिजलीकी तरह अखाड़ेमें दाखिल हुआ। इशारा होते ही दोनोंकी मुठभेड़ हुई। उस मूर्त्तिमान वीर श्रीने कुछ देर तो पहलवानको खेलाया, फिर उठाकर ऐसा पछाड़ा कि उसे आस-मानके तारे देख पड़ने लगे। इतनेमें उसका दूसरा साथी अखाड़े में उतरा। वासुदेवने उसकी भी वही दशा की। उपस्थित मंडलीके आनन्दकी सीमा न रही। तालियोंसे उसका खूब जय जयकार मनाया गया। अब कंससे न रहा गया, उसके हृदयमें ईर्षा, द्वेष और प्रतिहिंसाकी आग जल उठी। वह तलवार हाथमें लिये लल-कार कर बोला—ठहरो ! अभी लड़ाई बाकी है। वह तलवार लिये ही अखाड़ेमें उतरा। उसे देख सब भौंचक से रह गये।

किसीकी समझमें न आया कि रहस्य क्या है ? सब उस भयङ्कर समयकी प्रतीक्षा करने लगे, जब आपसे आप इसका फैसला होनेवाला था। प्रकृति अधिक अन्याय, अत्याचार सहन नहीं करती, इसलिये वह फिर एक ऐसो शक्ति पैदा करती है जो उन अत्याचारों को जड़मूलसे उखाड़ फेंके। कंसके अत्याचरोंसे शान्ति और सुखका कहीं नाम-निशान न रह गया था, इसीलिये वासुदेवका आविर्भाव हुआ। कंसको अखाड़ेमें उतरा देख वासुदेव भी तलवार उठा उसके सामने खड़ा हुआ। दोनोंने अपनी तलवारें संभाली। कंसने क्रोधकर वासुदेवपर पहला वार किया। श्रीकृष्णने उसके वारको बचाकर उसपर ऐसा हमला किया कि कंससे सम्हलाते न बना। देखते २ वह धड़ामसे गिरकर सदाके लिये पृथ्वीकी गोदमें सो गया। प्रकृतिको सन्तोष हुआ। उसने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लोगोंको शिक्षा दी कि निर्बलोंपर अत्याचार करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। यदि तुम सुखी रहना चाहते हो तो दूसरोंको भी सुखी करनेका यत्न करो। कंसको निरीह प्रजापर अत्या-करनेका उपयुक्त प्रायश्चित्त मिला। अशान्तिकी जगह शान्तिपूर्ण शासनकी स्थापना हुई। वासुदेवने उसी समय कंसके पिता उग्रसेनको मुक्त कर राज सिंहासनपर बैठाया। इसके बाद श्रीकृष्ण ने जरासन्धपर चढ़ाई करके उसे भी कंसका रास्ता दिखाया और आप अर्ध चक्रवर्ती राजा होकर प्रजाका नीतिके साथ पालन करने लगे। यह कथा प्रसंगवश संक्षेपमें लिखी गयी है, जिन्हें विस्तारके साथ जानना हो, वे हरिवंश पुराण पढ़ें।

क्रोधी, मायाचारी, द्वेषी, मानी, अधर्मी, और अत्याचारी

कुछ दिनोंतक अपने खोटे कामोंको जारी रख सकते हैं। अन्तमें प्रकृति उनका नाम-निशानतक नहीं रहने देती। कालके हाथ तो सभीको पढ़ना ही है, पर धर्मात्माओंको विशेषता यह होती है कि मरनेके बाद भी वे लोगोंको श्रद्धाके पात्र होते हैं और सुगति लाभ करते हैं। दुराचारियोंकी लोगोंमें निन्दा होती है और अन्तमें उन्हें नरक जाना पड़ता है। इसलिये जो विचारशील हैं, उन्हें सांसारिक दुःखोंके नाश करनेवाले और अन्तमें मोक्ष देनेवाले जिन धर्मका सेवन करना चाहिये।

---

## ४५. लक्ष्मीमतीकी कथा

न जगद्बन्धुका ज्ञान होनेपर कुछ भी गुप्त नहीं रह जाता। अपने हितके लिये उसी जिनेंद्र भगवानको नमस्कार कर मान करनेका कैसा बुरा फल होता है, इस सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

मगधदेशके लक्ष्मी नामक सुन्दर गांवमें सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री लक्ष्मीमती देखनेमें सुन्दर और जवान थी। उसे अपनी जातिका अभिमान था और सदा वह अपनेको सजाने और शृङ्गार करनेमें मस्त रहती थी। अनेक गुणोंके रहते भी यह उसमें बड़ा दोष था।

एक बार पन्द्रह दिनोंके उपवास किये हुए श्री समाधि गुप्त मुनि आहारके लिये इसके यहां आये। सोम शर्मा उन्हें भक्तिसे ऊंचे आसनपर विराजमान कर अपनी स्त्रीको आहार करा देनेके लिये कहकर आप कहीं बाहर चला गया। उसे किसी कामकी जल्दी थी।

इधर ब्राह्मणी बैठी बैठी शीशेमें अपना मुंह देख रही थी। उसने अभिमानवश मुनिको गालियां दीं, उनकी निन्दा की और किवाड़ बन्द कर लिये। हाय! इससे अधिक और क्या पाप होगा? मुनि-राज शान्त, तपस्वी. सर्वहितैषी और बड़े चरित्रवान थे, इसलिये ब्राह्मणीकी दुष्टतापर कुछ ध्यान न दे वे लौट गये। मुनि निन्दाके पापसे लक्ष्मीमतीके सातवें दिन कोढ़ निकल आया। सन्तोंकी निन्दासे कभी शान्ति नहीं मिलती। उसकी बुरी हालत देख घरके लोगोंने उसे घरसे बाहर कर दिया। यह कष्ट उससे न सहा गया और वह आगमें जलकर मर गयी। उस पापसे वह उसी गांवमें धोबीके यहां गधी हुई। इस दशामें उसे दूध पीनेको नहीं मिला और मरकर सूअरी हुई। फिर दो बार इसे कुत्तीका जन्म लेना पड़ा। अब नर्मदा नदीके किनारे भृगुकच्छ गांवमें वह एक मल्लाहके यहां काणा नामकी लड़की हुई है। जन्मसे ही इसका शरीर दुर्गन्धित होनेके कारण कोई उसके पास नहीं बैठता। यह अभिमानका फल है कि ब्राह्मणीसे मल्लाहकी लड़की हुई, फिर भी कोई नहीं पूछता।

एक दिन काणा लोगोंको नाव द्वारा नदी पार करा रही थी। इसने नदी किनारे उसी मुनिको तपस्या करते देखा जिसकी निन्दा कर वह इस गतिको प्राप्त हुई है। मुनिको नमस्कार कर उसने

पूछा—प्रभो ! क्या मैंने कहीं आपको देखा है ? मुनिने कहा—हाँ, बच्ची ! तू पूर्व जन्ममें ब्राह्मणी थी, तेरा नाम लक्ष्मीमती था। मुनि निन्दाके पापसे तुझे कोढ़ निकल आया। उस दुखको न सहकर तू आगमें जल मरी और आत्म-हत्याके पापसे गधी, सूअरी और दो वार कुत्ती हुई। अब तू मल्लाहके यहां पैदा हुई है। पूर्व जन्मका हाल सुनकर काणाको पहलेकी सबकी सब बातें याद हो गईं। फिर वह दुःखी हो मुनिको प्रणामकर बोली—प्रभो ! मैं बड़ी पापिनी हूं साधु-महात्माओंकी निन्दाकर मैंने बड़ा पाप किया है। अब इस-से मेरी रक्षा कीजिये। मुनिने उसे धर्मोपदेश दिया। काणाको सुन कर शान्ति मिली और वैराग्य हुआ। वह वहीं मुनिके पास दीक्षा लेकर क्षुल्लिकिनी हो गई। फिर अपनी शक्तिके अनुसार उसने खूब तपस्या की और शुभ भावोंसे मरकर स्वर्ग गई। यही काणा फिर कुण्ड नगरके राजा भीष्मकी महारानी यशस्वतीके रुपिणी नामको सुन्दर कन्या हुई। रूपिणीका व्याह वासुदेवके साथ हुआ। पुण्य-बलसे सब कुछ मिल सकता है।

जैन धर्म सर्व हितकारी सर्वोच्च धर्म है। इसके माननेवाले कुलीन, यशस्वी और धनी होकर अन्तमें मोक्षका सर्वोच्च सुख लाभ करते हैं।

# ४६ पुष्पदत्तकी कथा ।

अनन्त सुखके देने वाले, त्रिलोक स्वामी भगवान् जिनेन्द्रको नमस्कार कर मायाको नाश करनेके लिये मायाविनी पुष्पदत्ताकी कथा लिखी जाती है ।

अजितावर्त नगरके राजा पुष्पचूलको रानीका नाम पुष्पदत्ता था। राज सुख भोगते हुए पुष्प चूलने एक दिन जिन धर्मका स्वरूप सुना जो स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है। धर्मोपदेश सुनकर राजाको वैराग्य हो गया । वे दीक्षा लेकर मुनि हो गये । उनकी रानीने भी देखा-देखी ब्रह्मिला आर्यिकाके पास आर्यिकाकी दीक्षा ले ली । दीक्षा लेनेपर भी इसे अपने बड़प्पनका अभिमान ज्योंका त्यों बना रहा। आर्यिकाओंको नमस्कार विनय करना इसे अपमानका कारण जान पड़ने लगा । इसके सिवा इस योग अवस्थामें भी यह श्रृङ्गार द्रव्यों द्वारा अपनेको सम्हाला करती थी । एक दिन ब्रह्मिला मुनिने इसे समझाया कि योगावस्थामें तुझे श्रृङ्गारादि नहीं करना चाहिये, ये विषयको बढ़ानेवाली चीजें हैं। पुष्पदत्ताने कहा नहीं जी, मै श्रृङ्गारादि कहां करती हूं। मेरा शरीर तो जन्मसे ही सुगन्धमय है। धर्म वासना स्वाभाविक न हो, तो समझानेसे उसका फल वैसा अच्छा नहीं होता, कभी कभी तो उल्टा फल होता है। पुष्पदत्ताका इस मायाचारके फलस्वरूप मरकर चम्पापुरीमें सागरदत्त सेठकी दासी हुई। वहां भी इसके मुखसे दुर्गन्धि निकलती रहती थी और लोग इसे पूतिमुखी कहते थे। अतएव बुद्धि-

मानोंको मायासे दूर रहना चाहिये, क्योंकि यह दुःखका कारण और सुगतिका नाश करनेवाली है।

---

## ४७ मरीचिकी कथा।

सुख रूपी धान्यको हरा-भरा करनेके लिये मेघ स्वरूप भगवान जिनेन्द्रके चरणोंको नमस्कार कर शास्त्रानुसार भरत-पुत्र मरीचिकी कथा लिखी जाती है।

अयोध्याके सम्राट भरतके मरीचि नामक पुत्र हुआ, जो भव्य और सरल स्वभावका था। जब इन्द्रादि देवों द्वारा पूजित भगवान आदिनाथ संसार छोड़ योगी हुए तब उनके साथ चार हजार राजा और भी साधु हो गये। इस कथाका नायक मरीचि भी इन साधुओंमें था।

राजा भरत एक दिन आदिनाथ तीर्थङ्करका उपदेश सुनने समवसरणमें गये। भगवानको नमस्कार कर उन्होंने पूछा—भगवन्! आपके उपदेशसे मुझे ज्ञात पड़ा कि आपके बाद तेइस तीर्थङ्कर और होंगे। क्या इस सभामें कोई ऐसा महा पुरुष है जो तीर्थङ्कर होने वाला हो? भगवान बोले—हां, है। वह यही तेरा पुत्र मरीचि है जो अन्तिम तीर्थंकर महावीरके नामसे प्रख्यात होगा। सुनकर भरतकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। पर इस बातसे मरीचिकी मति-गति उलटी हो गयी। उसे अभिमान हो गया कि अब मैं तीर्थङ्कर होऊंगा ही तो फिर नंगे रहना, दुःख सहना, पूरा भोजन न

करना आदि कष्ट क्यों सहूं ? आरामसे क्यों न रहूं ? ऐसे विचारों के उदय होते ही उसने व्रत, संयम, सम्यक्त्व आदिको छोड़ दिया। फिर तापसी वनकर सांख्य, परिव्राजक आदि कई मतोंको अपनी कल्पनासे चलाकर संसारके घोर दुखोंका भोगने वाला हुआ। प्रमाद कल्याण मार्गमें सबसे बड़ा विघ्नकर है और अज्ञानसे भव्य जन भी प्रमादी वनकर दुःख भोगते हैं। अतएव ज्ञानियोंको धर्मके कामोंमें तो भूलकर भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। वहुत दिनों तक संसारमें घूमनेके वाद मरीचिके पाप कर्मकी कुछ शान्ति हुई और फिर उन्हें जैन धर्मका उपदेश मिल गया। उसके प्रसादसे वह नन्द नामका राजा हुआ। फिर किसी कारणवश उसे संसार-से वैराग्य हो गया। मुनि होकर उसने सोलह कारण भावना द्वारा तीर्थंकर नाम प्रकृतिका वन्ध किया। यहांसे वह स्वर्ग गया।

स्वर्गायु पूरा होनेपर इसने कुण्डलपुरमें सिद्धार्थ राजाको प्रिय कारिणी प्रियाके यहां जन्म लिया। ये ही संसार पूज्य महावीर भगवान्‌के नामसे प्रख्तात हुए। इन्होंने वचपनसे ही दीक्षा लेकर तपस्या द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त किया। अनेक जीवोंको इन्होंने कल्याण मार्गमें लगाया। अपने समयमें धर्मके नामपर होने वाली वेशुमार पशु हिंसाका इन्होंने घोर विरोधकर उसे जड़ मूलसे उखाड़ फेंका। इनके समयमें अहिंसा धर्मकी पुनः स्थापना हुई। अन्तमें ये परमधाम मोक्षको प्राप्त हुए। अतएव हे आत्म सुखके चाहने वालो ! यदि तुम्हें मोक्ष सुखकी चाह है तो सदा हृदयमें जिन भगवानके पवित्र उपदेशको स्थान दो और उसके अनुसार काम करो।

वे वर्द्धमान-महावीर भगवान संसारमें सदा जय लाभ करें। उनका पवित्र शासन निरन्तर मिथ्यान्धकारका नाश कर चमकता रहे, जो जीवमात्रके हितकारी और ज्ञानके समुद्र हैं।

---

## ४८ गन्धमित्रकी कथा।

नन्त गुण सम्पन्न और संसारके हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर गन्धमित्र राजाका कथा लिखो जाती है, जिसने घ्राणेन्द्रियके विषयमें फंसकर अपनी जान देदी।

अयोध्याके राजा विजयसेन और रानी विजयवतीके दो पुत्र थे, जिनका नाम जयसेन और गन्धमित्र था। इनमें गन्धमित्र बड़ा लम्पट था। भौंरेको तरह नाना प्रकारके फूलोंके सूंघनेमें वह सदा मस्त रहता था।

इसके पिता विजयसेन किसी कारणवश संसारसे विरक्त हो गये। जयसेनको राज्य सौंप और गन्धमित्रको युवराज बनाकर इन्होंने सागरसेन मुनिसे योग ले लिया। सज्जनोंकी धर्मकी ओर स्वाभाविक रुचि होती है।

गन्धमित्रको युवराज पद अच्छा न लगा। उसकी इच्छा राजा होनेकी थी। इसलिये उसने बड़े भाईके विरुद्ध षडयन्त्र रचा और कर्मचारियोंको धनका लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया।

प्रजाको भी उलटी-सीधी सुझाकर बहकाया। गन्धमित्रको इसमें सफलता मिली और मौका पाकर जयसेनको सिंहासनसे उतार वह आप राजा बन बैठा। राज वैभव महापापका कारण होता है, जिसके लोभमें पड़कर मूर्ख अपने सगे भाईतककी जान लेनेकी कोशिश करते हैं।

राज्यभ्रष्ट जयसेन अपने भाईके इस अन्यायसे दुःखित हुआ और बदला लेनेका उपाय सोचने लगा। प्रतिहिंसासे अपने कर्तव्य को वह भूल भूल बैठा। बड़ी उत्सुकतासे वह उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगा, जब गन्धमित्रको मारकर अपने हृदयको सन्तुष्ट करे।

गन्धमित्र लम्पट तो था ही। प्रतिदिन स्त्रियोंको साथ ले सरयू नदीमें वह जल-क्रीड़ा करने जाया करता था। जयसेनने इमी मौके से लाभ उठाया। एक दिन उसने जहरके पुट दिये अनेक मनोहर फूलोंको ऊपरकी ओरसे नदीमें बहा दिया। फूल गन्धमित्रके पास होकर बहे ज़ा रहे थे कि वह उन्हें लेनेके लिये झपटा। कुछ फूलों-को हाथमें ले वह सूंघने लगा। सूंघते ही विषका उसपर असर हुआ और देखते देखते वह चल बसा। मरकर भी घ्राणेन्द्रियके विषयकी लालसाके कारण उसे नरक जाना पड़ा।

गन्धमित्र केवल एक विषयका सेवन कर नरक गया, जो दुःखों का स्थान है। तब जो लोग पांचों इन्द्रियोंसे दिन रात विषयोंका सेवन करते हैं, वे किस घोर नरकमें जांयगे, इसका ध्यान करें। अतएव बुद्धिमानोंको विषयोंकी ओरसे मन खींच जिनधर्मकी ओर लगाना चाहिये, जो स्वर्ग सुखका देने वाला है।

---

# ४६ गन्धर्व सेनाकी कथा।

सर्वं सुखदायक जिन भगवानके चरणोंको नमस्कार कर गन्धर्व सेनाका चरित्र लिखा जाता है। यह भी एक ही विषयकी आसक्तिके कारण मौतके मुखमें पड़ी थी।

पाटलोपुत्रके राजा गन्धर्वदत्तकी रानी गन्धर्व दत्ताको गन्धर्व सेना नामक कन्या थी। गन्धर्वसेना गान विद्याओंमें बड़ी निपुण थी। उसने प्रतिज्ञा कर रखो थी कि गान विद्यामें जो मुझे जीत लेगा, वही मेरा स्वामो होगा। उसकी मनोहर सुन्दरताको सुन अनेक क्षत्रिय-कुमार उसके पानेकी लालसासे आते थे पर सबको निराश हो लौट जाना पड़ता था। गन्धर्व सेनाके सामने गानेमें कोई नहीं ठहरने पाता था।

पांचाल नामक एक उपाध्याय गान विद्याका अच्छा जानकार था। उसकी इच्छा भो गन्धर्वसेनाको देखनेकी हुई। वह अपने पांच सौ शिष्योंको साथ लिये पटना आकर एक वगीचेमें ठहरा। गर्मीके दिनोंमें दूरको यात्रा करनेसे पांचाल थक गया था। किसी के आनेपर जगा देनेका आदेश देकर वह एक वृक्षकी ठण्डी छाया-में सो गया। उसके सोते ही बहुतसे विद्यार्थी शहर देखने चले गये।

गन्धर्वसेनाको पांचालके आने और उसके पाण्डित्यकी खबर लगी। वह उसे देखने आई। बहुतसी वीणाओंको आस पास रखे सोया देख गन्धर्व सेनाने समझा कि विद्वान तो यह भारी मालूम होता है पर उसके लार बहते हुए मुखको देखकर उसे बड़ी घृणा

हुई। उसने फिर उसकी ओर देखातक नहीं। जिस वृक्षके नीचे वह सोया था उसकी चन्दन फूल आदिसे पूजाकर वह अपने महल में-लौट आई। जब पांचालकी नींद खुली और उसने वृक्षको गन्ध पुष्पादिसे पूजा हुआ पाया तो उसे कुछ सन्देह हुआ। एक विद्यार्थी से पूछनेपर मालूम हुआ कि एक स्त्री आयी थी, जो वृक्षको पूजा कर चली गयी। पांचालने इतनेसे ही समझ लिया कि गन्धर्व सेना आकर चली गई और सोनेके कारण सब बना-बनाया काम बिगड़ गया। फिर भी उसने लौट जाना ठीक नहीं समझा। वह राजासे मिला और रहनेके लिये एक स्थान मांगा। स्थान उनकी प्रार्थनाके अनुसार गन्धर्वसेनाके महलके पास ही मिला, क्योंकि उसकी इच्छा राजकुमारीका गाना सुनकर यह देखनेकी थी कि इस विषयमें उस की कैसी गति है।

एक दिन रातके तीन चार बजे पांचाल वीणाको हाथमें लिये बड़ी मधुरतासे गाने लगा। शान्त रात्रिमें उसके गानेकी मधुर मनोहर आवाज आकाशको भेदती हुई गन्धर्वसेनाके कानोंसे टकराई। गन्धर्वसेना इस समय गाढ़ी निद्रामें थी। इस मन मुग्धकर आवाजको सुनकर वह सहसा चौंक पड़ी और उठ बैठी। इतनेसे ही उसे सन्तोष न हुआ। फिर वह उस ओर दौड़ी, जिधरसे आवाज गूंजती हुई आ रही थी। इस बे-भान अवस्थामें दौड़ते हुए उसका पांव फिसल गया और धड़ामसे वह जमीनपर गिर पड़ी। गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। इस विषयासक्तिके कारण उसे चिरकालतक संसार भ्रमण करना पड़ा।

केवल कर्णेन्द्रियकी विषयासक्तिके कारण गन्धर्वसेना अथाह

संसार सागरमें डूबीं। फिर जो पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें सदा मस्त रहते हैं, उनकी क्या हालत होगी? अतएव धर्माचारियोंको इनसे बिलकुल अलग रहना चाहिये।

## ५० भीमराज की कथा।

केवलज्ञान रूपी नेत्रोंके धारण करनेवाले श्री जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार करके भीमराज की कथा लिखी जाती है, जिसे सुनकर सत्पुरुषों को इस दुःखमय संसारसे वैराग्य हो।

कांपिल्य नगरमें भीम नामका एक दुर्बुद्धि और पापी राजा हो गया है। उसकी रानीका नाम सोम श्री और पुत्रका भीमदास था। भीमने कुलक्रमके अनुसार नन्दीश्वर पर्वमें मुनादी पिटवाई कि कोई इस पर्वमें जीव हिंसा न करे। मुनादी तो उसने पिटवा दी पर मांस खाये बिना उसे अपने ही चैन नहीं पड़ता था। उसने इस पर्वमें भी अपने रसोइयेसे मांस पकानेको कहा। दूकानें बन्द थीं। मांस मिलनेका कोई उपाय न देख वह मसानसे एक बच्चेकी लाश उठा लाया और उसे पकाकर राजाको खिलाया। मांस राजाको अच्छा लगा। उसने रसोइयासे पूछा-क्यों रे! आज यह मांस और दिनोंकी अपेक्षा इतना स्वादिष्ट क्यों है? रसोइयेने डरकर सच्ची बात राजासे कह दी। राजाने उससे कहा—आजसे तू बालकोंका ही मांस पकाया करना।

राजाने तो कह दिया, पर रसोइयेको इस बातकी चिन्ता हुई कि रोज वह बालकोंको लाये कहांसे ? राजाज्ञाका पालन तो होना ही चाहिये। तबसे रोज शामको वह मुहल्लोंमें जाता और किसी न किसी बच्चेको मिठाईका लोभ देकर झट उठा लाता। इस प्रकार रोज एक बच्चेकी जान जाने लगी। पापी लोगोंकी सङ्गति दूसरोंको भी पापी बना देती है।

बालकोंके इस प्रकार प्रतिदिन गायब होनेसे शहरमें बड़ी हलचल मच गई। सब इसका पता लगाने लगे। एक दिन रसोइया चुपकेसे एक बालकको उठाकर चला कि पीछेसे किसीने उसे देख लिया। रसोइया झटपट पकड़ लिया गया। पूछने पर उसने सब सच्ची सच्ची बातें बतला दीं। यह बात मन्त्रियोंके पास पहुंची। उन्होंने सलाह कर भीमदासको अपना राजा बनाया और भीमको रसोइयेके साथ शहरसे निकाल दिया। पापियोंका कोई साथ नहीं देता।

भीम वहांसे चलकर एक जङ्गलमें पहुंचा। उसे बहुत भूख लगी, पर खानेको कुछ नहीं था। तब वह अपने रसोइयेको ही मार कर खा गया। वहांसे घूमता फिरता वह मल्लेलपुर पहुंचा और वहां वासुदेवके हाथ मारा जाकर नरक गया।

अधर्मी पुरुष अपने ही पापोंसे संसार-सागरमें गोता खाते रहते हैं, इसलिये बुद्धिमानोंको सुखके स्थान जैन धर्मका पालन करना चाहिये।

---

# ५१ नागदत्ता की कथा ।

वों, विद्याधरों; चक्रवर्तियों और महाजनों द्वारा पूजित जिन भगवानको नमस्कार कर नागदत्ता की कथा लिखी जाती है ।

आभीर देशके नासक्य नगरमें सागरदत्त सेठ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम नागदत्ता था । इसके एक लड़का और एक लड़की थी, जिनका नाम श्रीकुमार और श्रीषेणा था । नागदत्ताकी आशनाई नन्द नामक एक चरवाहे से थी । नागदत्ताके बहकानेसे बीमारीका बहाना कर वह एक दिन गाय चराने नहीं आया । सागरदत्त स्वयं गौ चराने गया । जङ्गल में गौवोंको चरते छोड़ वह एक वृक्षके नीचे सो गया । पीछेसे नन्द ग्वालेने आकर उसे मार डाला । इसमें भी नागदत्तका हाथ था । कुलटाएं क्या नहीं कर सकती हैं ?

नागदत्ता और नन्द इस प्रकार अपने राहका कांटा साफकर अपनी नीच मनोवृतिको पूरा करने और पापके बोझको बढ़ाने लगा । श्रीकुमार अपनी माताकी इस नीचतासे बहुत कष्ट पाने लगा । उसे लोगोंको मुंह दिखाना कठिन हो गया । उसने अपनी माताको इस विषयमें बहुत कुछ कहा सुना, फिर भी कोई असर न हुआ । उल्टे उसने श्रीकुमारको मार डालनेके लिये भी नन्दको उभाड़ा । नन्द फिर बहाना कर गौ चराने नहीं आया । श्रीकुमार स्वयं जानेको तैयार हुआ, यह देख श्रीषेणाने उसे रोककर कहा

कि भैया ! माताने इसी प्रकार कपट कर पिताजीको मरवा डाला है, अब वह तुम्हें भी मरवा डालनेको दांत पीस रही है। नन्दने इसीलिये आज फिर वहाना किया है। श्रीकुमार बोला—वहन ! अच्छा किया, जो तुमने मुझे सावधान कर दिया। तुम मेरी चिन्ता न करो। यदि मैं गौ चराने न जाऊंगा, तो माताको अधिक संदेह होगा और वह फिर मुझे मरवानेका कोई दूसरा यत्न करेगी। आज अच्छा मौका हाथ लगा है कि मैं उस अंकुरको जड़मूलसे उखाड़ फेंकूं। तुम घवराना नहीं, अनाथोंके नाथ अपना भी मालिक है।

श्रीकुमार वहनको समझाकर गौएं चराने जङ्गल गया। वहां एक लकड़ेको वस्त्रोंसे ढककर इस तरह रख दिया कि वह दूसरों को सोया हुआ मनुष्य जान पड़े और आप एक ओर छिप गया। श्रीषेणाकी वात सच निकली। नन्द दवे पांव तलवार लिये लकड़े के पास आया और उस पर वार किया। इतनेमें पीछेसे श्रीकुमार ने उसकी पीठमें भाला मारा, जो आरा-पार हो गया और नन्द वहीं तड़फड़ाकर मर गया। इधर श्रीकुमार गौवोंको लेकर घर लौटा। आज दुहनेके लिये भी वह स्वयं गया। उसे देख नागदत्ता ने पूछा—क्यों कुमार ! नन्द नहीं आया ? वह तुझे ढूंढ़ने जङ्गल की ओर गया था। क्या तूने देखा है कि वह कहां पर है ? श्रीकुमारसे तव न रहा गया और क्रोधित होकर उसने कहा—मां ! मुझे मालूम नहीं कि नन्द कहां है, पर मेरा भाला जानता है। खूनसे भरे भालेको देखते ही नागदत्ता समझ गई कि इसने उसे मार डाला है। फिर क्या था, क्रोधसे भरकर उस पापिनिने एक

कर रहे थे। तूने मूर्खतासे कहा—ओ नंगे ढोंगी! उठ यहांसे, मुझे झाड़ू देने दे। मुनि तो ध्यानमग्न थे। उन्होंने तेरी बातों पर ध्यान न दिया। तुझे और क्रोध हुआ। तूने कूड़े करकटसे मुनिको ढंक दिया। यद्यपि तू उस समय मूर्ख थी, पर तूने वह काम बड़ा बुरा किया। सच्चे निर्ग्रन्थ साधु सदा पूजने योग्य होते हैं। उन्हें कष्ट देना उचित नहीं।

प्रातःकाल जब राजा उधरसे निकले तो उनकी दृष्टि गढ़े पर पड़ी। मुनिके सांस लेनेसे कूड़ा नीचे-ऊंचे हो रहा था। उन्हें संदेह हुआ। उन्होंने कूड़ेको हटाया तो मुनि दीख पड़े। मुनि शीघ्र ही गढ़ेसे निकाले गये। तुझे भी बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तूने मुनिसे अपने अपराधोंकी क्षमा मांगी। मुनिके कष्ट दूर करनेके लिये तूने बड़ा यत्न किया औषधि आदिसे भरपूर सेवा की। उसी फलसे इस जन्ममें धनपति सेठकी पुत्री हुई। और जो तूने औषधि दान किया था उसके फलसे तुझे सर्वोपरि औषधि प्राप्त हुई कि तेरे स्नानके जलसे कठिनसे कठिन रोग नष्ट हो जाते हैं। मुनि पर कूड़ा डालनेसे मुनिको जो कष्ट हुआ था, उससे तुझे इस जन्ममें झूठा कलंक लगा। मुनि द्वारा पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुन कर वृषभ-सेनाका वैराग्य और भी बढ़ गया। उसने स्वामीसे क्षमा मांगकर मुनि द्वारा योगदीक्षा गृहण कर ली।

जिस प्रकार वृषभसेनाने औषधि दानसे सर्वोपरि औषधि प्राप्त की, उसी प्रकार सत्पुरुषोंको उचित है कि वे रोगियोंका सदा उपचार करते रहें। दान महापुण्यका कारण होता है।

---

# १११–शास्त्रदानकी कथा

विश्वके माया-जालसे मुक्त करने वाले जिनेन्द्र भगवानको नमः स्कार कर शास्त्र दानकी कथा आरम्भ की जाती है, जो सुख प्राप्ति का कारण है।

भारतके कुरुमरी नामक गांवमें गोविन्द नामक ग्वाल रहता था। उसने जंगलमें वृक्षकी कोटरमें जैन धर्मका एक पवित्र ग्रन्थ देखा। वह उसे घर लाया और पूजा करने लगा। एक दिन उस ग्वालेने ग्रन्थको पद्मनंदी नामके मुनिको भेंट कर दिया।

गोविन्दने मृत्युके बाद कुरुमरी गांवके चौधरीके यहां जन्म ग्रहण किया। इस बालककी सुन्दरता देखकर सबको प्रसन्नता हुई। पूर्वजन्मके पुण्य-फलसे ही ये सब बातें सुलभ हो गयीं। एक दिन इसे पद्मनन्दि मुनिके दर्शन हुए। उन्हें देखते ही इसे जाति स्मरण हो आया। मुनिको नमस्कार कर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली उसके हृदयकी पवित्रता बढ़ती गयी। वह शान्तिसे मृत्यु प्राप्त कर पुण्योदयसे कौण्डेश नामक राजा हुआ। उसकी सुन्दरता और कान्तिको देखकर एक बार चन्द्रमाको भी लज्जित होना पड़ता था। शत्रु उसके भयसे कांपते थे। वह प्रजा पालक और दयालु था।

इस प्रकार कौन्डेशका समय शान्ति पूर्वक व्यतीत हो रहा था। किन्तु विषय सम्पतिको क्षण-क्षणपर नष्ट होते देख उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसे घरमें रहना दुखमय जान पड़ा। वह राज्य-का अधिकारी अपने पुत्रको बनाकर जिन मन्दिरमें गया और वहां निर्ग्रन्थ गुरुको नमस्कार कर दीक्षित हो गया। पूर्व जन्ममें कौन्डेश

ने जो शास्त्र दान किया था, उसके फलसे वह थोड़े समयसे ही श्रुत केवली हो गया। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। ज्ञान-दान तो केवल ज्ञानका भी कारण होता है।

जिस प्रकार शास्त्र-दानसे एक ग्वाला श्रुत ज्ञानी हुआ, उसी प्रकार सत्पुरुषोंको भी ज्ञान दान देकर आत्म हित करना चाहिए। जो भव्य जन इस ज्ञान दान की, पूजा प्रभावना दान मान, स्तवन किया करते हैं, वे उक्त कहा दीर्घायु आदिका मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं।

यह ज्ञान-दानकी कथा केवल ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक हो, यही मेरी मनोकामना है।

---

## ११२—अभय दानकी कथा

परब्रह्म स्वरूप आत्माका निरन्तर ध्यान करके योगियोंको हम सदा नमस्कार करते हैं, जिनकी केवल भक्तिसे सत्पुरुष सन्मार्ग प्राप्त करते हैं। हम मंगलमयी श्रुतिज्ञान रूपी सरस्वतीसे भी निवेदन करते हैं कि वह समुद्रके पार ले जानेवाली नौकाकी तरह हमारी सहायता करें। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान एवं जिनवाणीको नमस्कार कर अभय दानका पवित्र चरित्र लिखनेमें प्रवृत्त होते हैं।

भारतवर्षमें मालवा पवित्र और धनशाली देश है। वहांकी प्राकृतिक सुन्दरता देखने लायक होती है। स्वर्गके देव भी यहां आकर मन चाहा सुख प्राप्त करते हैं। मालवेके तमाम नगरोंमें बड़े विशाल जिन मन्दिर बने हुए थे। उन मन्दिरोंकी ध्वजाएं ऐसी

दीख पड़ती थीं, मानों वे स्वर्गका मार्ग बतला रही हों। जिस समयकी यह कथा है, उस समय मालवा धर्मका केन्द्र बन रहा था।

मालवेके धरगांव नामक नगरमें देविल नामका एक धनी कुम्हार और धर्मिल नामका एक नाई रहता था। इन दोनोंने मिल कर नगरमें बाहरसे आनेवाले यात्रियोंके ठहरनेके लिए एक धर्मशाला बनवा दी। एक दिनकी बात है। देविलने एक मुनिको लाकर धर्मशालामें ठहरा दिया। जब यह बात धर्मिलको मालूम हुई तो उसने मुनिको निकालकर एक सन्यासीको लाकर ठहरा दिया। ठीक ही है, दुष्टोंको साधु सन्त अच्छे नहीं लगते। सवेरे जब देविल मुनिके दर्शनके लिये आया तो उन्हें धर्मशालामें न देख एक वृक्षके नीचे बैठे हुए देखा। उसे धर्मिलकी दुष्टतापर बड़ा क्रोध हुआ। उसने धर्मिलको बुरी तरह फटकारा। धर्मिल भी क्रोधित हुआ। यहांतक झगड़ा बढ़ा कि वे लड़कर मर मिटे। दोनोंकी क्रूर भावोंसे मृत्यु होनेके कारण क्रमसे सूअर और व्याघ्र हुए। ये दोनों विन्ध्य पर्वतकी अलग-अलग गुहाओंमें रहते थे। एक दिन संयोगसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए दो मुनिराज इसी गुहामें आकर ठहरे। उन्हें देखते ही सूअरको जाति-स्मरण हो आया। उसने मुनियोंके उपदेशसे कुछ व्रत ग्रहण कर लिए।

गुहामें मनुष्योंकी गंध पाकर धर्मिलका जीव व्याघ्र, मुनियोंको खानेके लिए झपटा। सूअर देख रहा था। वह द्वार रोक कर खड़ा हो गया। दोनोंमें लड़ाई होने लगी। एक मुनियोंका रक्षक था और दूसरा भक्षक। अतएव देविलका जीव सूअर मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। उसके शरीरको चमकती हुई कान्ति मनको

मोहित करने लगी। वह ऋद्धि-सिद्धियोंका धारक हुआ। जो लोग जिन भगवानकी प्रतिमाओंको, कृत्रिम और अकृत्रिम मंदिरों-की प्रेमसे पूजा करते हैं तथा मुनियोंकी भक्ति करते हैं, उन्हें ऐसे ही सुख प्राप्त होते हैं। अतएव सुख चाहनेवाले सत्पुरुषोंको जिन-पूजा पात्र दान, व्रत उपवासादि धर्मका पालन करना चाहिए।

देविलको तो स्वर्ग मिला, पर धर्मिल अपने पापसे नरक गया। इस प्रकार पुण्य और पापका फल जानकर सत्पुरुषोंको उचित है कि वे पवित्र जैन धर्ममें अपना विश्वास दृढ़ करें।

परम सुख देनेवाली, पापोंको क्षय करनेवाली यह कथा संक्षेपमें लिखी गयी है। इस सत्कथासे संसारका हित हो।

---

## ११३–करकन्डु राजाकी कथा

विश्वको, अपने पाद-पद्मों द्वारा पवित्र करने वाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर कण्डू राजाका पवित्र चरित्र लिखते हैं। कुन्तल देशकी राजधानी तेरपुरके राजाके नाम नील और महा-नील थे। वहां वसुमित्र नामक एक जिन भक्त रहता था। उसकी पत्नी वसुमती अत्यन्त धर्मात्मा थी। इस सेठके यहां एक धनदत्त नामक ग्वाला नौकर था। एक दिन वह गौएं चरानेके लिये जङ्गलमें गया। एक तालाबमें उसने सहस्रदल कमल देखा। वह अपना लोभ संवरण न कर सका। झट तालाबमें कूद पड़ा और कमलको तोड़ लिया। उस समय नागकुमारीने कहा-धनदत्त यद्यपि तूने मेरा कमल तोड़ लिया है, किन्तु इसे किसी ऐसे महापुरुषको

भेंटमें देना जो संसारमें सर्वश्रेष्ठ हो। कुमारीके कथनानुसार धनदत्त अपने सेठके यहां गया और सब हाल कहा। वसुमित्रने राजा से जाकर पूछा—महाराज ! संसारमें सर्वश्रेष्ठ कौन है, जिसे यह कमल भेंट किया जाय। पर राजाकी भी समझमें न आया। पश्चात् सब लोगोंने विचार किया कि मुनिराजसे पूछा जाय। सब लोग जिन मन्दिरमें गये। वहां सुगुप्त मुनिराज ठहरे थे। उनसे पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि समस्त संसारके स्वामी राग-द्वेषसे रहित जिन भगवान सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्हें यह कमल समर्पित किया जाय। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। धर्मदत्तने भगवानको नमस्कार कर कहा—संसारमें सर्वोत्कृष्ट गिने जाने वाले, यह कमल आपको समर्पित है। आशा है कि आप स्वीकार करेंगे। इतना कहकर ग्वालने कमलको भगवानके चरणोंपर रख दिया। सन्देह नहीं कि पवित्र कार्यसे मूर्ख लोग भी सुख प्राप्त करते हैं। इस कथासे सम्बन्ध रखने वाली एक दूसरी कथा भी है, जिसका उल्लेख यहां आवश्यक है।

श्रावस्ती निवासी सेठ सागरदत्तकी पत्नी नागदत्ता महा दुराचारिणी थी। उसका अनुचित सम्बन्ध सोमशर्मा नामक एक ब्रामणसे था। विचारा सेठका स्वभाव बड़ा सरल था। उसे अपनी पत्नीका दुराचार सहन न हुआ। उसने जिन दीक्षा ले ली। तपस्याके बलसे सागरदत्तको स्वर्गकी प्राप्ति हुई। स्वर्गकी अवधि पूरीकर वह चम्पा नगरीमें वसुपाल राजाकी रानी वसुमतीके दंतिवाहन नामका राजकुमार हुआ।

इधर सोमशर्मा अपने पापके फलसे मृत्युके बाद कलिंग देशके

जङ्गलमें नर्मदा तिलक नामका हाथी हुआ। संयोगसे किसीने इस हाथीको पकड़कर वसुपालको भेंट दिया।

नागदत्ताको भी अनेक कष्ट सहन करने पड़े। अन्तमें वह सार नगरमें वसुदत्त सेठकी पत्नी नागदत्ता हुई। उस समय नागदत्ताको धनवती और धनश्री नामकी दो पुत्रियां उत्पन्न हुईं। धनवतीका विवाह धनपालसे हुआ और धनश्रीका कौशाम्बीके वसुमित्र के साथ। वसुमित्र धार्मिक था, इसलिये धनश्रीको जैन धर्मका उपदेश सुननेका अनेक बार अवसर मिला। उसको धर्मपर अटूट श्रद्धा हुई। वह श्राविका हो गयी। एक बार नागदत्ता अपनी पुत्रीके यहां गयी। धनश्रीने बड़ा आदर सत्कार किया और कुछ दिनोंके लिये अपने यहां रख लिया। किन्तु इतनी अवधिमें नागदत्ता न तो किसी दिन मन्दिरमें गयी और न धर्म चर्चा की। उसे धर्मसे विमुख देख धनश्रीको बड़ा खेद हुआ। एक दिन वह मुनिराजके पास ले गयी और नागदत्ताको पाँच अणुव्रत दिलवा दिये। इसी प्रकार एक बार नागदत्ताको अपनी बड़ी पुत्री धनवतीके यहां भी जाना पड़ा। धनवती बुद्ध धर्मकी अनुयायिनी थी। उसके प्रभावमें आकर नागदत्ताने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। ऐसे तीन बार नागदत्ताने जैन धर्मका परित्याग किया। किन्तु आखिरमें उसने पुनः जैन धर्म ग्रहण किया और अबकी बार अटल रही। अन्तमें मृत्यु प्राप्तकर कौशाम्बीके राजाकी पुत्री वसुमती हुई। दुर्भाग्यसे उसके ग्रह खराब थे, अतः राजाने उसे सन्दूकमें बन्द कर यमुनामें छुड़वा दिया। सन्दूक कुसुमपुरके तालावमें पहुंचा। तालावमें यमुनाकी एक धारा मिली थी। सन्दूकको मदनदत्त नामके एक मालीने खोल

कर देखा तो उसमें एक लड़की निकली । उसके कोई सन्तान न थी उसने अपनी पत्नीसे कहा—प्रिये ! तेरे भाग्यसे यह लड़की अनायास मिल गयी है । उसकी पत्नी प्रफुल्लित हुई । तालाबमें मिलनेके कारण लड़कीका नाम करण हुआ पदूमावती ।

क्रमसे पदूमावती चौदह वर्षकी हुई । उसने यौवनावस्थामें पदार्पण किया । उसकी अनुपम सुन्दरता देखकर लोगोंकी टकटकी लग जाती । उसके मोहक सौन्दर्यका पता चम्पाके राजा दन्तिवाहनको लगा । वे स्वयं कुसुमपुर पधारे । एक मालीकी पुत्रीको स्वर्गीय सुन्दरी देखकर उन्हें सन्देह हुआ । उन्होंने मालीसे कई प्रश्न किये, पर उससे राजाके प्रश्नोंका उत्तर देते न बना । केवल उसने वह सन्दूक लाकर राजाके सामने रख दिया जिसमें पदूमावती मिली थी । राजाने सन्दूक खोला तो उसमें एक अंगूठी मिली उसपर कुछ बातें लिखी हुई थीं । राजाने समझ लिया कि यह कोई राज-कन्या है । उन्होंने पदूमावतीसे विवाह कर लिया और उसे लेकर चम्पा आ गये । उनका समय सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा ।

दन्तिवाहनके पिता वृद्ध हो चुके थे । उन्हें विषय भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न हो गया । उन्होंने दीक्षा ले ली थी । अन्तमें समाधि द्वारा मृत्यु प्राप्त कर वे स्वर्ग गामी हुए । पिताकी मृत्युके बाद राज्य का सारा भार दन्तिवाहनपर आ पड़ा । पिताकी भाँति इनकी भी धर्मपर श्रद्धा थी । दम्पति प्रजा पालक थे । सदा प्रसन्न रहा करते थे ।

एक दिनकी घटना है । पदूमावतीने स्वप्नमें सिंह, हाथी और सूर्य देखे । उसने प्रातःकाल पतिसे कहा—दन्तिवाहनको बड़ी प्रस-

न्नता हुई। उन्होंने कहा—स्वप्न सुन्दर है। इस स्वप्नका फल यह होगा कि तुम्हें पुत्रको प्राप्ति होगी। वह प्रतापी, वीर और प्रजा—पालक होगा। पद्मावतीको भी प्रसन्नता हुई।

पूर्वमें धनदत्त ग्वालका उल्लेख किया जा चुका है। उसने भगवानको सहस्रदल कमल अर्पित कर पुण्य बन्ध किया था। संयोग वश एक दिन धनदत्त तालावमें तैरनेके लिये चला गया। तालावमें काई जमी थी। उससे काईसे निकलते न बना। उसकी मृत्यु हो गई किन्तु जिन पूजाके पुण्यसे वह पद्मावतीके गर्भमें आया।

सेठ वसुमित्रको जब धनदत्तके मरनेकी खबर मिली तो वह बड़ा दुःखी हुआ। उसने तालावसे शव निकाल कर अग्नि संस्कार किया। किन्तु इस क्षण भंगुर संसारसे उसे भी घृणा उत्पन्न हुई। वह सुगुप्त मुनिराजसे योग व्रत लेकर मुनि हो गया। अन्तमें कठिन तपस्या कर उसने स्वर्ग प्राप्त किया।

इधर गर्भमें धनदत्तके आते ही पद्मावतीकी विचित्र दशा हो गयी। उसके मनमें तरह तरहके विचार उठने लगे। उसकी इच्छा हुई कि तेज वृष्टि हो, विजलियां तड़पें। मैं पुरुष वेषमें अंकुश ले हाथीपर बैठूं और पति भी सवार हों। उसने अपना विचार दन्ति वाहनसे कहा। उन्होंने अपने मित्र वायुवेग विद्याधरसे कृतिम मेघकी काली घटाओं द्वारा आकाश आच्छादित करवाया, विजलियां भी चमकने लगीं। पद्मावती अपने पतिके साथ नर्मदा तिलक नामके हाथीपर सवार हुई। यह हाथी सोमशर्माका जीव था, जिसे किसीने राजाको भेटमें दिया था। उस दिन बड़े ठाटबाट से राजा-रानीकी सवारी निकली। सैकड़ों भूप साथ थे। किन्तु

नगरके बाहर जाते ही हाथी उन्मत्त हो गया। उसने अंकुशकी जरा भी परवाह न की। भीड़को चीरकर आगे निकल गया। जिस समय हाथी भागा जा रहा था कि राजाको एक युक्ति सूझी। वे एक वृक्षकी डाली पकड़ कर लटक गये। हाथी आगे बढ़ गया। राजा उदास मनसे राजधानी लौट आये। उन्हें दुःख हुआ कि गर्भिणी पत्नीकी क्या दशा हुई होगी!

हाथी पद्मावतीको लेकर जङ्गलों और कई गांवोंको लांघकर एक तालावके पास पहुंचा। वह सीधा तालावमें घुस गया। किन्तु जल देवीने बड़ी शीघ्रतासे पद्मावतीको उतार लिया। विचारी पद्मावती किनारेपर बैठकर रोने लगी। संयोगसे एक माली इसी रास्तेसे घर जा रहा था। उसे एक रूपवती स्त्रीको रोते हुए देख-उसे दया आगई। उसने पद्मावतीसे अपने साथ चलनेके लिये प्रार्थना की। पद्मावतीने भी स्वीकार कर लिया, कारण कोई दूसरा मार्ग ही नहीं था। मालीने पद्मावतीको अपने घर ले जाकर उसका बड़ा आदर सत्कार किया। उसे अपनी बहन समझता था पर मालीकी पत्नी बड़ी कर्कसा थी। उसे एक दूसरी स्त्रीका अपने घरमें रहना अच्छा नहीं लगता था। उसने पद्मावतीसे बोलना-चालना सब छोड़ दिया। एक दिन माली किसी कार्यवश दूसरे गांवमें चला गया। मालीकी पत्नीने गालीगलौज देकर पद्मावतीको घरसे बाहर निकाल दिया। पद्मावती अपने कर्मोंपर पश्चाताप करती हुई एक श्मशानमें पहुंची। उसके प्रसवके दिन समीप थे। यहींपर पद्मावतीको पुत्रकी प्राप्ति हुई। पुण्योदयसे उसी समय एक मनुष्य चाण्डालके वेषमें उपस्थित हुआ। उसने पद्मावतीको नम-

स्कार कर कहा—माता ! कोई चिन्ताकी आवश्यकता नहीं। तुम्हारे पुत्रका दास आ गया। वह जी-जानसे उनकी रक्षा करेगा। आप भी मेरी मालकिन हैं। सारा भार मुझे देकर आप निश्चिन्त हो जाइये। पद्मावतीने आगन्तुक चाण्डालसे कृतज्ञता प्रकट की। बादमें कहा—भाई मैं तुम्हारा परिचय प्राप्त करना चाहती हूं। तुम्हारी तेजस्वितासे मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है। आगन्तुकने नम्रता पूर्वक कहा—मां, तुम अभागेकी कथा सुननेकी इच्छा प्रकट करती हो तो सुनो।

विजयार्ध पर्वतके दक्षिणकी ओर विद्युत्प्रभ नामका एक नगर है। वहांके राजाका नाम विद्युत्प्रभ और रानीका नाम विद्युल्लेखा है। मैं उन्हींकी सन्तान हूं। मेरा नाम बाल देव है। एक दिन मैं अपनी पत्नी कनकलताके साथ विमानमें बैठकर दक्षिणकी ओर जा रहा था। पथमें रामगिरिपर मेरा विमान रुक गया। नीचे झांककर देखा तो एक मुनि देख पड़े। मैंने क्रोधित हो मुनिको बड़ा कष्ट दिया। इससे पद्मा देवीका आसन हिल उठा। वे उसी समय उपस्थित हुईं। उन्होंने मुनिका कष्ट दूर किया। किन्तु फल यह हुआ कि मेरी सारी विद्याएं नष्ट हो गयीं। मैं निस्तेज और निस्व हो गया। मुझे अपनी दशापर घोर पश्चात्ताप हुआ। मैंने रोकर देवीसे कहा—मेरी अज्ञानतासे यह घटना हुई है। मुझे क्षमा करें और मेरी विद्यायें लौटा दें। उन्होंने एवमस्तु कहा, पर साथ ही एक शर्त रख दी कि एक दुःखी स्त्रीके गर्भसे तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। उसकी सावधानीसे रक्षा करना। उसकी राज्य प्राप्तिपर समस्त विद्यायें स्वतः सिद्ध हो जायगी। मैं उसकी आज्ञासे

इस वेशमें रहता हूं कि कोई पहचान न सके। यही मेरी कथा है।

यद्यपि पद्मावती विद्याधरका हाल सुनकर दुःखी अवश्य हुई, किन्तु उसे पुत्रका रक्षक समझकर उन्हें सन्तोष भी हुआ। उन्होंने प्रिय पुत्रको विद्याधरकी गोदमें देकर कहा—भाई! तुम इसे अपना ही समझना। इसकी रक्षाका भार तुम्हारे ऊपर रहा। पदमावतीने एक बार पुत्रकी ओर देखकर कहा—तुम पुण्यात्मा होकर भी ऐसी अभागिनीके पुत्र हो, जो जन्मसे ही तुमसे अलग हो रही है। फिर भी तुम एक दूसरी मांके पास जा रहे हो। तुम कुशल पूर्वक रहो। इसीमें मुझे प्रसन्नता होगी। आशीर्वाद देकर पद्मावती व्यथित हृदय हो अपना रास्ता लिया। उस सुन्दर बच्चेको लेकर बालदेव अपने घर पहुंचा और उसे कनकलताकी गोदमें देते हुए कहा—प्रिये! लो आज तुम्हारी सूनी गोद भरपूर हुई। कनकलताके आनन्दकी सीमा न रही। उसका प्रेम क्षण-क्षण बढ़ता गया। उसने बच्चेका नाम करकण्डु रखा। इस नाम करणका भी एक कारण था। उस बच्चेके हाथमें खुजली थी। कनकलता आदर और प्रेमपूर्वक करकण्डुका पालन पोषण करने लगी। सत्य है, पुण्यसे कष्टमें भी सुखकी प्राप्ति हो सकती है। अतएव सत्पुरुषोंको जिन पूजा व्रत उपवासादिसे कभी भी विरत न होना चाहिये।

अपने प्रिय पुत्र बालदेवको देकर पद्मावती, गान्धारी नामकी क्षुल्लकिनीके पास आई। कुछ देर विश्राम करनेके बाद पद्मावतीने सारा हाल कह सुनाया और स्वयं दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की। क्षुल्लकिनी उसे समाधि गुप्त मुनिके समीप ले गयी। किन्तु मुनि ने बताया कि अभी दीक्षा ग्रहण करनेका उपयुक्त समय नहीं हुआ।

कारण, तूने पूर्व जन्ममें तीन बार जैन धर्म ग्रहण कर परित्याग किया है। चौथे जन्ममें राजकुमारी हुई। एक कर्म अभी बाकी है। जब वह कर्म शान्त हो जाय तो अपने पुत्रके साथ दीक्षित होना। मुनि द्वारा भविष्य सुनकर पदमावती लौट गयी और क्षुल्लकिनीके पास ही रहने लगी।

इधर बालदेवके यहां करकण्डुका पोषण हो रहा था। करकण्डु कुछ ही वर्षोंमें पढ़ लिखकर अच्छा विद्वान हो गया। उसकी बुद्धि असाधारण थी। एक दिन करकण्डु, बलदेवके साथ वायु सेवनके लिये निकला। दोनों एक श्मशानतक आ गये। वे वहांकी अद्भुत लीला देखने लगे। संयोगसे मुनिराज जयभद्र अपने संघके साथ श्मशानमें आकर ठहरे। वहाँ एक नरमुण्ड पड़ा था। उसकी आंखों के तीन छिद्रोंमें तीन बांस उग रहे थे। उसे देखकर एक मुनिने गुरुसे पूछा—महाराज यह कैसा कौतुक है ? मुनिने बताया कि हस्तिनापुरका जो राजा होगा उसके लिये इन बांसोंके अंकुश, छत्र, चमर और दण्ड बनगे। मुनिकी भविष्यवाणीको किसी ब्राह्मणने सुन लिया। वह धनकी अभिलाषासे उन्हें उखाड़ लाया और करकण्डुके हाथ बेंच डाला।

उस समय हस्तिनापुरका सिंहासन खाली था। महाराज बलवाहनकी मृत्युके बाद कोई राज्यका अधिकारी न रहा। अब प्रजाके समक्ष प्रश्न आया कि, राजा किसे बनाया जाय। अन्तमें यही तय पाया कि महाराजका हाथीको जल भरा स्वर्ण-कलश देकर छोड़ा जाय। वह जिसका अभिषेक कर सिंहासनपर ला बिठा दे, वही राज्यका अधिकारी हो। ऐसा ही किया गया। हाथीने करकण्डुका

अभिषेक किया और उसे उठाकर सिंहासन पर ला बिठाया। समग्र प्रजाने जय ध्वनि की, उत्सव सम्पन्न किया। करकण्डुके राजा होते ही बालदेवको विद्याएं सिद्ध हो गयी। वह शीघ्र ही विद्या-बल से पद्मावतीके यहां गया। उसे लाकर करकण्डुसे मिला दिया। बलदेव नम्रता पूर्वक नमस्कार कर अपनी राजधानीको लौट गया।

करकण्डुके राजा होते ही कुछ लोग विरोधी हो गये थे। किन्तु राजनीतिकी चतुरतासे करकण्डुने सबको अपना मित्र बना लिया। उसके दिन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे। करकण्डुकी बढ़ती हुई ख्याति दन्तिवाहन तक पहुंची। यद्यपि दन्ति वाहन करकण्डुका पिता है, पर इन दोनोंको इस सम्बन्धका बिलकुल पता नहीं। दन्तिवाहनको एक नये राजाका प्रताप बहुत अखरा। उसने एक दूत द्वारा करकण्डुके पास सन्देश भेजा कि—"यदि आप सुख पूर्वक राज्य करना चाहते हैं तो मेरी आधीनता स्वीकार करें। अन्यथा देशपर आपकी सत्ता कायम नहीं रह सकती।" करकण्डु को दन्डिवाहनकी धृष्टता सहन न हो सकी। उसने दूतसे कहा— तुम अपने मालिकसे कहो कि वे युद्धके लिए प्रस्तुत हों। पर वहीं हम दोनोंका फैसला रणभूमि स्वयं कर देगी।

करकंण्डुने अपनी सेनामें युद्धको घोषणा की। उसने दन्ति-वाहन पर धावा बोल दिया। दन्तिवाहन भी तैयार बैठा था, दोनों सेनाएं रणभूमिमें उतरीं। अब युद्धका डंका बजनेवाला ही था कि, पद्मावतीको मालूम हो गया कि प्रस्तुत युद्ध दो शत्रुओंका नहीं, पिता पुत्र का है। वह अपने पतिके पास गयी और सारा हाल कह सुनाया। दन्ति वाहनको पुत्र और प्रियाकी प्राप्ति हुई। उनके

आनन्दकी सीमा न रही करकन्डुको जब यह बात मालूम हुई तो वह पिताके चरणोंमें जा गिरा। दन्तिवाहनने उसे छातीसे लगा लिया। पश्चात् बड़े ठाट-बाटसे करकन्डुका पिताके नगरमें प्रवेश हुआ। प्रजा उत्फुल्ल हो उठी। इस प्रकार करकण्डुने पुण्यके प्रतापसे राज्यके अतिरिक्त कुटुम्ब भी प्राप्त किया। वह स्वर्गके देवोंकी तरह सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

कुछ वर्ष व्यतीत होनेपर दन्तिवाहनने पुत्रके विवाहकी तैयारी की। लगभग आठ हजार राजकुमारियोंके साथ करकण्डुका विवाह सम्पन्न हुआ। विवाहके बाद दन्तिवाहनने राज्य भार पुत्रको सौंप दिया। स्वयं पद्मावतीके साथ सुख पूर्वक जीवन बिताने लगे।

राजा करकन्डुसे जैसी प्रजाको आशा थी। तदनुरूप उसने धर्म और नीतिज्ञताका परिचय दिया। एक दिन मन्त्रियोंने करकण्डुसे निवेदन किया कि भेरम, पाण्डय और चोलके राजाओंने अब राज्य कर देना बन्द कर दिया है। ज्ञात होता है उन्हें अभिमान हो गया है। ऐसा प्रयत्न कीजिये कि वे अपनी आधीनता आसानीसे स्वीकार कर लें। करकण्डुने उनके यहां दूत भेजा, पर सफलता न मिली। युद्ध करना पड़ा। करकण्डु विजयी हुआ। पर जब राजाओंने अपने मुकुट करकण्डुके चरणोंपर रखे तो उसे बड़ा खेद हुआ। कारण मुकुटोंमें भगवान जिनेन्द्रकी प्रतिमायें खुदी हुई थीं। उसको समझमें आ गया कि ये राजा जैनी हैं। उन्होंने अपने अपराधके लिए राजाओंसे क्षमा मांगकर अपने देशके लिये प्रस्थान किया। पथमें भीलोंने प्रार्थना की—महाराज, धाराशिव नामक एक विशाल जिन मन्दिर है, जिनमें सहस्र खम्भे हैं। इसके

एक पर्वतपर आश्चर्य जनक घटना होती है। वहां एक वांबी है। उसपर एक हाथी अपनी सूड़से जल और एक कमलका पुष्प रोज चढ़ा जाता है।

महाराजको इस समाचारसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भीलोंके साथ उस कौतुकमय स्थानको देखनेके लिए गये। सर्व प्रथम उन्होंने मन्दिरमें जाकर पूजा की। इसके बाद वांबी देखने गये। वहां हाथीको पूजा करते देखकर सबको आश्चर्य हुआ। महाराजने सोचा पशुकी भक्तिका अवश्य ही कोई कारण होगा। हाथीके चले जानेपर महाराज करकण्डुने वांबीको खुदवाया। उसमेंसे एक सन्दूक निकली, जिसमें भगवान पार्श्वनाथको रत्नमयी प्रतिमा थी। महाराजने 'अग्ल देव' नामका एक जिन मंदिर बनाकर उसने प्रतिमा स्थापित की। प्रतिमापर एक गांठ देखकर महाराजने शिल्पकारसे कहा—इस गांठसे प्रतिमाकी सुन्दरता नष्ट होती है, इसे तोड़ दो। शिल्पकारके मना करनेपर भी करकण्डु राजाने गांठ तुड़वादी। गांठके टूटते ही उसमेंसे जलकी धारा बह निकली। सबके प्राण संकटमें पड़े। महाराजने प्रवाहको रोकनेके लिए सन्यास लेकर भगवानका स्मरण करने लगे। उस समय नागकुमारने आकर कहा कि इस प्रतिमाकी रक्षाके लिए मुझे जल पूर्ण लवण बनाना पड़ा है। आप इसे रोकनेका प्रयत्न कदापि न करें। करकण्डुने नागकुमारके कथनानुसार सन्यास छोड़ दिया। पर नागसे पूछा कि यह लवण कैसे बना और किसने यह प्रतिमा स्थापितकी थी। उत्तरमें नागकुमारने कहना आरम्भ किया—

नभस्तिलक नामक नगरमें अमित वेग और सुवेग नामके दो

विद्याधर राजा था। एक दिन ये दोनों भाई आर्य-खण्डके जिन मन्दिरोंके दर्शनके लिए गये। वहां उन्होंने भगवानकी रत्नमयी प्रतिमा देखी। प्रतिमाको सन्दूकमें रखकर वे लोग ले जानेके लिए उद्यत हुए। किन्तु सन्दूक उस स्थानसे उठ न सकी। तेरपुरके अवधि ज्ञानी महाराजसे पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि यह सन्दूक पहले लपणके ऊपर दूसरा लपण होगी। अर्थात् अन्तर ध्यानसे मृत्यु प्राप्त कर हाथी होगा। वह इस सन्दूककी पूजा करेगा। इसके बाद करकण्डु राजा द्वारा सन्दूक निकाली जायगी और हाथी सन्यास ग्रहण कर स्वर्ग जायगा। इतना सुन लेनेपर करकण्डुने पुनः पूछा—मुनिवर यह तो बतलाइये कि इस लपणको किसने बनाया। मुनिराज कहने लगे—विजयार्धके दक्षिण रथनपुरके नील और महानील राजाओंको शत्रुओंने युद्धमें परास्त कर दिया। वे मलय पर्वतपर आकर बसे। उन्होंने लपण बनवाया। उन्हें सारी विद्यायें पुनः प्राप्त हो गयीं। अन्तमें तपस्याके बल वे स्वर्ग गये। मुनि द्वारा ऐसी बातें सुनकर अमित वेगने दीक्षा ग्रहण कर ली। वह मृत्यु प्राप्तकर ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ। और सुवेग आर्त ध्यानसे मृत्यु प्राप्तकर हाथी हुआ। यह बराबर बांबीकी पूजा किया करता था। जबसे बाबी तोड़ी गयी है, हाथीने सन्यास ले लिया है। महाराज! आप भी इसी तेरपुरमें ग्वाल थे। एक कमलके फूलसे जिन भगवानकी पूजाके कारण आप इस समय राजा हुए है। नागकुमार द्वारा सारी घटनायें सुनकर करकन्डुने धर्म और प्रेमसे उन्हें नमस्कार किया। वे अपने स्थानको चले गये।

हाथीके सन्यासका तीसरा दिन। करकण्डुने उसे धर्मोपदेश

किया। वह सम्यक्त्वके साथ मृत्यु प्राप्तकर स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ। एक पशुकी ऐसी पवित्र गतिसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि संसारमें धर्मसे बढ़कर दूसरी वस्तु नहीं।

पश्चात् करकन्डुने अपनी माता बलदेव तथा अपने नामसे तीन जिन मन्दिरोंका निर्माण कराया। उसे सांसारिक विषयोंसे विरक्ति हो गयी थी। वह राज्यका भार पुत्र वसुपालको सौंपकर दीक्षा ले योगी होगया। उसने परमात्माका स्मरण करते हुए भौतिक शरीरका त्याग किया। उसे सहस्रार स्वर्गमें दिव्य देह प्राप्त हुई। पद्मावती और दन्तवाहन भी पुण्य-बलसे स्वर्ग लोकमें गये।

हमें स्मरण रखना चाहिये कि एक नासमझ ग्वालेने कमलके पुष्पसे भगवानकी पूजा की थी, जिसके फल स्वरूप उसे लौकिक और पारलौकिक सुख उपलब्ध हुए। सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे भगवान जिनकी पूजाकी ओर आकर्षित हों।

---

## ११४–जिनपूजनके प्रभावकी कथा

जिनवाणी द्वारा संसारको अमूल्य उपदेश देनेवाले जिनेन्द्र भगवान तथा सद्गुरुओंके चरणोंमें नतमस्तक हो, एक मेंढककी कथा लिखते हैं, जिसने जिन-पूजाकर अपूर्व फल प्राप्त किया था।

जो सत्पुरुष धर्म वृद्धिके लिये जिन पूजा करते हैं वे सम्यक्त्व तथा मोक्षके अधिकारी हैं। जो जिन-पूजाकी निन्दा करते हैं, वे संसारमें निन्दनीय होते हैं। शास्त्रोंमें उल्लेख है कि जिन-पूजासे सभी सुख उपलब्ध होते हैं। जिन लोगोंने आठ द्रव्योंसे पूजा की,

उनका वर्णन तो यह निर्बल लेखनी नहीं कर सकती। पर एक मेंढकने केवल पुष्पसे पूजा की थी। उसे स्वर्गकी प्राप्ति हुई. उसीकी कथा लिखते हैं।

मगधकी राजधानी राजगृहके महाराज श्रेणिक बड़े ही धर्मज्ञ थे। भगवानकी भक्ति उन्हें बड़ी प्रिय थी। श्रेणिककी कई रानियां थीं। उनमें सुन्दरता, बुद्धिमत्ता आदिमें चेलिनीका स्थान सर्वोच्च था। उसने कृत्रिम आभूषणोंसे शृंगारको महत्त्व न दे अपनी आत्माको सम्यग्दर्शनसे भूषित किया था। इसलिये अन्य रानियोंकी अपेक्षा श्रेणिक, चेलिनीको अधिक प्यार करते थे।

यहां नागदत्त नामक सेठ एक रहता था। उसकी पत्नी भवदत्ता थी। नागदत्त मायावी था। वह मायाचारसे मृत्यु-प्राप्तकर बावड़ी में मेढक हुआ। एक दिन भवदत्ता बावड़ीपर जलके लिये आई। मेंढक उछल उछलकर उसके शरीरपर चढ़ने लगा। उसने कई बार झिड़का, पर मेढ़कका यह क्रम लगातार जारी रहा। भवदत्ता समझ गई कि हो न हो इस मेढकसे मेरा पूर्व जन्मका कुछ न कुछ सम्बन्ध है। अन्यथा झिड़कनेपर दुबारा आनेका साहस न करता।

सौभाग्यसे राजगृहमें अवधि ज्ञानी सुव्रत मुनिराजका आगमन हुआ। भवदत्ता मेंढ़कका हाल जाननेके लिये उनके पास गई। पूछनेपर मुनिराजने बतलाया कि वह तेरा पति नागदत्त है। माया के पापसे उसे मेंढकका शरीर प्राप्त हुआ है। भवदत्ता मुनिको नमस्कार कर घर लौट आई। उसने मोहवश हो मेंढ़कको लाकर अपने यहां रखा। यहां आकर मेंढ़क भी प्रसन्न रहने लगा।

एक बार वैभार पर्वतपर महावीर भगवानका समवसरण आया

उनके आगमनकी खबर श्रेणिकको लगी। उन्होंने नगरमें घोषणा कर दी। सब लोग दर्शनके लिये गये। भगवानकी पूजा की गयी। वे समवसरणमें पहुंचे। भगवानके दर्शनके लिये भवदत्ता भी गयी थी। आकाशसे देवोंकी जयध्वनि और दुंदुभीकी मधुर ध्वनि सुन सुनकर मेंढक भी तालाबसे कमलकी कली तोड़कर भगवानकी पूजा के लिये चला। रास्तेमें वह हाथीके पैरके नीचे कुचलकर मर गया। इस पूजा प्रेमके पुण्यसे वह सौद्धर्म स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ। विभिन्न अलंकारोंसे उसका शरीर सुसज्जित था। उसके गलेमें स्वर्गीय कल्प वृक्षोंके पुष्पोंकी सुन्दर माला सुशोभित थी। उसकी सुन्दरता देखते ही बनती थी। उसे अवधि ज्ञानसे मालूम हुआ कि, यह भगवानकी पवित्र पूजाकी भावनाका फल है कि मुझे यह रत्न राशि प्राप्त हुई है। अतः उनकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। इस विचारसे अपने मुकुटपर मेढ़कका चिन्ह बना कर वह महावीर भग-वानके समवशरणमें आया। उसके मुकुटपर मेढ़कका चिन्ह देखकर श्रेणिकको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने तत्काल ही भगवानसे पूछा। भगवानने नागदत्तकी सारी कथा कह सुनाई। श्रेणिक तथा अन्य लोग सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। जिन पूजनके प्रत्यक्ष फलने सबके हृदयमें श्रद्धा उत्पन्न कर दी। भव्य जनोंको चाहिये कि वे सदा जिन पूजा किया करें। उन्हें मनोवांछित फल प्राप्त होगा।

जिन-पूजा सत्पुरुषोंको ज्ञान प्रदान करने वाली सरस्वती है, मोक्षका सोपान है और सम्यग्दर्शन रूपी वृक्षोंको सींचनेवाली वर्षा है। वह हमें पाप कर्मोसे विरत करे।

भगवानकी पवित्र वह वाणी संसारमें विजय प्राप्त करे, जिससे

मिथ्यान्धकार नष्ट हो, ज्ञानका प्रकाश फैले। स्वर्गके देवों, विद्याधरों, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों द्वारा जिसे सम्मान प्राप्त हुआ है।

जैन धर्मके प्रधान आचार्य प्रभाचन्द्र, मल्लिभूषण भट्टारक, सिंह नन्दी गुरु प्रभाचन्द्राचार्य आदि विजय प्राप्त करें, जिन्होंने अपने पवित्र उपदेशसे भव्य जनोंको सदमार्गकी ओर लगाया है। वे स्याद्वाद विद्याके विद्वान थे। उन्होंने अन्य मतके बड़े बड़े विद्वानोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर जैन धर्मका अकाट्य सिद्धान्त स्थिर किया था। अतएव वे ज्ञानके समुद्र थे।

उनके पवित्र चरण-कमलोंकी कृपा प्राप्त कर ब्रह्मचारी नेमिदत्तने इन पवित्र कथाओंको लिखा है। ये कल्याणकारी कथायें सत्पुरुषोंको शान्ति, सुयश प्रमोद आदि समग्र सुख प्रदान करनेमें सहायक हों। यह मेरी पवित्र कामना सदा फलवती हो।

* समाप्त *

प्रिण्टर—

मालिक—"जिनवाणी प्रेस"

दुलीचन्द परवार,

८०, लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता

## श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

यह ग्रन्थ पांच बार छप चुका है, इसके सम्बन्धमें कुछ भी लिखना सूर्यको दीपक दिखाना है। पं० सदासुखजीने श्रावकोंके लिये यह पथ-प्रदर्शक ग्रन्थ लिखकर महान उपकार किया है। शास्त्राकार न्यो० ५॥) रुपया

## पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय।

शास्त्राकार पुरानी और नवीन टीकाओं सहित (स्व० पं० टोडरमलजी कृत) छपाया है। न्योछावर ४) रुपया मात्र।

## तत्वार्थ राजवार्तिक

स्व० पं० पन्नालालजी दूनीवाल कृत पुरानी भाषामें एक खंड ही छपा था उसका मूल्य सिर्फ ४) रक्खा है।

## जैनक्रिया कोष।

स्व० पं० दौलतरामजीने आचार सम्बन्धी इस ग्रन्थको लिखकर बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। वही दुबारा छपाया था पर थोड़ी कापी बाकी हैं, अतएव जिन्हें दरकार हो शीघ्र ही मंगा लें। न्योछावर ३) रुपया।

## चरचा समाधान।

स्व० पं० भूधरदासजी कृत शास्त्राकार यह छपाया गया है, इसमें तमाम प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारसे सैकड़ों शंकाओंका समाधान किया है (गोमट्टसार, राजवार्तिक जैसे ग्रन्थोंके आधारसे) न्यो० २) रु० मात्र।

## सुकुमाल चरित्र

इसका मिलना भी दुष्प्राप्य था, अतएव उसी शास्त्रीय भाषामें जो जयपुर निवासी श्रीमान पं० नाथूलालजी दोशीने सकलकीर्ती कृत संस्कृतसे भाषामें लिखी थी प्रगट की है, वास्तवमें सुकमालकी जीवनी पढ़कर आपका हृदय पवित्र हो जायगा, कई उत्तमोत्तम रंगीन चित्र भी दिये हैं। न्यो० १)